गुजराती के तीन उपन्यास

- अहिल्या
  ईला आरब मेहता
- मेरा भी एक घर हो
  वर्षा अदाल्जा
- निःशेष
  सरोज पाठक

संपादिका: यशोदा पलाण

अहिल्या/ईला आरब मेहता

श्रो डैथ ? व्हेयर इज़ दाई स्टिंग ?

'इस्पेक्टर, श्राप मरीज को श्राराम करने दीजिए।' यह मेरी प्रार्थना है। बाई के दिमाग पर ज्यादा जोर डालना उचित नही है। इनकी मानसिक स्थिति नाजुक है। ऐसे मे किसी भी प्रकार का मानसिक श्राघात इन्हे नही लगना चाहिए। प्लीज लीव हर श्रलोन।'

'सॉरी डॉक्टर ! मैं चलता हू। सादे कपडो मे मेरा एक श्रादमी बाहर बैठा रहेगा। ये बाई ज़रा स्वस्थ लगें, तो श्राप इनका बयान लिवा दीजिएगा। यह श्रात्महत्या का मामला है या खून का, इस बात की हम लोगो को सावधानी से जाच करनी होगी।'

'इस्पेक्टर ! मेरा खून भी किया गया है श्रौर श्रात्महत्या भी। मेरे हृदय पर बूद बूद करके जहर टपकाया गया श्रौर एक दिन वह पूरे शरीर मे फैल गया। मै...मैं उसी दिन मर गयी। श्रौर तभी मुझे लगा, श्रब जीना कैसा ? किसलिए ? श्रौर इसीलिए मैंने मर जाने की कोशिश की।

'मिसेज विभाकर, श्राप शाति से सो जाइए। श्रब श्राप भयमुक्त हैं स्वतत्र हैं। सचमुच इस्पेक्टर, जिन्दगी जितनी श्राशीर्वाद-स्वरूप है, उतनी ही श्रभिशाप भी है। उसे समझ पाना अत्यत दुरूह है। सिस्टर, बाई को शान्त रखने की कोशिश करिएगा। कम श्रान, इस्पेक्टर !'

पहाड की दोपहर तप्त और शान्त थी। नवबर महीने के ठडक भरे वातावरण मे कही-कही भारी सावले बादल धूप-छाह मे खेल रहे थे। ढलान की हरियाली कही उजली-सी, कही काली-सी हो रही थी।

मिशन हास्पिटल के कम्पाउड म एक तरफ छोटा-सा मदिर था। तथा पीछे की तरफ काफी विस्तृत कब्रिस्तान, जिसमे छोटे बडे श्रनेक प्रकार के पेडो की छायाए कब्रो पर छाह देती सी प्रतीत होती थी। कब्रिस्तान जहा खत्म होता था, उससे बिलकुल लगा हुश्रा एक छोटा-सा खूबसूरत बगीचा था।

उसकी श्रन्यमनस्क उदास दृष्टि इन सब का स्पर्श करती श्रौर सारी निर्लिप्तता निरोहित कर एक श्रजीव सौन्दर्यानुभूति से उसका मन श्रभिभूत हो उठता। खिडकी से हटकर उसने हास्पिटल के प्रागण पर

दृष्टिपात किया। बहुत सारे मरीज दोपहर की नींद मे बेहोश-से पड़े थे। हॉल के शुरू मे ही एक भारी-सी टेबुल पर तमाम फाइलो तथा छोटे-मोटे इंस्ट्रूमेंट्स, बोतलो, पेपरो के मध्य सिस्टर मार्था एक रजिस्टर मे मुह गडाये कुछ लिख रही थी।

धीरे-धीरे एक ज्वार-सा उभरने लगा उसके अन्तर्तम से.. ऊचा... और ऊचा...उसका शरीर एक अदृश्य शक्ति के आकर्षण से जैसे खिचने लगा।...वह कौन है ? यहा किसलिए आयी है ? कब्र के समीप खडा हुआ यह हास्पिटल नया जीवन देने के लिए प्रयत्नशील है ! लेकिन क्योकर ? वह बचना तो नही चाहती, .

खिडकी मे से दिखती पहाड की चोटिया, ऊचे-ऊचे वृक्ष, ढलानो पर बिखरी बिन्दु-सी झोपडिया...सब मिलकर एक अलौकिक सृष्टि की रचना कर रहे थे। अपने शरीर के हिस्से-हिस्से मे रेंगते हुए दुःख, सताप, यातना की कुलबुलाहट को भूलकर वह अगर इस अलौकिक रूप-सृष्टि मे डूब जाये, एकरूप हो जाये, तो गलत क्या है ?

'...ईश्वर, क्या तेरा दिया हुआ यह जीवन जीने के लिए मैं बाध्य हू ? क्षण-क्षण गलाता हुआ यह समय...इस क्रॉस पर मैं शहीद न बनू, तो क्या ?'

किसी विद्रोही कवि की कुछ पक्तिया सहसा उसे स्मरण हो आयीं 'क्रॉस और करुणा...ईशु, दोनो मे से किसका बोझ ज्यादा है ?'

सडक पर इक्का-दुक्का लोग ही दिखायी पड रहे थे। धीरे से वह अपने कमरे से बाहर निकली। किसी का भी ध्यान उसकी ओर नही गया। पूरी जिन्दगी ऐसे ही बीती है और ऐसे ही बीतेगी।

बाहर निकलकर वह धीरे से इमारत के पिछवाड़े गयी तथा कब्रिस्तान से लगे हुए छोटे दरवाजे से बाहर निकल आयी।

'बाई, तुम्हारा नाम क्या है ?'

उसने झूठ बोला था— स्त्री ! वह स्त्री नही है, शिला है ! खाती, पीती, घूमती, फिरती शिला। इस्पेक्टर, मेरा नाम अहिल्या नही, शिला है। अपने न्यायाधीश से कहो, वह अगर एक शिला को दंड दे सकता है तो मुझे दे।

गली से निकलकर वह मुख्य रास्ते पर आयी। लम्बा रास्ता,—ऊंची-नीची, घुमावदार पगडंडियों से होता हुआ सामने दृष्टिगत हो रहा था, जिसका कोई अंत नहीं दिखायी दे रहा था। बस चलते ही जाना होगा, चलते ही ..अनंत काल तक बस इसी तरह से...

उसे थकान महसूस हुई। पैर लड़खड़ा रहे थे। शिथिलता भर गयी थी अंग-प्रत्यंग में। रास्ते के एक तरफ छोटा-सा त्रिकोण बगीचा था, वहीं पड़ी एक बेंच पर जाकर वह बैठ गयी। नीचे की धूल ताकती रही।

'बांगला देश में भीषण हत्याकांड!' अखबार का एक टुकड़ा जमीन पर पड़ा फड़फड़ा रहा था। किसी ने शायद नाश्ता करने के बाद कागज का टुकड़ा वहीं फेंक दिया था। पेट भरा होने पर भीषण हत्याकांड की बात सुनने या समझने का धीरज खत्म हो जाता है। उसने उस टुकड़े को उठा लिया और एक नज़र डाली।, पाकिस्तानी सैनिकों के घोर अत्याचार का विवरण था। पाशविकता, हिंसा, अमानुषिकता के नंगे नाच से वहां की धरती भीग उठी थी।

अखबार का टुकड़ा फेंककर वह उठ खड़ी हुई।

आज चौदह नवंबर थी। एक-डेढ़ महीने बाद केस की तारीख थी। उसे कोर्ट में हाज़िर होना था। निखिल से वह राजी-खुशी अलग हुई थी, ऐसा कहना पड़ेगा। और अगर उसने ऐसा न कहा तो...तो...

सोचते ही वह लज्जा और घृणा से कांप उठी। छि-छि .. इतनी नीचता...ऐसा भयानक नाटक!

घोर अपमान से उसका चेहरा तमतमा उठा। आंखों में पानी भर आया।

निखिल को चाहने की उसने कोशिश की थी...समुद्र की लहरों को पकड़ने में चेष्टारत बालक के हाथ में जैसे फेन भर रह जाता है, वैसी ही उसकी स्थिति थी।

फिर भी वह उसके प्रति वफादार थी। उसके माथे पर निखिल का सौभाग्य-सिन्दूर चमक रहा था।

—और निखिल के पास प्रमाण थे...पर-पुरुष के साथ की गयी प्रेम-चेष्टाओं के...

विचार सुलग रहे थे। आखें जल रही थी। पैर घिसट रहे थे...इतनी छीछालेदर के बाद कोई भी औरत क्यों जीना चाहेगी ? क्या अर्थ है ?

मुख्य सडक का बाजार शुरू हो गया और वह वहा तक पहुच गयी थी। छोटी-छोटी दुकानें, नन्हे-नन्हे लाल खपरैल वाले मकान। उन पर पेडो की अनगिनत झुकी हुई टहनिया। वह मुग्ध हो देखती ही रह गयी। अचानक एक दुकान के पाटिये पर दृष्टि गयी 'अमृत मेडिकल स्टोर'।

'विपुल फार्मेसी की स्लीपिंग टेबलेट्स देंगे क्या...प्लीज ?'

'प्रेस्क्रिप्शन प्लीज ?' केमिस्ट ने उसकी ओर हाथ बढाया।

'ओह, सॉरी!' उसने कहा, फिर ब्लाउज के भीतर हाथ डालकर उसने एक दस रुपये का नोट निकाला और केमिस्ट को थमा दिया। 'मैं प्रेस्क्रिप्शन लाना भूल गयी हू। आपको चाहिए तो मैं अपने डॉक्टर का नाम बता सकती हू। वैसे तो मैं बम्बई से आयी हू।'

केमिस्ट ने सिर खुजलाया। एक बार उसने दस रुपये के नोट की तरफ देखा। फिर उसके चहरे को देखने लगा। फिर कुछ ही देर में उसने बिल बनाकर शीशी उसके हाथ में थमा दी।

शीशी उसने हाथो मे मजबूती से दबोच ली।

मुक्ति...वेदना की कसमसाती यातना से हमेशा के लिए मुक्ति!

इस बार वह किसी के हाथों में नही पडेगी। इन विस्तृत ऊची पहाडियों की दुरूह गहन खाइयो मे खोकर रह जायेगी।

दुकान से बाहर निकलकर वह चलने लगी. .आगे अथवा पीछे... दिशाहीन...सब द्वारो से वह मुक्त है...अब स्वतत्र...सीमाहीन। अब उसे किसी का भी भय नही है।

आज.. क्या तारीख है ? अरे, अभी-अभी तो याद थी। लगता है दिमाग भ्रमित हो उठा है, शून्य-सा। सारी स्मृतिया लुप्त हो गयी हैं... मात्र वेदना की एक बूद विस्तृत होती जा रही है।

आगे...और आगे, हास्पिटल से एकदम विपरीत दिशा म वह बढ रही थी।

एक मोड पर उसे लगा, कोई हस पडा है। सुनकर आत्मीय लगा। एक ऊचा पेड सिर उठाये आसमान को ताक रहा था। हठयोगी-सा।

एकदम अकेला। ऊपर था सीमाहीन भूरा आकाश और नीचे थी हरी-भरी धरती...

द अर्थ टर्न्स ओवर, आउटसाइड फील्स द कोल्ड

एण्ड लाइफ सिक्स चोकिंग इन द वैल्स ऑफ ट्रीज

कहां से याद आ गयी ये लाइनें? यह सब भुला देने का कितना प्रयत्न किया है उसने, फिर भी...

वह वृक्ष के तने से पीठ टिका बैठ गयी। हाथ की शीशी को उसने एक बार फिर देखा। आंखें सहज ही बन्द हो गयीं।

वह मर जायगी। समाचारपत्रों में कहीं दो लाइनों में उसके खत्म होने की खबर शायद छप जायेगी। इस निर्णय में कहीं ऊहापोह नहीं है। उद्भ्रांत हो वह मौत को अपनाने नहीं चली। आत्महत्या भी एक प्रकार का शान्तिपूर्ण समझौता है—न जी पाने का या स्वयं उसे सहर्ष अपना लेने का। जीवन के ये प्रचंड कुठाराघात किसलिए? शायद इसी समाधान के लिए?

अचानक हवा एक मधुर हास्य से झंकृत हो उठी। लगा, एक साथ कई झरने झर-झर की झनकती-खनकती खुनखुनाहट लिये बह उठे हैं। उसने आंखें खोलीं।

बीस-पचीस नन्ही बालिकाएं हंसती-कूदती रास्ते से गुजर रही थीं। सफेद ब्लाउज, ब्लू स्कर्ट.. अत्यन्त निर्दोष सहज जीवन। इतने में ऊपर से एक पत्थर लुढ़कता हुआ आया और उसकी बगल से होता हुआ पहाड़ी ढलान पर लुढ़कने लगा।

दस साल की एक लड़की पास से दौड़ती हुई उस ढलान की ओर बढ़ी था उसने उस लुढ़कते हुए पत्थर को रोकने के लिए हाथ आगे बढ़ाया।

'नो.. नो...' टोली में से एक-दो की आवाज ने उसे टोका।

'डोण्ट वरी। आई एम आल राईट।' उस लड़की ने हंसते-हंसते जवाब दिया। फिर वह थोड़ा आगे झुकी...और झुकी।

बस एक पल में सब हो गया। लड़की का पैर थोड़ा फिसला कि अगल-बगल के पत्थर खिसक गये। एक हल्की चीख के साथ वह नीचे की ओर

लुढकने लगी। बिजली की तेजी से वह कब उसके पास पहुची तथा भाडियो मे अटकी पडी उस बालिका को किस फुर्ती से उसने खीचकर सहारा दिया और ऊपर ले आयी, उसे खुद ही नही पता चला। कदाचित यह बुद्धि का पूर्व-नियोजित कार्य नहीं था, शायद वृत्ति-जन्य प्रत्याघात था।

धीरे-धीरे ऊपर चढकर वह उसी तने के सहारे टिककर बैठ गयी और तभी उसके समक्ष वे कोमल भयत्रस्त चेहरे आभार के शब्द अपनी आखो में भरे खडे हुए थे। उसके एकदम करीब।

एक बडी-सी दीखती लडकी की आखो मे पानी भर आया था।

'पागल...अभी सिस्टर आयेंगी। और मैं उनको क्या जवाब दूगी? जरा भी अक्ल नही है तुझे।'

'प्लीज, यह बेचारी अभी अस्वस्थ और भयभीत है। अभी उस पर इस तरह गुस्सा मत करो।' सरल स्पष्ट अग्रेजी मे उसने उस बडी लडकी को टोका।

तुरन्त उन लडकियो की आपसी टीका-टिप्पणी एकाएक शान्त हो गयी।

दूर से एक सफेद वस्त्र-धारिणी नवयुवती आती हुई दिखायी दी।

'सिस्टर जोस्फीन...' कुछ लडकिया भागकर उनके नजदीक पहुच गयी थी तथा वहा पहुचने के पूर्व ही उन्ह क्या बीत चुका है, वह समझाने लगी।

सिस्टर जोस्फीन उसके करीब आयी। चेहरा ऊपर उठा वह उनकी नीली आखो मे झाकने लगी। नीरा भूरा आकाश जैसे सूर्य के प्रकाश से दमकता है, ऐसी ही चमक उन आखो मे थी। तदुरुस्त स्वच्छ गोरे मुख पर उसकी दृष्टि जैसे बधकर रह गयी।

'तुम्हारा आभार।' नीचे बैठी हुई उस बालिका के सिर पर स्नेह से हाथ फिराते हुए उन्होंने कहा, 'आपका भी आभार, ओ परम पिता, नही तो आज मैं अपनी प्यारी चीज खो बैठती तो?' कहकर उन्होंने अपनी छाती पर 'क्रॉस' बनाया।

जवाब मे वह कुछ भी न बोली। सहज हस पडी। उसके एक हाथ मे अभी भी वह शीशी दुबकी हुई थी तथा दूसरा हाथ उस बच्ची के सिर

पर घूम रहा था। मृत्यु का वरण एक हाथ से तथा दूसरे से जीवन-रक्षा ? हंसे नही तो क्या करे ?

सिस्टर तथा छात्राएं जाने के लिए तैयार हुईं। जाने से पूर्व हर लडकी ने उसके करीब आकर उस लाख-लाख धन्यवाद दिया और वह हसती रही।

लडकिया आगे निकल गयी। सिस्टर वही-की-वही खडी थी। 'तुम्हे नही जाना है ? तुम यहीं बैठी रहोगी क्या ?'

सिस्टर की आवाज ने उसे झकझोर डाला। इस आवाज से डरने की जरूरत भी थी। यह ऐसी आवाज है जिसमे वशीकरण मन्त्र है, जिसके जादू से आपके भीतर छिपा हुआ सब कुछ व्यक्त हो जाने का भय है। यह आवाज उसे बाहर खीच लेगी।

सचमुच डरने की आवश्यकता थी।

सिस्टर जोस्फीन ने एक छोटी-सी चट्टान को हल्के से झाडा तथा उसके समीप ही बैठ गयी। उसकी ओर देखते हुए वे सौम्य-मृदु आवाज मे बोली, 'स्लीपिंग टेबलेट्स की तुम्हे इतनी क्या जरूरत आ पडी ?'

सुनकर वह चौंक उठी। हाथ की मुट्ठी के बीच छिपी हुई शीशी इतनी सहजता से दूसरो की दृष्टि मे आ जायेगी, यह उसके ध्यान मे ही नहीं आया था।

'तुम कितना भी छिपाकर रखती, फिर भी अपनी आखो मे प्रतिबिंबित हो रहे तथ्य को तुम बिलकुल नही छिपा सकती, वह मैं पढ सकती हू, देख सकती हू।' सिस्टर धवल हसी हस दी, 'हम भगवान के सेवक हैं। मानव का दु ख-सुख हम उनके साथ झेलते हैं। उनको दूर करने का प्रयत्न करते हैं। भगी की तरह हमें भी खबर हो जाती है कि कचरा कहा-कहा पडा है।'

वह हस पडी। आखो के कोर सहसा भर आये।

मा...दादी के एक-डेढ महीने बाद वह मा से मिलने गयी थी। उस समय मा ने भी टोका था

'तुझे कुछ दुख जरूर है, बिटिया ! तू लाख छिपाये, किन्तु तेरा चेहरा देखकर ही मैं बता सकती हू।'

स्नेही की सहस्र आखें होती है!

सिस्टर ने शीशी उसके हाथ मे वापस ले ली।

'यह गोली की दुनिया भी अजब नहीं है क्या ? पति के साथ झगडा हो गया, गोली ले लो। परीक्षा मे फेल हो गये, गोली ले लो। पैसा नही है या ज्यादा है, तब भी गोली! हम भी तो प्रत्येक दु ख, शोक, रोग से युद्ध-रत् है किसी भी हालत मे गोली की बात नही सोचते।'

'यह कितना बडा अन्याय है ? सत्य तो यह है कि आदमी जिन्दगी की शुरुआत ही मे जानता है कि उसे मृत्यु तक ही जीना है, जीवन-यात्रा ही मृत्यु तक है। अगर मृत्यु न हो, तो जीवन-यात्रा का आभास कैसे होगा ?'

'सिस्टर, हम जायें क्या ?' थोडी दूर जाकर ठहर गयी लडकियों मे से किसी एक ने आवाज दी।

'थोड़ी देर खडी रहो, मै आती हू।' कहकर सिस्टर ने अपने हैंड-बैग से एक छपा हुआ कार्ड निकालकर उसके हाथ मे थमा दिया और बोली, 'मेरा नाम डॉक्टर जोस्फीन है। मैं कुछ दिनो बाद यहा के मिशन स्कूल मे कलकत्ता जाने वाली हू निराश्रितो की छावनी मे। तुम मुझे मेरे काम मे मदद करोगी ?'

हाथ की शीशी उसे वापस लौटाती हुई सिस्टर बोली 'मौत की मदद के बिना आदमी जिन्दगी नही जी सकता यह तो सच है, किन्तु बहन! बिना जिन्दगी जिये मौत का सहारा लेना क्या उचित है ?'

एक ममतामयी मुसकराहट बरसाती हुई वे उठ खडी हुई तथा लडकियो की टोली मे शामिल हो गयी।

'बॉय. बॉय ..थैंक यू वेरी मच। मे गॉड ब्लेस यू। लडकिया हाथ हिला हिलाकर उससे विदाई माग रही थी। धीरे-धीरे वे सब उसकी आख स ओझल हो गयी।

धूप काफी उमस-भरी हो रही थी। हवा एकाएक तेज हो उठती थी। वृक्षो के नीचे एक अजीब-सी शीतलता का आभास हो रहा था। उसका दिमाग बिलकुल उत्तेजित नही था। वह काफी स्वस्थता महसूस कर रही थी। विरक्त भाव से उसने हाथ की शीशी को देखा। फिर सिस्टर द्वारा दिया हुआ कार्ड पढने लगी।

'तुम्हें आत्मघात करना है ? जरूर करो ! किन्तु करने से पहले मुझे इस नंबर पर फोन कर लेना । हम लोग विदाई के क्षणों में कुछ और बातें कर लेंगे ।'

नीचे स्विट्जरलैंड की किसी धार्मिक संस्था का नाम दिया था तथा सिस्टर जोसफीन का भी नाम दिया था ।

लाइफ, गौरव लाइफ इज़ अर्नेस्ट

एण्ड द ग्रेव इज़ नॉट इट्स गोल…

कवि, मुझे किसी भ्रम की सृष्टि में तो नहीं भटकाना चाहता ?

वह हास्पिटल में वापस आ गयी । सिस्टर तथा दूसरी नर्सें उसे जी-जान से खोजने में व्यस्त थीं ।

'कहां गयी थी तुम ? पुलिस हमारी जान ले डालती । समझी क्या ?'

बिना कोई जवाब दिये वह अंदर अपने कमरे में चली गयी ।

देखते-देखते शाम हो गयी । श्याम रंग के शिखरों से बहती हुई तीखी ठंडी हवा शरीर को सिहराने लगी । अपने कमरे की खिड़की से वह हास्पिटल के करीब से गुजरती हुई सड़क देखती रही । सर्दी का मौसम होने की वजह से प्रवासी ज्यादा नहीं थे और जो इक्का-दुक्का थे भी, वे सांझ की ठंड से बचने के लिए अपने-अपने होटलों के कमरों में पहुंच गये थे । सड़क एकदम सुनसान पड़ी थी—अपनी छाती पर यात्रियों के पद-चिह्नों की छाप लिये मौनव्रता-सी । वह खुद भी तो इस सड़क-सी हो रही थी—एकाकी, स्वजनविहीन !

उसका चेहरा एक अव्यक्त व्यथा से सिकुड़ उठा । आंखों से हृदय का बांध कब फट पड़ा, पता ही न चला उसे । खिड़की का सरिया पकड़े वह न जाने कब तक ऐसे ही खड़ी रही ।

अनजाने ही किसी के अदृश्य हाथों का स्पर्श उसकी पीठ सहला रहा था । 'रो, खूब रो…तुझे अच्छा लगेगा । शायद तेरा मन हल्का हो जाये ।'

पुलिस का आदमी चला गया था । सारी कानूनी कार्यवाही सुलझा दी गयी थी । अब दंड-वंड की संभावना समाप्त हो चुकी थी । उसे जब

ये सारी बातें पता चली तब उसने सिस्टर मार्था से पूछा :

'यह सब किसने किया ?'

'तुम्हारे पति ने।'

उसके गालो पर पिछली रात के आसुओ का खारापन अभी भी चिपका हुआ था। धीरे से उसे पोंछते हुए उसने कहा :

'बहुत दुखी हुआ होगा बेचारा। मैं मरने के बदले जिन्दा कैसे बच रही, इसलिए ! आपको नही लगता क्या कि मुझे मरने का एक और भारी प्रयास करना चाहिए ?'

मार्था खिलखिलाकर हस पडी।

'अब तुम मुक्त हो। तुम्हे जहा जाना हो जा सकती हो। मैं डॉक्टर के पास स डिस्चार्ज का मेडिकल सर्टिफिकेट भी ले आयी हू।'

वह मुक्त थी। अकेली थी। जीने के लिए उसे अकेला छोड दिया गया है। मरने से बचाने के लिए पूरा समाज इकट्ठा हो गया था !

हास्पिटल की छोटी सी लाल इमारत के समक्ष खडी रहकर पल-भर के लिए उसने सोचा। फिर धीरे से अपना पर्स खोल, वह मुडा-तुडा कार्ड उसने बाहर निकाला और जैसे एक ही सास म उसने निर्णय ले लिया हो।

सिस्टर जोस्फीन की दो नीली-स्वच्छ झील सी आखें उसके आगे, सध्यातारा-सी प्रकाशमान हो उठी।

सडक पार कर वह बाजार तक चलकर गयी। एक कुली-जैसे आदमी से उसने पूछा, 'मिशन स्कूल कहा है ?'

'मैं जब स्कूल म पढती थी, तो ऐसे ही एक दिन एक सार्वजनिक लाइब्रेरी मे चली गयी। वहा मेरे हाथ मे एक पुस्तक लगी—'सीता। तू विश्वास करेगी मजू, पूरी रात बैठकर मैं वह किताब पढती रही। मेरी मा को तो यह देखकर चिन्ता हो गयी कि उस पुस्तक के लेखक ने कही जादू तो नही फूक दिया है लाइना मे !'

मजू मुग्ध बनी सुन रही थी।

'फिर तो मैं ऐसी कई भाषान्तरित पुस्तकें पढने के लिए लेकर आयी। मजू, तून तो वे किताबें अवश्य पढी होगी न ? और जैसे-जैसे वे किताबें मैं

पढ़ती गयी, वैसे-वैसे मुझे महसूस होने लगा, मानो समस्त विश्व की घोर यातना, व्यथा, अवहेलना, प्रताडना सहन करने के लिए ही नारी का जन्म हुआ है ..स्त्री है शेषनाग ..अपने माथे पर सम्पूर्ण धरा को उठाये हुए।

मजू ने सिस्टर जोस्फीन का व्यथित चेहरा देखा, फिर उन्हे बीच मे ही टोकती हुई बोली

'सिस्टर, आपने अहिल्या की कथा सुनी है ?'

'शायद, किन्तु ठीक से याद नही आ रही है।'

मजू की आखो मे जलते सूर्य की तपन उभर आयी।

'सिस्टर, वह एक पतिव्रता स्त्री थी। उसके पति का बस इतना ही याद था कि उसका पतिव्रता होना जरूरी है और 'वह' एक स्त्री है, यह बात वह भूल गया। उसके साथ किसी ने सहवास का नाटक खेला और पति ने उसे पत्थर बना दिया।'

'फिर ?' सिस्टर ने वृक्ष के नीचे पडी शिला पर बैठते हुए पूछा : 'मजू, उस अहिल्या का क्या हुआ फिर ?'

'पुराण की उस अहिल्या का तो उद्धार हो गया था एक दिन। दूसरी भी एक अहिल्या है, सिस्टर। उसका नाम मजू है। उसने आत्मघात का प्रयत्न किया।'

मजू का हाथ स्नेह से अपने हाथो के बीच दबाकर सिस्टर ने अत्यन्त मृदु स्वर मे कहा, 'मैं जानती हू। सीसी हाथ में छिपाये बैठी हुई उस पत्थर की मूर्ति को मैंने तुरन्त पहचान लिया था, मजू।'

२

आकाश से रिमझिम रिमझिम बूदें गिरने लगी। थोडी देर के लिए बूदें धार मे परिणत हो गयी। बादलो का भूरा रग सहसा सावले काले रग मे बदल जाता और लगता कि वे नीचे और नीचे धरती पर लोट पडेंगे। हाथ लम्बा कर मैंने पानी की कुछ बूदें अपनी हथेली पर ले ली।

'आज की यह मेघाच्छादित सुबह और अन्तर की बात.. ऐसा कौन है, जो एक सकेत मात्र से...मुझसे अभिसार के लिए निकल पडेगा ?'

रवीन्द्रनाथ की यह व्याकुलता।

बम्बई की भव्य उद्योगनगरी मे काले धन से सजे फ्लैट मे रवीन्द्रनाथ की भूली-बिसरी पक्तिया मेरे अन्तर मे कहा से उभर आती है ?

मेरे सामने, समुद्र से आती हवा बालो को बिखेर देती है। 'बाल बिखर कर कभी-कभी मेरे चेहरे को ढक लेते हैं, धीरे-धीरे उन्हे एक हाथ से सवारते हुए मैं आसमान की ओर देखती हू।

बरसात अविरत बरस रही है। मुझे लग रहा है जैसे मेघ हस रहे हैं। सहसा कालिदास की पक्तिया याद हो आती हैं

कवि, बादल मे मे झरती तथा धरती मे से फूट निकलती सुन्दरता को मानव-हृदय मे प्रस्फुटित होते प्रणय की कोपलो को, कैसे आत्मसात कर अनुभूत कर सका ? अलक लटों को ऊचा कर, मेघ निहारती ग्राम-वधुओ के अन्तर मे तू किस तरह प्रवेश कर सका ? ओ कवि...' ,

सामने समुन्दर उत्ताल तरगो मे उछल रहा है। तेज हवा के झोको के साथ फुहार का एक झटका सहसा भिगो देता था। दूर—बहुत दूर, क्षितिज तथा समुन्दर एकाकार हो गये थे। किनारे पडे पत्थर स्निग्ध धुले-धुले-से प्रतीत हो रहे थे।

मा कभी-कभी वर्षा भीगी साझ मे रोटी सेंकती-सेंकती गाती थी

'देखो घिर आये बादर कारे,
गोकुल मे नाच उठा मोर
अब उमग है साजन तोर।'

मा का स्मरण आखो मे नीर बन वह चला।

घर कहा है ? मा कहा है ? मेरी वे प्रिय पुस्तकें कहा ?...मैं यहा कैसे आ गयी ?...

एक व्याकुलता हृदय के भीतर जग उठी।

'मजू !' एक स्वर उभरा और मेरे रोम-रोम से चिपककर रह गया। मैं सहसा चौंक उठी। मैंने धीरे मे गालो पर बहती हुई मा की याद पोंछ

डाली।

मजू ! क्या कह रही हो वहां ? मेरे पीछे निखिल आकर खडे हो गये थे। मैं घबराहट से जड हो उठी। शायद कुछ गलत-सलत करते हुए मुझे पकडा गया था। इस समुदाय मे स्त्रिया शायद इस तरह से बालकनी मे नही खडी होती ? शायद !

अभी हमारी शादी का केवल पद्रह दिन ही तो हुए थे ! इसके पूर्व मैं उन्ह पहचानती तक नही थी। और अब वही व्यक्ति मेरे सपूर्ण जीवन का, मेरे सस्कारो का, मेरे सर्वस्व का मालिक बन बैठा था।

'जी।'

इन पद्रह दिनो मे भी मैं उन्ह खास पहचान नही सकी हू, और जो कुछ थोडी-बहुत आत्मीयता हुई है, उसने मुझे भयभीत ही किया है। उनसे भी और अपने आपसे भी।

अत्यन्त सुघड रीति स पहने गये कपडे, यत्नपूर्वक तहाया गया रूमाल, पॉलिश से चमचमाते जूते, चबा-चबाकर उच्चारे गये अग्रेजी शब्द. . बस इतनी ही पहचान मैं निखिल के विषय म दे सकती हू। उनके हृदय को कभी अत्यन्त समीप से महसूस कर सकू, इसका मौका ही नही दिया उन्होने।

हम दोना के बीच कुछ पहाड है, कुछ खाइया हैं, जहा से खडे-खडे हम एक-दूसरे को सिर्फ देखत है। एक-दूसरे के करीब से गुजरने की कोशिश कभी नही करते, न ही इन दूरियो को खत्म करने के लिए कोई सेतु किसी क्षण स्वयमेव...

वह मरे पीछे ही खडे रहे। गभीर मुह बनाये हुए मैंने भी बालकनी की रेलिंग का सहारा ले लिया स्वय को प्रकृतिस्थ रखने के लिए। अब किसी भी प्रकार की आज्ञा या हिदायत झेलने के लिए तैयार हू।

एक एक पल अनमना-सा व्यतीत हो रहा है।

बाहर बरसात की रिमझिम अभी भी चालू थी। मेरा मन बार बार चचल हो उठता था—गली मे दौड जाने के लिए, पानी मे भीग-भीगकर खूब जोरो स हम पडने के लिए . मेरे पास निखिल खडे थे। पानी क सोख लेने वाले प्रखर सूर्य की तरह।

निखिल ने दात पीसकर बरसात की ओर देखा। फिर चुपचाप खडी हुई मुझको देखा। अब वे मेरी बगल मे थे। हम दोनो की आखें मिली।

नवपरिणत दपति आखों से बातें करते है, हसते होठो से ,बातें करते हैं। स्नेह के प्रगाढ क्षणो मे हृदय की धडकनो से बातें करते हैं।

किन्तु हमारी बात अलग है। हम दोनो बातें नही करते। हमारी आखें गूगी होती हैं। मेरी घबरायी हुई बावरी आखो तथा उनकी सत्तावाही, धाक-भरी आखो की परिभाषा ही अलग है।

नवदपति को कुछ बोलना ही चाहिए, किसी भी विषय मे, किसी भी रूप मे...

निखिल थोडा और आगे आकर खडे हो गय । फिर बालकनी से आसमान की ओर ताकते हुए दात पीसकर बोले, 'डैम दिस रेन! आज की पार्टी का सत्यनाश हो गया।'

कालिदास की कवित्तमय भावना को ठोकर मार ही दी थी निखिल ने। आज की पार्टी का ज्यादा महत्व था। बरसात दुष्ट है, उसने निखिल का अपमान किया है। रग मे भग...

दूर रास्ते पर एक युवक तथा युवती एक ही छाते मे एक-दूसरे मे सटे-सटे से आधे भीगते हुए चले जा रहे थे। युवती का सुडौल अग भीगी हुई साडी में एक गढी हुई मूर्ति-सा लग रहा था। आज पार्टी मे ले जाने के लिए खास अवसरो पर उपयोग आने वाली 'मर्सिडीज' चमकायी गयी थी। और मेरा मन...बाहर बरसात मे एक छतरी के नीचे निखिल के साथ घूमने का कर रहा था, भीगने का कर रहा था...फुहारो को बन्द पलकों पर झेलने का कर रहा था...

गला खखारकर, अत्यन्त समझदार आवाज मे निखिल मुझसे बोले।

उन्हे सफाई देने के विस्मय-भरे अन्दाज मे मैंने अपने दोनो हाथ आगे बढ़ाये। अपनी लम्बी श्वेत अगुलियो पर नन्हे-नन्हे गुलाबी नखो पर इससे पूर्व मैंने कभी ध्यान नही दिया था।

निखिल के मुह से चीख निकल गयी, 'यह क्या? आज तुमने 'मेनी क्योर' नही कराया?'

'मेनी क्योर!' मेरे मुह से निकल पडा। मैंने तो इस विषय मे कभी

सोचा ही नहीं। आज की पार्टी के लिए इतनी छोटी-सी बात इतनी ज्यादा महत्त्वपूर्ण होगी, इसकी मुझे कल्पना ही नहीं थी।

'तुम,' निखिल ने मेरे दोनों हाथ झटककर पीछे कर दिये, 'तुम मेरी हंसी उड़वाना चाहती हो? मुझे सब के बीच में नीचा दिखाना चाहती हो?'

मैं बाहर इधर-उधर बेमतलब ताकती रही, क्या प्रत्युत्तर दूं। श्याम सावरे के आमन्त्रण पर बावरी-सी भागने वाली गोपिकाओं ने क्या कभी अपने नखों के विषय में सोचा था?

'देखो, तुम अब अपने गरीब मा-बाप को भूल जाओ, समझीं? तुम अब श्रीमती निखिल विभाकर हो, यह मत भूलो। बम्बई की क्रीम सोसाइटी में अगर इस तरह गांव-गवाड़ियों की तरह रहोगी, तो बिलकुल नहीं चलेगा। तुम्हें अत्यन्त स्मार्ट तथा सोफिस्टिकेटेड बनकर रहना होगा।'

निखिल अत्यन्त सभ्य है। उसने मुझे गाली नहीं दी। गुस्सा भी ज्यादा नहीं किया। दिमाग खराब हो गये मरीज को डॉक्टर इलेक्ट्रिक शॉक देते हुए क्या वैर भाव दर्शाता है?

'किन्तु मेनी क्योर मुझे किसलिए?'

उनका मुंह गुस्से से विकृत हो उठा। माथे पर बल स्पष्ट हो उठे, जैसे आइने में किसी ने हथौड़ी दे मारी हो और शीशा तमाम आड़ी-तिरछी लकीरों में चटक गया हो।

आकाश में बादल खुल गये थे। लगता था अब बरसात रुक गयी है। समुद्र से बहता हुआ समीर अत्यन्त सुखद सा महसूस हो रहा था। शरीर में एक अजब सी सिहरन दौड़ गयी। मैंने इन सब बातों में स्वयं को हटा लेना चाहा।

'इतने गन्दे बेहूदे नाखून! छि, कोई पार्टी में देखेगा, तो क्या कहेगा?'

केवल निखिल ही नहीं, उनके कलफ वाले कपड़े, चमचमाते हुए जूते, उनका करीने से बनाये हुए बालों वाला चेहरा...सब कुछ जैसे मेरा उपहास उड़ा रहे थे।

यह सब सच है? ये शब्द क्या सचमुच मेरे लिए कहे जा रहे थे? किसने कहे हैं? मेरे पति ने? मेरा पति.. वह मेरे नजदीक नहीं आता। स्नेहपूर्वक कभी मेरा स्पर्श नहीं करता। इसी फ्लैट में केवल अमीरी की

निष्प्राण ठडी साँसें ढोलती है, वह सलोनी गुदगुदाहट-भरी दो शरीरों के टकराव की उष्मा ..निखिल ! मेरे करीब आकर मुझे देखो, मुझे महसूस करो।

निखिल, तुम जानते हो, पति-पत्नी का सम्बन्ध क्या होना है ? उनका मिलन कितना मादक .. और फिर प्रस्फुटित होती है त्याग की, बलिदान की, सहनशीलता की अनेक-अनेक रेखाएं, जो एक परिवार का सृजन करती हैं, उसका रक्षण करती है। और परस्पर यह मिलन जीवन को कितना भरा-पूरा कर देता है !

हमारा सम्बन्ध पति पत्नी का है या कैदी-जेलर का...

मैं यह सब सहन करने को तैयार हू, इन सारी वचनाओं का भार उठा लूगी। मगर...

'मजू !'

'जी।'

'यह बेवकूफों की तरह बाहर क्या देखती रहती हो ? दिन भर क्या सोचती रहती हो ? देखो ..' निखिल की आवाज मे बच्चे को फुसलाने जैसी नरमाहट पैदा हो गयी थी, 'देखो, तुम ऐसा करो। अभी का अभी 'ब्यूटी पार्लर' चली जाओ। अपनी हेयर स्टाइल, मेक-अप, मेनी क्योर .. सब करवा आओ।

यह स्वर छाती मे चुभ गया। मैं एकबारगी तडफड़ा उठी। अचानक निखिल का मजाक उडाने का, उसकी इस कृत्रिमता पर हस पडने का दिल हो आया। आखो के कोर छलछला उठे। उथले पानी मे छप-छप करते निखिल को देखकर मुझे उन पर क्रोध भी आया और दया भी।

'नही, नही...त्वमेव भर्ता न च विप्र योग ।'

बातचीत पूरी हो चुकी थी। वे थोडी देर तक खडे रहे। अब क्या कहें, यह सूझ ही नही रहा था शायद।

'फिएट ले जाओ। नीचे खडी है।' कहकर वे चले गये।

बरसात एकदम थम गयी थी। सूरज की मतेज किरणें बादलों को चीरती हुई फूट पडी थीं।

फिएट मे बैठकर बाहर देखा। मेघ-धनुष हस रहा था। मन उत्साह से

प्रफुल्लित हो जैसे नाच उठा।

वटमीकाग्रात् प्रभवति धनुखण्ड-माखण्डलस्य।

मैंने नजर फिरा ली।

ठीक दो घंटे पश्चात मैं घर वापस आयी थी। मेघ-धनुप के रंग बिखर गये थे। गाडी के काच पर मेरे चेहरे का प्रतिबिंब पड रहा था। ग्राम-वधू की अलक-लटें किसी ने काट डाली थी। वधू वेश्या बन गयी हो जैसे...

'ताज' की पार्टी म मैं अपना पार्ट ठीक से नही अदा कर सकी थी।

सुन्दर सुव्यवस्थित स्टेज ही तो था वह। कितने ही अभिनेता-अभिनेत्रिया वहा अपना-अपना पार्ट अदा करने के लिए एकत्र हुए थे। एक बहुत बडा बिजनस जो करना था! हरेक पुरुष के मुह पर एक नकली चेहरा था तथा हर स्त्री के चेहरे पर 'ब्यूटी पार्लर'। किसी अमलदार के पास से लाइसेन्स लेना था।

अमलदार की पत्नी हाथ म ह्विस्की का गिलास लिये हुए मुझसे पूछ रही थी, 'आप कहा पढी हैं? शिमला या मसूरी?'

'जी, बम्बई म ही। परेल म मेरे मा-बाप रहते हैं। वही पास में एक स्कूल था।' मैंने जवाब दिया।

'ओह! परेल!' उनके हाथ का गिलास थोडा काप गया। निखिल का चेहरा गुस्से मे तमतमा उठा। उन्होंने मुझे चेतावनी भरी नजरो से देखा।

गरीब मा-बाप को जिन्दा ही कब्र म दफन कर देने का यह आदेश था। मैंने बातचीत को दूसरा मोड दिया। वेटर 'आइस बकेट' हमारे सामने रख रहा था।

'आइस, मैडम?'

उसकी आवाज, उसका चेहरा मुझे कुछ परिचित-सा लगा। मैंने सप्रयास उसकी ओर देखा और मेरे मुह से एक धीमी-सी चीख निकल गयी।

'रघु!'

रघु का चहरा पूर्ववत् भाव-विहीन था। किन्तु उसकी आखें हस उठी। कापती सी अस्फुट आवाज़ निकली, 'बेबी बाई!'

उसी समय ग्रमलदार की पत्नी मिसेज़ घोष मेरे करीब खडी हो गयी आकर। एक आइस क्यूब डलवाया उन्होंने अपने गिलास मे और बोलने लगी।

'यू सी, मिसेज विभाकर! आजकल सर्वेन्ट्स सचमुच प्रॉब्लम हो गये हैं। कभी-कभी तो मैं इनसे इतना परेशान हो जाती हू...' मेरा ध्यान खीचने के लिए उन्होंने मेरे कन्धे पर हल्के से हाथ रख दिया।

रघु को देखने, मिलने की खुशी अभी खत्म नही हुई थी। मैं उससे दुबारा मिलना चाहती थी। बातें करना चहती थी—उनके सुख दु ख की। किन्तु इस नाटक की मध्य बिन्दु थी मिसेज घोष—ग्रमलदार की पत्नी।

और इस नाटक की नायिका अगर नौकरो के दुर्व्यवहार के विषय मे बोलेगी तो मुझे सुनना लाजिमी है।

'आप जानती हैं, कल मेरे कुक ने क्या किया? कल मेरे यहा डिनर था। यू सी, मेरे हस्बैण्ड इतने बडे अफसर हैं, यह सब अक्सर होता है। और वह पट्ठा बोलने लगा—मुझे गाव जाना है, मेरा बाप बहुत बीमार है। मैं रात की गाडी से...और...और मैंने उसे निकाल दिया.. साला रास्कल था...वेटर! ह्विस्की और पानी ले आओ।' उन्होने थोडी दूर पर खडे हुए रघु को इशारे से बुलाया।

'मेरा बस चले तो सारे नौकरो को फासी की सजा सुना दू। इडियट्स ...'' मिसेज घोष ने घृणा से गिलास मे से घूट लिया।

मेरी दृष्टि रघु पर गयी। ह्विस्की का पैग डालते हुए उसके हाथ काप गये। उसका चेहरा निचुडा-सा और आखें सुलगती-सी लगी।

मिसेज घोष की ओर देखते, बातें सुनते कौन जाने क्यो, मेरे भीतर भी कुछ सुलगने लगा था। क्रोध की एक चिनगारी उठी...और मेरा अग-अग दहकने लगा था। माथे की नसें जैसे फटने लगी। लिपे-पुते चेहरे वाली, नशे से लाल आखो वाली मिसेज घोष मुझे भयकर रूप मे कुरूप लगने लगी। एक झटके मे इन शोषणखोरो की दुनिया के, पत्तो के महल को तहस-नहस कर देने की प्रबल इच्छा हो आयी।

'मिसेज घोष, सारे नौकरो को फासी पर चढाने से पहले कुछ मालिको के साथ ऐसा करना जरूरी नही है क्या?'

परेल की चाल मे पली मिल-मजदूर की लडकी और क्या कहेगी ?

'मजू !' निखिल का आक्रोशपूर्ण स्वर चेहरे पर एक स्मित ओढे हुए था, 'मजू को जोक्स करने की आदत है, यह सब वह आपको हसाने के लिए बोल रही थी, अचरज मे डालने के लिए बोल रही थी । वह जानती है, यह सब सुनकर आप चकित हो उठेंगी ।' निखिल मिसेज घोष को मेरी बातें समझाने का प्रयत्न कर रहे थे ।

'मजू, मैं मिसेज घोष की बातो से हड्रेड परसेन्ट सहमत हू ।' उन्होंने हसने का झूठा प्रयत्न करते हुए कहा और आखें...मेरे शरीर के टुकडे-टुकडे को चीर-चीरकर फेंक देना चाह रही थी ।

मैं उनके बीच से खिसक गयी । निखिल के पत्थर हृदय के किसी एक कोने पर मेरा प्रहार हुआ था । वे विचलित हो उठे थे और इस विचार ने मुझे काफी सतोष दिया ।

'सिर पर यह किताब रखिए। दोनो हाथों को एकदम सीधा छोड दीजिए । छाती तनी हुई ' हा, अब चलो ।' मिस डिसूजा मुझे चलना सिखा रही हैं। ऊची एडी की सैंडिल और ढलकते आचल के साथ, लचक भरी चाल ।

मिस डिसूजा आज्ञा देती हैं और मैं चल पडती हू ।

'तरी हाक सुनकर कोई नही आयेगा । तू अकेली ही जाना रे...।'

मुझे रवीन्द्रनाथ याद आ रहे है । चलते-चलते मैं सोच रही हू, यह सहसा रवीन्द्रनाथ की 'गीताजलि' की पक्तिया कैसे स्मरण हो आयी ! मन व्याकुल हो उठा ।

अकेला चलो...अकेला चालो रे...

मूयो यथा मे...

नही...यह घर मेरा नही है । हसने का मन करता है । यह तो जान-बूझकर दे दी गई कैद है...उस ग्रीक नायक की तरह, जिसके मुडकर देखते ही उसकी चेतनशील स्त्री पत्थर की पुतली बन जाती थी, ठीक मुझे भी कोई पत्थर की पुतली बना रहा है...

चलते-चलते मेरा पोर-पोर जैसे जम गया है ।

'बोलो थैंक्यू, नो-नो'''रुककर नही, एक बार मे ही, थैंक्यू...' मिस

डिसूजा मुझे ठीक से उच्चारण करना सिखा रही है।

मेरे अंग्रेजी के उच्चारण उजड्डों-से हैं, निखिल को सुनकर काफी तकलीफ होती है।

'बोलो, कोशिश करके बराबर बोलो। इस तरह खिड़की के बाहर क्या देखती रहती हो? यह दिन-भर सोचती क्या रहती हो?' मिस डिसूजा चिढ़कर मुझसे पूछती हैं।

निखिल के ही प्रश्न की पुनरावृत्ति। खिड़की से बाहर जो कुछ दिखता है वही तो मेरे अत्यन्त निकट है। मिस डिसूजा सिर्फ कुढ़कर रह जायेंगी, गुस्सा या झुंझलाहट व्यक्त कर ही नहीं सकती।

एक स्त्री है। उसका नाम मंजू है। आश्चर्य की बात तो यह है कि उसके पति को ही नहीं पता कि मंजू भी एक औरत है। और उस मंजू को सुधारने के नित नये-नये गुर आजमाये जाते हैं!

काश! मंजू हृदय-विहीन होती। वह भी उस...ओ...लान की तरह पति को परमेश्वर की तरह पूजती होती तो?

'मिस डिसूजा, तुम ओ...लान को पहचानती हो?'

'कौन? क्या वह आपकी कोई परिचित है?

'हां, परिचित है। युग-युग से। तुमने भले ही नाम चाहे आज ही सुना हो किन्तु मिस डिसूजा, तुम भी उसे अच्छी तरह पहचानती हो...।'

फिर सांझ हो आयी थी। मैंने मिस डिसूजा को ओ...लान की कथा कह सुनायी थी।

डिसूजा की आंखें भर आयी थीं, 'मंजू, तुम पर्ल बक को एक पत्र लिखोगी? उनको लिखना—पति न हो, छोटे-छोटे बच्चों को पाल-पोस-कर बड़ा करना हो, तो औरत क्या करे? इसकी भी एक कथा लिखें।'

एक झटके के साथ हमारे कमरे का दरवाजा खुल जाता है। निखिल भीतर दाखिल होते हैं। बातों-ही-बातों में कितना समय व्यतीत हो गया था, इसकी हमें खबर ही नहीं थी। और कब निखिल आ गये थे, इसका भी पता नहीं चला था।

'हल्लो!' आवाज में एक अजीब-सा माधुर्य उंडेल मिस डिसूजा निखिल का अभिवादन करती है।

'हल्लो, कैसा चल रहा है ?' आवाज मे थोडा रोब खनक उठता है। मेरी तथा निखिल की दृष्टि पल-भर के लिए मिलती है। फिर हम दोनो ही एक-दूसरे से नजरें चुरा लेते हैं।

मिस डिसूजा मुझे सिर पर किताब रखकर चलने के लिए कहती हैं।

एक अदृश्य आवेग से मेरा हृदय भर उठता है। रोष, घृणा या लज्जा ...मैं ठीक से समझ नही पाती। किन्तु कोई उग्र विद्रोह मेरे अन्तर मे जाग उठता है।

झूठ है। यह सब फरेब है। इतना घोर अपमान...किसलिए ? क्यो ?

मैंने किताब उठाकर एक कोने म फेंक दी।

मिस डिसूजा का लिहाज किये बिना मैंने निखिल से कहा—

'मैं तुम्हारी पत्नी हू, चाबी भरी हुई गुडिया नही।'

एक सोफे पर ढेर होकर मैं शान्ति से बर्ट्रेण्ड रसेल की किताब खोल-कर पढने लगती हू।

सामने खडे ज्वालामुखी से कब लावा फूट निकलेगा, इसकी प्रतीक्षा करते हुए मेरी दृष्टि सिर्फ पक्तियों पर बिना पढे घूम रही है।

निखिल मिस डिसूजा को सौ रुपये का नोट थमा छुट्टी कर देता है। विद्रोही नारी के लिए अब वह स्वय कोई व्यवस्था करेगा।

दु खी, उदास, जाती हुई मिस डिसूजा मन को द्रवित कर जाती है।

पर्ल बक। तुम्ह कई ओ...लान की कहानिया लिखनी हैं।

मेरे सामने आकर निखिल मेरे हाथ से किताब छीनकर कोने मे फेंक देते हैं।

'मजू, मैंने तुम्हे चाल मे से उठाकर महल मे बैठा दिया, इसका ऐसा बदला ? यू थैंकलेस वूमन !' उनका शरीर क्रोध से काप रहा था।

निखिल का क्रोध, असहायता मुझे छू लेती है। मुझे अपने बर्ताव पर ग्लानि हो आती है। पछतावा लगता है।

मन-ही-मन एक निश्चय होता है —नही'' नही, पुरानी मजू को मरना ही होगा।

दुगुने उत्साह स मैं काम म लग जाती हू। चेहरे को सजाना-सवारना, पहनावा-उढावा आकर्षक ढग से पहनना, बातचीत सलीके से करना, एक स्मित हर वक्त होठो पर ओढे रहना...मैं इन सबमे खो जाने की चेष्टा करती हू।

एक बार मैं किसी दूकान से नीचे उतर रही थी कि सहसा रघु से भेंट हो गयी।

मुझे देखकर वह थम गया। सहज हस दिया, किन्तु अगले ही पल हास्य न जाने कहा गायब हो गया।

"क्यो रघु ? मैं न बुलाती, तो तुम बिना मिले ही खिसक जाते। हैं न ?'

'जी, नमस्ते, बेबी बाई!' शब्द जैसे जबरदस्ती उसके मुह से निकले थे।

'क्यो रघु ? मुझे भूल तो नही गये न !' मैंने हसकर पूछा।

दूर फुटपाथ के किनारे खडा हुआ शोफर दौडकर मेरे करीब आया। उसे लगा, शायद कोई मवाली है, जो मुझे तग कर रहा है।

'कैसे भूल सकता हू ? तुम तो मेरी बहन जैसी हो।' रघु पुन जबर-दस्ती हसता हुआ-सा बोला।

'क्या कर रहे हो आजकल ? उस दिन तुम्हे ताज मे देखा था न। मिलने आने के लिए बहुत मन हुआ था किन्तु...'वैसे ही अटक गयी।

'आपकी दया है, आजकल भुलेश्वर मे एक छोटी-सी दूकान पर बैठता हू। दूकान के पीछे ही रहने के लिए एक छोटी-सी जगह है बस, उसी मे दो जने मिलकर गुजारा कर लेते है।'

'दो जने ? तू ने शादी कर ली है क्या ?' सुनकर वह थोडा लजाया, फिर हस दिया।

'बाई, गाडी वापस ले जाना, आपका काम खत्म हो गया ?' शोफर ने मेरी तरफ विचित्र नजरो से देखते हुए कहा ।

मुझे ध्यान आ गया । निखिल के साथ जीने की कटु वास्तविकता भूल गयी थी मैं ।

'अच्छा, रघु ! फिर मिलना कभी ।' मैं चलने के लिए मुडी कि कौन जाने क्या सूझा । अपने पर्स से पता लिखा कार्ड निकालकर उसके हाथ मे थमा दिया ।

'यह मेरा पता है, कभी कोई काम हो तो जरूर कहना !'

शोफर ने दरवाजा खोला । मैं कार के भीतर बैठ गयी । खिडकी से बाहर देखा । रघु हाथ मे कार्ड पकडे जडवत् खडा था ।

भीड को पीछे छोडती गाडी आगे निकल आयी थी ।

शोफर मौन है । मैं पास से गुजरती हुई दूसरी गाडियो को देखती हू ।

नियोन लाइट्स की दूधिया रोशनी जहा तक पहुच सकती थी, अधेरा वहा से दूर सहमा-सा खडा था । भीड ...भीड...फिर भी एक-दूसरे से अलग लोग...

मेरी तरह, रघु की तरह ..इस शोफर की तरह...

एक साथ चलते हुए मित्रो के बीच...शयन-गृह मे पति-पत्नी के बीच ···रण प्रदेश का असीम विस्तार । इलियट की पक्तिया मन मे ताजी हो उठती है ।

कई बार जब मुझे कुछ भी नही सूझता, मैं समीर को पत्र लिखने बैठ जाती हू ।

कौन है समीर ?

मैं स्वय नही जानती । शैशवावस्था के मृदु-मृदु स्वप्नो मे आने वाला घोडे पर सवार वह एक राजकुमार था, मुग्धावस्था मे वह काक था, रोमियो था । टेस्ट मैच जीतने वाला क्रिकेटर था...

अपनी बद आखो मे मैने उसे महसूस किया था । देखा था । एक ऐसा जीवन-साथी, जिसमे मैंने अपना अतीत देखा था, अनागत महसूस किया था ।

एक स्वप्निल पुरुष, जिसकी खोज मे राधा मधुवन की गलियों मे भटकती रही थी।

मैं लिखती हू...

'प्रिय समीर,

नयी काव्य की पुस्तक पढते-पढते ऊपर गगन पर दृष्टि गयी।

निरजन भगत।

मुझे लगा, यह किससे कहू ? तुम्हे यह अच्छा लगा ?'

लिखकर मैंने कागज फाड डाला। एक बार, दूसरी बार, निखिल से दुत्कारा हृदय जब चीख-चीख पडता, तो शायद मैं समी को बन्द पलकों मे बुला अपना सारा रोना रो डालती।

रघु की बात मैंने एक बार निखिल को कह सुनायी। उस दिन उसका अचानक मिलना, फिर दूसरे दिन नाश्ते की टेबुल पर···

आज रघु मिला था।

रघु नाम सुन वे चौंक पडे। मेरी ओर आश्चर्य-भरी नजरो से देखते रहे। उनकी आखें...

नजर फिराकर मैं दूसरी ओर ताकने लगती हू।

'वह हमारे पडोस मे रहता था। उसका बाप विक्रोली की किसी फैक्टरी मे काम करता था। हमारे घर वे रोज शाम को बाबूजी के पास बैठने के लिए आते थे। बाबूजी को बहुत मानते थे वे।'

जल्दी से ब्रेकफास्ट खत्म कर निखिल उठने का उपक्रम करते है। मैं समझ जाती हू, उन्हें जल्दी-जल्दी रघु-कथा सुनाने लगती हू...

'एक बार उसके बाप पर किसी ने फैक्टरी से सामान चोरी करने का आरोप लगाया। जाच-पडताल हुई। जाच के दौरान उनसे जुर्म कबूल करवाने के लिए खूब पिटाई की गयी...'

'हू...' निखिल होठ चबाते हुए आखें फाडे मुझे घूर रहे थे।

शायद उनको रस आने लगा था घोर लज्जा तथा दु ख की इस घटना को सुनकर। रघु के विषय मे हमे कितना अपनत्व था, यह क्या वे समझ सकेंगे ?

'...फिर उसका बाप मार की असह्य वेदना को सहन न कर सका,

वह पागलो की तरह बाहर भागा। गेट के बाहर जाती हुई लॉरी के नीचे ..'

'बस, रहने दो। सुबह-सुबह बात करने के लिए कोई अच्छी बात नही होती क्या ? आज शाम को मैं क्लब से जल्दी आ जाऊगा।' और वे उठकर चले गये।

खाली कुर्सियो के मध्य मैं चुपचाप बैठी रहती हू। ऐसी कही कोई जमीन नही है जहा मैं और निखिल साथ-साथ कदम रख सकें ?

तू ही पागल है। जहा दूसरी औरतें तेरे सुख-सौभाग्य से ईर्ष्या करती हैं, वहा तुझे ही दुख लगता है।

ठीक बात तो है। रघु की बात एक थोडे ही है। अनेक रघु बिखरे पडे हैं। इसकी इतनी रामायण बखानने की मुझे क्या जरूरत थी।

यह राम-कथा मिडिल क्लास के लोगो की मेटेलिटी है। रघु की बात ·· राघव की बात . उसकी बात...इसकी बात...

समीर से यह सब कह देने से जो कुछ हल्का हो जाता है। धधकती हुई गर्मियो मे जैसे शीतल बरगद की छाया। पर कितनी बातें ऐसी होती हैं, जो भीतर-ही-भीतर शूल की तरह टोचती रहती हैं। उन्ह व्यक्त करने की वेदना भी असहनीय होती है।

मिसेज राव का हसता चेहरा आखो के समक्ष उभर आता है। उनकी गोल-गोल पनियारी आखें ..

वे निखिल की स्त्री-मित्र (मात्र इतना ही ?)...

मैरीन-ड्राइव पर खडी मैं समन्दर की उत्ताल फेनिल तरगो को देखती हू। जीवन का प्रत्येक क्षण लहर-सा है...अनतता से उत्पन्न हुआ ..एक के बाद एक और फेन फेन हो बिखर जाता है.. उसके विनाश का दुख कितना है ?

एक लहर तो स्थिर होती ?...हाथ मे आती। उसे ठीक से देखा जा सकता, मुट्ठी मे महसूस किया जा सकता...कुछ तो होता...

एक सफेद रग की फिएट मेरी बगल से गुजर जाती है। मुझे जैसे करेन्ट छू गया हो, ऐसे मैं सुन्न पड जाती हू।

मिसेज राव की खनकती हँसी उस कार की खिडकी से बाहर उछल-कर मेरे कन्धो पर दुबक गयी थी...निखिल उनके गले मे बाहे डाले बैठा था।...और कल शाम निखिल ने मुझसे कहा था, वह दो-चार दिनो के लिए दिल्ली जा रहा है।...

झूठ, दभ और प्रतारणा का इतना मोटा आवरण मेरे चारो तरफ घेर दिया गया था और मुझे ही इसका पता नही ?

मुझे लगा, जैसे मेरा पूरा शरीर निर्वस्त्र कर दिया गया है। और इस बेशुमार भीड मे मुझे उसी रूप मे अकेला खडा कर दिया गया है।

शर्म, दुख, लज्जा से मेरा सिर झुक गया...यह सब मैंने अपनी आखो से देखा...सत्य को झुठलाया नही जा सकता, बहलाया नही जा सकता...यही मेरा जीवन है ?...

...लग्न की पवित्र वेदी पर अग्नि के समक्ष हमारे हाथ एक-दूसरे के हाथ मे दे दिये गये थे। निखिल धनिक पुरुष था। अनपढ-बेसलीकेदार पत्नी को छोड, वह बेशुमार रुपये-पैसे खर्च कर अगर अपनी मनपसन्द वस्तु खरीद सकता है, तो इसमे क्या गलत है ?...ठीक तो है...एक मजुला दूसरी मजुला पर हस रही थी। और ऐलिजाबेथ ब्राउनिंग की ये पक्तिया !

इफ दाऊ मस्ट लव मी, लेट इट बी फॉर नॉट
एक्सेप्ट फॉर लव्स सेक ऑनली...

...जिन्हे मैं बार-बार रटती थी।

दिव्य प्रेम पर कविता या निबन्ध लिख देने से जीवन प्रेममय हो जाता है क्या ?

...कई दिनो तक मैं यह बात सोचती रही। दुखी हो या उदास होकर नही बल्कि शून्य मन से। दिन गुजरते रहे। मैंने अपने अपमान की बात स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर ली थी। हृदय मे बार-बार कहा, जो सत्य है, मैंने उसे ही स्वीकार किया है।

इससे पूर्व भी निखिल दो-चार बार दिल्ली गये थे। 'इम्पोर्ट लाइसेन्स' के चक्कर मे।

कई बार लगता, उनका हाथ पकड लू, उन्हे रोक लू। झिझोडकर पूछू, 'ओ पुरुष ! तूने कभी इस प्यासे हृदय को प्रेम से सींचा है, स्पर्श किया

है, जो दूसरो पर रस वर्षा कर रहा है...?'

पूछना ही चाहिए ? निखिल गुस्सा हो उठेगा ? हो तो हो। यह नाटक खत्म होना ही चाहिए। मिस्टर और मिसेज़ राव खाने पर आने वाले थे। हमारे यहा अक्सर डिनर का आयोजन होता रहता है। तरह-तरह के पकवान, शराब के लिए खूबसूरत गिलास, सिगरेट के पैकेट .

निखिल अत्यन्त प्रसन्न दिखायी दे रहे थे। मि० राव ठिगने कद के मोटे-से व्यक्ति थे। बहस करते-करते वे अपनी गोल-मोल-सी मुट्ठिया बार-बार टेबुल पर पटकते थे। पैग-पर-पैग खाली हो रह थे।

मिसेज राव 'हाउ नाइस' और 'हाउ टेरीबल' जैसे शब्दो का बार-बार प्रयोग कर रही थी। खाना खाने की जल्दी किसी को नही है। पूरा कमरा.. कमरे की हवा...दीवारें...सब कुछ शराब स भीग चुका है।

कुछ देर पश्चात मिसेज राव धीमे से मेरे कान मे फुसफुसाती है, 'चलिए !' मैं उन्हे अपने शयनगृह की ओर ले जाती हू।

वे मेरे साथ चल रही थीं। निखिल की स्त्री मित्र जिसके साथ निखिल अक्सर बम्बई के किसी आलीशान होटल का कमरा बुक करवाता था। अब मैं इन सब बातो की आदी हो चुकी हू। कुछ अजीब नही लगता।

शयनगृह के बाथरूम मे घुसते हुए उनके पैर सहज ही लडखडाये। मैंने आगे बढकर उन्हे सहारा दिया, 'आज जरा ज्यादा ही हो गयी है।' वह सहज हसकर कहती हैं।

क्या उत्तर दू, समझ मे नही आया। 'आपको अगर मेरी मदद की जरूरत हो ?' मैंने उनस पूछा।

बाथरूम के दरवाज़े का हैंडिल पकडे वे क्षण-भर को थम जाती है।

'मदद ? मुझे !'

उनकी लाल आखो मे छत पर झूलती हुई बत्ती की झलक उभर रही थी। उन्होने सहसा मेरा हाथ पकड लिया और भीगे स्वर मे बोली, 'अब बहुत हो गया, मजू। मेरी मदद कर सके, ऐसा कोई नही रह गया है।'

इस आवाज़ मे एक आकृति उभर आती है। दर्द से डूबा हुआ यह स्वर...यह सामने खडी मिसेज राव नही है। कोई नारी है...

वे म्लान हसी हस देती है। मेरे हाथ को पुन दबाकर वे अस्फुट-से

शब्दो मे पूछती है, 'तुम जानती हो ?'

'हा।'

'तुम रोयी नही ? गुस्सा नही हुई ? तुम्हारे घर मे मैं आयी हू, तुमने मेरे बाल पकडकर बाहर क्यो नही धकेल दिया ? किसलिए, मजू ? किसलिए इतना सहन करती हो...?'

क्या जवाब दू ? फासी का फदा गले मे डालकर फासी देने वाला ही पूछता है, 'किसलिए मर रही हो ?'

और बाद मे उस फासी देने वाले को भी किसी ने फासी की सजा सुना दी थी।

मेरी आखें भर आयी। उस दिन जब निखिल को सफेद गाडी मे जाते देखा था तब कैसा पत्थर-सा बोझ महसूस हुआ था छाती पर। निखिल ने कभी मेरी छाती मे सिर नही रखा था...

मिसेज राव बाथरूम के शीशे मे अपना चेहरा देखकर हस पडती हैं। आखो के नीचे काले धब्बो पर हल्के से पाउडर की पर्त चढाती हैं" पर्स का मुह खुलकर एक तरफ लटका है।

मैं बालकनी मे खडी हुई इन सब बातों को सोचती हू। थोडी देर पश्चात् मिसेज रावबाथरूम मे बाहर आकर मेरे कन्धों को हल्के से झिझोडती है। वे अब काफी स्वस्थ लग रही हैं।

'मजू, निखिल को तुम्हारे पास से इस तरह छीन लेने का अफसोस है मुझे। शुरू मे मुझे यह बिलकुल अच्छा नही लगता था, किन्तु अब मैं अभ्यस्त हो गयी हू।'

उनके शब्द टूटे-टूटे-से निकल रहे है। उन वाक्यो का अर्थ समझने के लिए मैं लगातार उनका चेहरा घूरे जा रही हू। मजाक ? स्वीकार ? या उदारता ?

मिसेज राव नीचे झुककर रास्ते पर खडी हुई अपनी गाडी की ओर इगित करती हैं।

'यह पाने के लिए थोडी मेहनत तो करनी पडती है न ? किन्तु नही... अब तुम्हें इतने नजदीक से देख लेने के बाद नही। मजू" प्लीज मुझे क्षमा कर देना...'

हम दोनो ही टेबुल पर वापस लौट आये। थोडी देर पश्चात् भोजन भी हो गया। वे दोनों विदा लेने लगे। मिसेज राव ने मेरे दोनों हाथ अपने छोटे-छोटे हाथों मे समेट लिये, 'मजू, बेस्ट लक।'

मैं उस गाडी को दूर जाते देखती रही। शायद उसमें से विदाई के लिए एक हाथ बाहर निकला था। 'शिवास्ते प्रन्थानः सन्तुनो...' आशीर्वचन उच्चारते हुए-से लगे थे वे।

मिसेज राव को झुक-झुककर विदा करने वाले निखिल शयनगृह मे आते ही कठोर हो जाते है। हम दोनों के बीच कोई-न-कोई बात होनी चाहिए। मेरी साडी को लेकर, आज के लजीज खाने को लेकर या मेरे बातचीत करने के ढग पर। बात होती है। वे थोडी-थोडी निंदा करते हैं। आवाज मे मेरे प्रति उपहास है...और फिर दूसरी ओर करवट...गहरी नीद के असबद्ध खर्राटे ..

४

मनुष्य के जीवन मे कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं, जब वह प्रेम मे शहीद हो जाना चाहता है। मार्ग काटो-भरा हो, समाज की दीवारें उन्हे अलग करने के लिए कटिबद्ध हो, चाहे उसके शरीर के टुकडे-टुकडे करके दिये जाए, फिर भी वह उसमे आनद महसूस करता है, स्वर्गिक सुख अनुभव करता है ..दर्द का सुख। किन्तु नही...एक भुलावा...निरी मूर्खता।

रात के सन्नाटे मे मिसेज राव का स्वर मेरे कानों मे उभर रहा था। एक आकृति स्पष्ट हो रही थी। मैं, मजू, निखिल को अपना नहीं बना सकती ? आखिर वह भी तो मनुष्य है। उनके हृदय अचल मे क्या अनजाने स्नेह के झरने प्रवाहित नही होते होंगे ?

मिसेज राव ने भी तो किसी आकर्षणवश यह सब पाने का प्रयत्न किया होगा। क्या उनकी इस भावना ने निखिल के हृदय को छू नही लिया ?

मजू, तू नारी है। उठ, अपनी सपूर्ण शक्ति से तू निखिल को अपना बना ले।

मेरी आंखो के आगे रंगीनियां तैरने लगती हैं ..सुनहली छाया वाली एक बदरी मेरी सृष्टि को घेर लेती है।

इसके पश्चात् मैंने मेकअप की क्लास ज्वाइन कर ली। आईने मे अब मेरा नही, किसी दूसरी औरत का प्रतिबिंब था, जिसे मैंने अनदेखा कर दिया। अंग्रेजी बोलने की क्लासेज, शराब मिलाकर 'कॉकटेल' बनाने की, मेहमानो को कैसे रिझाना चाहिए, वह सब मैंने सीखना शुरू कर दिया था। आईने मे अब दूसरी औरत का प्रतिबिम्ब था। मेरा 'मैं' लुप्त हो चुका था।

सोलह शृंगारो मे निपुण होकर मुझे निखिल-प्रिया बनना था। मुंह बना-बनाकर अंग्रेजी का उच्चारण . आधुनिक वेशभूषा हेयरस्टाइल... मां मिलने आयी थी, तो देखकर दंग रह गयी। वे मुझे पल-भर तो पहचान ही न सकी थी। वे तभी घर मे आती थी, जब निखिल नही होते थे। और उनका उन अनजान नजरो से ताकना उसे अभी तक हिला देता है।

'प्रमादधन मुज स्वामी साचा' रटती कुमुद को भी शायद गुण सुन्दरी का हास्य रुचा नहीं होगा।

सारी तैयारियां पूरी हो चुकी थी। विदेश से कोई बड़े मेहमान आ रहे थे। उन्हीं की खातिर सारी भागम-भाग मच रही थी। असंख्य टेलीफोन कॉल और आमन्त्रण-पत्र भेजने की दौड़ा दौड़ी, 'मेनू' की पसंदगी, सेक्रेटरी के साथ रोज की झिक-झिक मे निखिल पूरी तरह से व्यस्त थे। और उसे मैं जब बिजली-सा धक्का दूंगी, तो वह हतप्रभ हो उठेगा। इस कल्पना से ही मैं रोमांचित हो उठी।

'बेशरम! हरेक के साथ 'फ्लर्ट' कर रही थी!' निखिल क्रोध म हाथ मसल रहा था।

कपड़े निकालते हुए मेरे हाथ थम गये।

'जी! मुझे कह रहे है?'

'मंजू, भोली बनने की कोशिश मत करो। मैं तुम्हे खूब पहचानता हू। सती-सावित्री का ढोंग क्या रचाकर बैठी थी!' उनका चेहरा भयानक लग रहा था।

धीरे-धीरे जैसे किसी इंजेक्शन के प्रभाव से शरीर सुन्न पड़ता जाता है, मुझे ऐसा ही प्रतीत हो रहा था। यह किससे कहा जा रहा है ? मुझे ? मुझसे ?

बोलने का प्रयत्न करती हू, पर मुह से जैसे शब्द नही निकल पा रहे है। होठ जैसे फूलकर मोटे हो गये हैं। हाथ-पैर का भार असह्य हो उठा है।

'पूरे समय मै तुम्हे देखता रहा। हरेक पुरुष के साथ हसकर, चिपककर बातें करने की क्या जरूरत थी ? इतना साज शृगार किस खसम को लुभाने के लिए साजा था ?' गुस्सा अपनी मातृभाषा मे ज्यादा असरदार ढग से व्यक्त होता है न !

किन्तु...किन्तु .' अपने बचाव के लिए मैं चिल्लाना चाहती थी, पर न जाने किसने मुझे रोक दिया।

यह पुरुष आज मेरे सौन्दर्य, मेरे व्यक्तित्व के प्रभाव से ईर्ष्या कर रहा है ! कितनी बडी अग्नि परीक्षा की सजा सुनाई थी इसने . और मैंने अपना सर्वस्व होम कर दिया। अब यही व्यक्ति मुझ पर लाछन लगा रहा है ! मुझे निकृष्ट साबित कर रहा है !

आखें जलने लगी। छाती म जैसे ज्वालामुखी धधक पडा। अवमानना के बहते आसुओ के साथ दो-चार शब्द फूट ही पडे आखिर।

'निखिल, तुम किसी खानदानी औरत के लायक नही हो, तुम्हे तो कोई वेश्या ही शोभा देती।'

काच का सुन्दर बर्तन जैसे जमीन पर गिरकर चूर-चूर हो गया।

दु ख, लज्जा, घृणा स मैं नत हो उठी—छि ! यह मै क्या बोल गयी ? इतनी हल्की, कर्कशा मैं कब से हो उठी ? इतने गन्दे शब्द मेरे मुह स कैसे निकले ?

निखिल का हाथ उठ चुका था।

बादल मे जैसे पानी समा जाता है, वैसे ही मेरा पछतावा, मेरी ग्लानि, सब कुछ मुझ म समा गया। अब मुझे कोई गम महसूस नही हो रहा। न निखिल से भय ही लग रहा है। मैंने जो कुछ कहा था, वह अक्षरश सत्य है। फिर लज्जा कैसी ?

...उस क्षण हम दोनो के बीच सभ्यता, सौम्यता का आवरण कब

खिसक गया, पता ही नही चला। अब तक तो मैं इस घर से, निखिल से बस डरती ही रही थी जैसे मेरा इस घर मे आना कोई अपराध हो।

आज हृदय का पत्थर थोडा सरका है। निखिल पुरुष है। एक सामान्य पुरुष। पैसों का मुलम्मा अगर हटा दिया जाये, और इस नक्ली ऐटीकेट का पर्दा अगर फाड दिया जाये, तो वह छिछला, साधारण, तिरस्कारजनक या फिर दयाजनक है।

सच्चे फूल को तो कब का उसने अपने पैरो तले रोंद दिया है। अब बनावटी फूल की कृत्रिमता भी उससे सहन नही हो रही है।

...पिछले दिन तो रेत भरे घडे-से हैं। न जल ही भर सकता है, न प्यास ही बुझ सकती है।

हम दोनों के बीच शर्म-हया खत्म हो चुकी है। हम दोनो झगडालू किस्म के दरिन्दे हो रहे हैं।

मेरे रख-रखाव, मेरी असभ्यता, मेरे काल्पनिक प्रेमी-जनो के लिए निखिल मुझे हमेशा ताने देते रहते है। और मैं भी...' भूयो यथा मेनो' पाठ जपती सीता नही रही हू। जैसे बोल वे बोलते हैं, वैसे ही तुर्की मैं छोडती हू।

अब मुझे उसका दु ख भी नही होता है। घर की चहारदीवारियों मे खोया हुआ अपना सुख मैं बाहर की दुनिया मे खोजने की चेष्टा करती हू।

कई बार शाम को मैं घूमने जाती हू—कालबादेवी...भुलेश्वर...

पुराने खडहरो जैसे मकानों मे दिखाई पडती औरतें। मैले कपडो वाली...बच्चों को पीटती हुई, दातुन वाले से दाम के लिए झगडा करती हुई। मैं देखती रहती हू वे प्यारी-सी लडकिया, बालों मे चमेली का गजरा गूथे हुए। सब कुछ कितना सहज...!

इन सारी औरतों को अपने सुख-सौभाग्य का पता नही है। उनकी कितनी जरूरत है—बहन, पत्नी, मा के रूप मे। मनुष्य को मनुष्य से चाहे जाने वाले रिश्ते।

...अधेरी कोठरियो मे विहसता जीवन...मा तथा बाबूजी से मिलने

मैं परेल की चाल मे बेधडक चली जाती हू। अपने गरीब मा-बाप के लिए मुझे कोई शर्म नही है। जब मैं पहुचती, तब मा या तो कपडे धो रही होती या चावल बीनने का काम लिये बैठी होती। बाबूजी खासते-खूसते 'जन्मभूमि' पढ रहे होते।

'बेटा, तुमने रघु की खबर नही ली। कभी जाकर उसे पकडकर ले आओ न'' मा काम मे मशगूल रहते हुए ही कहती।

और एक बार रघु को अपनी सफेद 'शेवरलेट' मे बैठाकर मैं चाल पर ले ही गयी।

निखिल क्रोध से फुफकार उठे थे, 'कितनी बार कहा, इन जगली असभ्य लोगो के साथ क्यो घूमती-फिरती हो ? क्यो जाती हो . ?'

'खबरदार, जो मेरे मा बाप को जगली-असभ्य कहा ?'

'जगली नही तो क्या ? परेल की खोली मे रहने वाले लोग बडे सभ्य होते हैं ?'

'तो ब्याह करने क्यो आ गये थे ? कोई बुलाने तो नही गया था ?' मैं सहसा खिलखिलाकर हस पडती हू। निखिल कटकर रह जाते हैं।

उन्हे मजू नही चाहिए थी। उनकी शादी के एक दिन पहले लडकी अपने सगीत-शिक्षक के साथ भाग गयी थी और उसका भाग्य मेरे माथे चढ आया अनायास।

क्रोध और अपमान से दुखी निखिल के पिताजी ने तुरन्त हर जगह सदेश भिजवाया—'कल की घडी हर्षपूर्वक सम्पन्न हो जाये, ऐसी कोई सुकन्या शीघ्र खोज निकालो!'

बाबूजी के मिल-मालिक के कानो मे न जाने कैसे मेरे रूप-गुण की चर्चा पहुची थी, यह मैं नही जानती, किन्तु रातो-रात बात पक्की हो गयी। किसी को हा-ना करने का मौका ही नही मिला।

निखिल के आत्मसम्मान पर यह भारी चोट थी। और इस बात से परिचित होने की वजह से ही मैं इसे बार-बार दोहराती थी। न जाने कौन-सा राक्षसी आनद प्राप्त होता था मुझे।

इस तरह के असभ्य, गन्दे, गलीज झगडे हमारे बीच सामान्य हो उठे

थे। कभी-कभी मैं अवश्य अपने हृदय को टटोलती। मजू—कहा गयी तेरी वे कोमल भावनाए ? कहा गये वे कवि ? उनकी प्रेम-पगी सिहराती पक्तिया ?

किसके स्पर्श से यह पारसमणि पत्थर हो उठा ? ..

लेकिन मजू को अब इस सबकी आदत हो गयी है !

समीर को मैं पत्र लिखती हू—-

'प्रिय समीर,

तुम मुझसे कहते हो कि सहन करू और ज्यादा। प्रेम के दीपक मे त्याग का तेल .कितनी सुन्दर किताबी उपमा है !

समीर, तुम मुझे सीता, शकुन्तला, उर्मिला बनने के लिए कह रहे हो ? तुम जानते हो, इन स्त्रियों को एक समय कितना प्रचड पति-प्रेम मिला था ? और उसी प्रेम के सहारे हसते-हसते उन्होने सारी अग्नि-परीक्षाए झेली थी, समीर !

मैं तो एकदम प्यासी हू। कोई एकाध मृदु स्पर्श ..एकाध प्यार के बोल अधिकार का टुकडा तो मिलता !

सच कहती हू, समीर ! मैं सीता या शकुन्तला नही हू। अहिल्या बन गयी हू, अहिल्या !

हा, अहिल्या !

मेरे भीतर सब कुछ जड हो गया है ..पाषाण !...

बोलो समीर, इस पत्थर से मैं स्त्री कब बनूगी ? कब ?'

५

निखिल का बर्थ-डे बडी धूमधाम से मनाया गया था। घर मेहमानो से भर गया था। निखिल तथा मिस गीताली एक-दूसरे की बाहो मे बाहे डाले नृत्य कर रहे थे। मैंने इधर-उधर खोजा। मिसेज राव कही नही दिखाई दी।

'मिसेज राव को निमन्त्रण नही भेजा था आपने ?' मैंने मौका पाकर

निखिल से पूछा। अगल-बगल खड़े मेहमानो से सचेत निखिल ऊपरी हसी हसकर रह गये, किन्तु उनकी आखों की सुलगन मैंने देख ली

'वे काफी अरसे से बीमार चल रही है, तुम नही जानती क्या ? उस दिन जब वे खाना खाने अपने घर आयी थी तब से ही। और काफी दिनों से मैं उन लोगो से मिला भी नही हू।'

'निखिल, कम ऑन ..लास्ट डाम।' गीताली की लहकती हुई आवाज ने निखिल को आवाज़ दी।

गीतालो 'मॉड' गर्ल है। उसके हाथों मे सुलगती हुई सिगरेट है। धुए के छल्ले वह निखिल पर फेंक देती है।

'कमिंग,' निखिल ने प्रत्युत्तर दिया। इतनी मिठास उसने कभी नही महसूस की निखिल की आवाज़ मे। न कभी उससे इस आवाज मे बोला ही गया।

रेकार्ड बजने लगा है—रग-रग मे मस्ती भर देने वाला मद-मद, सेक्सी।

बहुत सारे चेहरे मेरे दिमाग मे एक साथ घूम रहे हैं—राम, सीता, मिसेज राव...गीताली ..

मिसेज राव को छोड़कर गीताली से दोस्ती गाठने वाले निखिल पर मुझे क्रोध आता है। कभी हसी आती है।

'आज आप अत्यन्त खुश दिखाई देती है।' एक पारसी महिला मुझसे पूछती है।

'इस 'बर्थ' मे इतना खुश होने जैसे क्या है जो बर्थ डे मनाना पड़ता है ?' गीताली हसते-हसते निखिल पर ढेर होते हुए बोली।

सब हस पड़े सुनकर। निखिल को भी हसना पड़ा। गीताली स्मार्ट है। मॉडर्न है। उसकी सारी बातें स्वीकार करनी ही पड़ती है।

निखिल को काफी उपहार मिले थे।

मेहमानो के चले जाने के पश्चात सबने एक के बाद एक उपहारों को खोलकर लिखना शुरू कर दिया। निखिल, गीताली तथा कुछ अतरग मित्र।

अरे, वाह ! चादी के छह गिलास ?' किसी का आश्चर्य मे डूबा हुआ स्वर सुनायी पडा।

'होगा क्यो नहीं ! साले को नौकरी जो चाहिए परचेज ऑफिसर की। घूस के पैसे खाने हैं जो रास्कल को !' निखिल ने उपहास-भरी नजरो से गिलासो की तरफ देखा।

'यह क्या ? टेबुल-लैम्प ? नॉन्सेन्स !'

'साला भुक्खड है !'

'अरे, वह रमेश नही आया क्या ?'

'कॉन्ट्रैक्ट मिल गया। अब काहे की गरज ?'

जरा दूर खडी मैं यह सब देखती रहती हू। स्वभाव की दरिद्रता। कृपणता। किसी की भी सद्भावना पर विश्वास नही है। सबका मापदड पैसा है। स्नेह तथा सम्मान की बातें कॉन्ट्रैक्ट तथा लाइसेन्स के तराजू पर तोली जाती है।

'सब ने कोई न कोई उपहार दिया है। मिसेज निभाकर, आपकी भेंट हमने नही देखी।' एक मित्र ने अचानक मेरी ओर मुडकर कहा।

हम दोनो की दृष्टि मिली। दोनो ने ही आखें फिरा ली।

'वह क्या भेंट देंगी, वह आज थोडे ही देख सकेंगे। आज से तैयारी करेंगी, तो पूरे नौ महीने बाद...' दूसरा कोई अट्टहास कर उठा।

शिशु...

पता नही क्या बात थी कि अपने दाम्पत्य जीवन मे कभी शिशु को लेकर मैंने सोचा ही नहीं।

एक शिशु हो। निखिल को चारो तरफ से बाध देने वाला वृत्त।

तो मेरा...अहिल्या का उद्धार हो जायेगा। यह जडता, चिडचिडा-पन, क्रोध—सबका आवरण हट जायगा . एक नन्हे शिशु की मा—मजू रह जायेगी सिर्फ।

ऐसा हो जाये तो ?

बचे-खुचे लोग भी चले गये। गीताली को छोडने गये निखिल रात को घर वापस नही आये।

मैं बहुत रात गये तक बालकनी में अकेली खडी रही।

न जाने किसने वे शब्द कहे थे, जिन्होने मेरे अन्तर मे सोयी हुई इस मीठी हूक को जगा दिया था। आधी रात का तारे-जडित असीम आकाश... कोई नन्हे-नन्हे पैरो से ठमकता-सा चला आ रहा था मेरी ओर...आयेगा। वह जरूर आयेगा।

स्नेह की सृष्टि मे कोई अपने नन्हे कोमल हाथो से पकड मुझे ले जायेगा.. मुझ अकेली को...नही...नही...निखिल भी मेरे साथ होंगे...

काश ! मेरा यह सुन्दर स्वप्न साकार...! रात सुबह के करीब पहुच रही थी। निखिल अभी तक वापस नही आये थे।

'मजू, अगर हम लोग 'डाइवोर्स' ले लें तो ? तुम तो अच्छी तरह जानती हो कि हम लोग साथ रह सकें, ऐसा नही है। प्लीज, ट्राइ टू अन्डरस्टैन्ड।'

उनका स्वर अत्यन्त प्रेम-पूर्ण था।

फटी हुई आखो से मेरा वह सुन्दर स्वप्न झर-झर बह गया। यह नही हो सकता ! .. मेरे हाथ से मेरा सब कुछ इस तरह से नही छीना जा सकता। मैं हाथ आगे बढा निखिल के पैर पकड लेती हू।

'नही-नही, निखिल, यह क्या कह रहे हो तुम ? डाइवोर्स ?'

निखिल का चेहरा अपने असली रूप मे, असली स्वर मे आ गया।

'यह क्या ढोग करती हो ? यह सब ढकोसले मैं नही मानता।' उन्होने अपने पैरो से मेरे हाथ झटक दिये।

कितनी कोमलता से मैंने सेज बिछायी थी, जिसमे एक मधुर स्वप्न को थपकिया दी थी। मुझे उस स्वप्न के विषय में निखिल से कहना था। किन्तु हृदय कहने से पीछे हट रहा था। फिर भी मैं कहे बिना न रह सकी।

'निखिल, मुझे...हमको एक नन्हा-सा शिशु.. '

आश्चर्य से भरकर वे मेरी ओर ताकने लगे। फिर अपने दोनो हाथ मेरे कन्धो पर रखकर मुझे बुरी तरह झकझोर डाला और बोले, 'अगर ऐसी कोई सभावना है, तो मुझे इसका कोई उपाय करना पडेगा।'

गुलाब का एक नन्हा पौधा मैंने एक छोटी-सी मिट्टी की कुडो मे

लगाया था...निखिल ने उसे लात मार दी थी—बेरहमी से।

मुझे अपना शरीर पिघलता हुआ-सा महसूस हुआ। सब कुछ मिथ्या है। आडम्बर है। सत्य कुछ है, तो सिर्फ मानव-जीवन की हताशा। अकेलापन।

निखिल क्रूरता से हस पड़ा, 'ये सारे ढोंग रहने दो। आई नो योर हिप्पोक्रेसी।'

प्रक्षकों को चौंका देने के लिए जादूगर जैसे अपनी जेब से एक-एक चीजें निकालता है, उसी प्रकार निखिल ने जेब से समीर के पत्र निकाले।

'बोलो, कौन है यह समीर ? मेरी पीठ पीछे किसको ये लव लेटर्स लिखती हो ?'

बोलते बोलते वह उत्तेजित हो उठा। उसने मेरे घुटनो पर जोर से एक लात मारी।

दु ख न हुआ। ऐसा लगा, जैसे यह सब नाटक हो रहा हो.. हा, नाटक—प्रेम, तिरस्कार, शका, क्रोध...अनेक भावनाओं से ओत प्रोत यह नाटक किसी दूसरी स्त्री के जीवन मे हो रहा है। मुझे जैसे कुछ भी न लग रहा है, न महसूस हो रहा है। सिर्फ .बस दूर स यह सब खेल देखते रहना है। उपायहीन।

मेरे मौन ने उनके गुस्से के लिए आग मे घी के समान कर दिया था। उन्होंने थर-थर कापते हुए मेरी गर्दन दबोच ली। उनका क्रोध से लाल-पीला चेहरा मेरे चेहरे के अत्यन्त करीब आ गया था, दात पीसते हुए विकराल हिंसक पशु की तरह।

'बोल, कौन है यह समीर ?'

लडने का या प्रतिकार करने का क्या अर्थ ? कौन था यह समीर, मैं तो स्वय अनभिज्ञ हू।

समुन्दर की छाती पर बहता हुआ मधुर हवा का झोका है यह समीर, जो मेरी अलकों को बेतरतीब कर जाता है। लेकिन ऐसा कह देने मात्र से छुटकारा है क्या ? निखिल शायद कभी नही समझ सकेंगे कि हृदय म जो अनबुझी प्यास हिलोरें ले रही है, उसे मिटाने के लिए मैंने मृगजल की गगरी भरी थी।

न जाने किसने वे शब्द कहे थे, जिन्होंने मेरे अन्तर मे सोयी हुई इस मीठी हूक को जगा दिया था। आधी रात का तारे-जड़ित असीम आकाश... कोई नन्हे-नन्हे पैरो से ठमकता-सा चला आ रहा था मेरी ओर...आयेगा। वह जरूर आयेगा।

स्नेह की सृष्टि मे कोई अपने नन्हे कोमल हाथो से पकड मुझे ले जायेगा ..मुझ अकेली को...नही...नही...निखिल भी मेरे साथ होंगे...

काश ! मेरा यह सुन्दर स्वप्न साकार...! रात सुबह के करीब पहुच रही थी। निखिल अभी तक वापस नही आये थे।

'मजू, अगर हम लोग 'डाइवोर्स' ले लें तो ? तुम तो अच्छी तरह जानती हो कि हम लोग साथ रह सकें, ऐसा नही है। प्लीज, ट्राइ टू अन्डरस्टैंन्ड।'

उनका स्वर अत्यन्त प्रेम-पूर्ण था।

फटी हुई आखों से मेरा वह सुन्दर स्वप्न झर-झर बह गया। यह नही हो सकता ! .. मेरे हाथ से मेरा सब कुछ इस तरह स नही छीना जा सकता। मैं हाथ आगे बढा निखिल के पैर पकड लेती हू।

'नही-नही, निखिल, यह क्या कह रहे हो तुम ? डाइवोर्स ?'

निखिल का चेहरा अपने असली रूप मे, असली स्वर मे आ गया।

'यह क्या ढोग करती हो ? यह सब ढकोसले मैं नही मानता।' उन्होने अपने पैरो से मेरे हाथ झटक दिये।

कितनी कोमलता से मैंने सेज बिछायी थी, जिसमे एक मधुर स्वप्न को थपकियां दी थी। मुझे उस स्वप्न के विषय मे निखिल से कहना था। किन्तु हृदय कहने से पीछे हट रहा था। फिर भी मैं कहे बिना न रह सकी।

'निखिल, मुझे ..हमको एक नन्हा-सा शिशु ..'

आश्चर्य मे भरकर वे मेरी ओर ताकने लगे। फिर अपने दोनो हाथ मेरे कन्धो पर रखकर मुझे बुरी तरह झकझोर डाला और बोले, 'अगर ऐसी कोई सभावना है, तो मुझ इसका कोई उपाय करना पडेगा।'

गुलाब का एक नन्हा पौधा मैंने एक छोटी-सी मिट्टी की कुडी मे

लगाया था...निखिल ने उसे लात मार दी थी—बेरहमी से।

मुझे अपना शरीर पिघलता हुआ-सा महसूस हुआ। सब कुछ मिथ्या है। आडम्बर है। सत्य कुछ है, तो सिर्फ मानव-जीवन की हताशा। अकेलापन।

निखिल क्रूरता से हंस पड़ा, 'ये सारे ढोंग रहने दो। आई नो योर हिप्पोक्रेसी।'

प्रेक्षकों को चौंका देने के लिए जादूगर जैसे अपनी जेब से एक-एक चीज़ें निकालता है, उसी प्रकार निखिल ने जेब से समीर के पत्र निकाले।

'बोलो, कौन है यह समीर? मेरी पीठ पीछे किसको ये लव लेटर्स लिखती हो?'

बोलते बोलते वह उत्तेजित हो उठा। उसने मेरे घुटनों पर जोर से एक लात मारी।

दुःख न हुआ। ऐसा लगा, जैसे यह सब नाटक हो रहा हो ..हां, नाटक —प्रेम, तिरस्कार, शंका, क्रोध..अनेक भावनाओं से ओत-प्रोत यह नाटक किसी दूसरी स्त्री के जीवन में हो रहा है। मुझे जैसे कुछ भी न लग रहा है, न महसूस हो रहा है। सिर्फ...बस दूर से यह सब खेल देखते रहना है। उपायहीन।

मेरे मौन ने उनके गुस्से के लिए आग में घी के समान कर दिया था। उन्होंने थर-थर कांपते हुए मेरी गर्दन दबोच ली। उनका क्रोध से लाल-पीला चेहरा मेरे चेहरे के अत्यन्त करीब आ गया था, दांत पीसते हुए विकराल हिंसक पशु की तरह।

'बोल, कौन है यह समीर?'

लड़ने का या प्रतिकार करने का क्या अर्थ? कौन था यह समीर, मैं तो स्वयं अनभिज्ञ हूं!

समुन्दर की छाती पर बहता हुआ मधुर हवा का झोंका है यह समीर, जो मेरी अन्तर्मन को बेचैन कर जाता है। लेकिन ऐसा कह देने मात्र से छूट जाता है क्या? निखिल शायद कभी नहीं समझ सकेंगे कि हृदय में जो अनबुझी प्यास हिलोरें ले रही है, उसे मिटाने के लिए मैंने मृगजल की गगरी भरी थी!

उर की माटी में कितने अनकुरित बीज पड़े हैं, निखिल! उन्हें भिगो-भिगोकर अंकुरित करने के लिए हरेक नारी के हृदय में एक स्वप्न-पुरुष होता है। एक समीर रहता है।

वह यहां नहीं रहता। वह तो मथुरा चला गया हमारा श्याम है .. जिसको खोजती हुई राधा निरन्तर मधुबन की कुंज गली में भटकती रहती है।

'याद रखो, मैं तुम्हें कुत्ते की मौत ' निखिल आवेश में कांप रहे थे।

निखिल को मुझसे छुटकारा चाहिए। फिर भी यह छोड़ दी जाने वाली पत्नी साली बेवफा निकली, इस कल्पना मात्र से वह हिल उठा था।

मेरा अन्तर उदासी तथा एक अजीब अव्यक्त ग्लानि से भर उठा है।

निखिल के ऊपर से सांस्कारिकता, सभ्यता के तमाम आवरण हट गये हैं। और नंगा खड़ा है एक पुरुष। पत्नी पर, छोड़ दी जाने वाली पत्नी पर स्वामित्व का दावा करता पुरुष। यह पुरुष? मंजू, तेरा पति! इसके लिए तूने इतनी अवहेलना, इतना दुःख सहा? आंसुओं का पत्थर हृदय पर रख तू आने वाले आगत की प्रतीक्षा करती रही? एक स्वप्निल आगत की? ओ मंजू, यह पुरुष किसी पत्नी के लायक नहीं है. प्रेमिका के लिए भले ही हो

एक प्रकार की शून्यता...

निखिल ने जोर का धक्का मारा और मैं पीछे की दीवार से टकरा गयी।

'आप जो चाहें कर लीजिए। मैं कभी तलाक नहीं दूंगी।'

'मंजू तुम समझने की कोशिश करो।'

'समझ चुकी हूं। अच्छी तरह से समझ चुकी हूं। मुझसे इतना बड़ा त्याग मांग रहे हो तुम? किसलिए? किसलिए तुम सुख भोगो और मैं तिल-तिलकर जलती रहूं?'

'उत्तेजित होने से काम नहीं चलेगा। मैं तुम्हें 'सेटलमेन्ट' का काफी रुपया दूंगा। अकेले में शान्ति से सोचना।' कहकर निखिल कमरे से बाहर चले गये।

मैं शयनगृह की बायी दीवार पर लगा हुआ एक रति-मग्न युग्म का चित्र देखने लगी।

'प्रमाद घन मुज स्वामी साचा...'रटती हुई कुमुद, मैं किस का नाम जपू ? निखिल एक महीने मे घर मे नही रह रहे थे। एक शाम उनका फोन आया। वरसोवा के किसी वगले मे उन्होने मुझे मिलने के लिए बुलाया था।

मेरे हृदय की धडकनें बढ गयी। क्या बात होगी ? हो सकता है, निखिल ने सारी बातो पर नये सिरे से विचार किया हो ? मैंने अपने और निखिल के बिगडते सबधो के विषय मे मा तथा बाबूजी को कुछ भी नही बताया था। ठीक ही किया था मैंने। कहा जानती थी कि घर छोड देने के पश्चात एक दिन वे मुझे फोन पर इतने स्नेह-भीगे स्वर में बुलायेंगे।

धरती पर अकुरित हरियाली घास पर जैसे भोर की उजास का मधुर स्पर्श होता है, ठीक वैसे ही अन्तर मे निखिल की आवाज़. ।

निखिल बुला रहे हैं, मैं जरूर जाऊगी। जरूर।

साझ होते ही मैं तैयार होने लगती हू। माथे पर बडी-सी सिंदूरी बिन्दी लगा मैं मन ही-मन ईश्वर को प्रणाम करती हू। सारी कटुता मन से बह गयी है।

वरसोवा मे स्थित वह वगला जनवस्ती से काफी दूर था। किन्तु मैं तुरन्त खोज निकालती हू। पैरो मे हल्का-सा कपन हो रहा है। मन रह-रह-कर तमाम शकाओ-कुशकाओ से उद्वेलित हो उठता है। निखिल अभी तक वहा आया नही है।

बाहर अन्धकार फैलने लगा है। पता नही क्यो, मुझे कुछ भय-सा लगने लगता है। पूरे वगले मे कोई भी नही है। दरवाजे के बाहर एक माली जैसा व्यक्ति बैठा है।

मैं अपनी हिम्मत स्वय बाधने की चेष्टा करती हू। जो कुछ मैं अमगल सोच रही हू, सब फिजूल का फितूर है। लेकिन निखिल कहा है ? क्यों नही आया अब तक ? सहसा दूर से एक सफद गाडी वगले की तरफ आती हुई दिखाई पडती है। मैं वरामडे मे ही खडी रहती हू।

मोटर आकर खडी हो गयी है। उसमे से काला चश्मा पहने, आकर्ष

सफेद वेशभूषाधारी एक अनजाना नवयुवक उतरता है। निखिल साथ में नहीं है। क्यों नहीं है?

वह युवक आकर मेरे समक्ष खड़ा हो गया।

'हलो मिसेज विभाकर, कम इन!' वह दरवाजे के भीतर दाखिल होता हुआ बोला।

कौन है यह? वकील? या गीताली का सबधी?

मैं उसके पीछे घिसटती हुई सी चल रही हू।

जैसे वह उसका खुद का घर हो, इस तरह उसने अपना कोट उतारकर एक खूटी पर टाग दिया तथा चश्मा उतारकर एक तिपाई पर रख दिया।

'बैठिए, बैठिए न। टेक इट इजी।' उसने मुझसे हसते हुए कहा।

'जी, मुझे जल्दी जाना है।' अचानक मुझे भय-सा लगा। मुझे वहा से किसी तरह छूट भागना था। विजन बगला मानो खाने को दौड रहा था।

मैं उठकर भाग निकलने के लिए खड़ी हो गयी। एक झटके से बरामडे की तरफ भागी। किन्तु मुझसे भी त्वरित गति से दौडकर उसने मुझे अपने बाहुपाश म जकड लिया तथा अपने होठ मेरे होंठो पर रख दिये। महसा फ्लैश लाइट की रोशनी हमारे ऊपर पडी।

मेरे मुह से चीख निकल गयी।

वह एकाएक पीछे हट गया।

'ओ० के०' ओ० के०'' आप जा सकती है। हमारा काम पूरा हो गया है .'

'कौन है आप? बेशरम!...माली...माली!' मैं चीख उठी।

वह युवक सिर को आगे झुका धीरे से मुसकराया, 'मिसेज विभाकर, घबराइए नहीं। इससे आगे मैं कुछ नहीं करूगा.. यू सी, हम प्राइवेट डिटेक्टिव हैं, तुम्हारे पति को तलाक मे सुविधा दे सकें, ऐसा कोई तुम्हारा चित्र हमे चाहिए था। हमारा काम पूरा हो गया। सॉरी टु ट्रबलयू!' उसने हाथ जोडकर मुझसे माफी मांगी।

मैं कापते हुए पैरो से वापस लौट पडी। रोना चाह रही थी, किन्तु

ग्रासू जैसे सूखकर रह गये थे। एक भयकर दु स्वप्न से जैसे मैं जाग पडी थी। ग्रब.. अपने चाल वाले उसी पुराने घर मे...अपने बिस्तर पर मैं सोऊगी। यह सब बिखर जायेगा...

घर वापस लौटी। मा के घर मे। वह घर ग्रब मेरा घर नही था।

कितना भयकर शून्य...कितनी लज्जा की बात थी ..

मुझे निखिल के पास ही रहना चाहिए था। चाहे जितने लडाई-झगडे होते। तलाक उसे इतनी ग्रासानी से नही दे देना चाहिए था।

रात के ग्रन्धकार मे सोचते हुए मुझे हसी ग्रा गयी। लडती ! परन्तु किससे ? किसके समक्ष ? मनुष्य के साथ लडा जा सकता है, क्योंकि वहा समाधान की सभावना का एक क्षितिज होता, या एक धरातल होता है, जहा दोनो मिल जाते हैं या खडे हो सकते हैं।

किन्तु पत्थरदिल...!

बाहर से ज्यादा ग्रन्धकार मेरी बन्द ग्राखो के भीतर महसूस हो रहा है। लगता है, दु ख, यातना, अपमान अपने ग्राचल मे छिपाये किसी शून्य मे विलीन हो जाऊ। बस फिर कुछ भी न रहे। मात्र नीरव ठडी शान्ति।

दूसरे दिन साझ को ही मैं घर से निकल पडी। ग्रासपास कभी न खत्म होने वाली भीड की गहमा-गहमी थी। फुटपाथ पर रोते हुए गन्दे बच्चे, मोटरो के चिघाडते हॉर्न, फेरीवालो की ग्रावाजें, सब कुछ एक शोर मे बदल गया था। क्लेश ग्रौर कटुता-भरी जिन्दगी मे कही कुछ भी तो ऐसा नही है, जिसका मोह जिन्दा रखे !

एक मेडिकल स्टोर के सामने मैं ठिठक गयी।

नीद की गोलियो की शीशी मैंने ग्रपने ख्याति-प्राप्त फैमिली डॉक्टर का हवाला देकर खरीद ली। बिना प्रेस्क्रिप्शन के बडी मुश्किल से दी उसने।

शीशी के भीतर नन्ही-नन्ही खूबसूरत गोलिया।

'ग्राज शाम को मैं बाहर गाव जाना चाहती हू।' मैंने मा से कहा।

'घूमने ? इस वक्त तो बहुत ठडी होगी, बिटिया।'

'ठड मे ही ग्रच्छा लगता है मुझे।'

किसी को शायद कुछ नही कहना था मुझसे। ग्रब किसी का स्नेह,

उठा था।

घर, कॉलेज, सडकों पर चलते-फिरते निरीह लोग इन आततायियों की गोलियों का शिकार हुए थे और स्त्रियां, नवयुवतियां उनकी हवस का भी...हाथों में, कन्धों पर जितना ले जाया जा सकता था, लेकर ये लाखों लोग भारत की ओर चल पड़े। कोई नदी-नाला लांघता हुआ, कोई घने-बियाबान जंगलों को मझाता हुआ, कोई खेतों में पेट के बल रेंगता हुआ, पाकिस्तानी सैनिकों की नजरों से बचता-छिपता, लहूलुहान, भूखा प्यासा।

.. और इन कैम्पों में घूमते-फिरते, दवा दारू पहुंचाते मेरा हृदय पीड़ा से तार तार हो उठता। किसलिए जी रहे हैं ये सब ? किस भविष्य की प्रतीक्षा में ? नंगी छाती पर बहता हुआ जख्म, भिनकती हुई मक्खियां, और उड़ाने के लिए डोलता हुआ हाथ, न जाने आंखें शून्य में क्या खोज रही थीं। मुट्ठी-भर भात और फटे कंबलों में लिपटा बिलबिलाता यह मानव अस्तित्व ! उफ ! मेरा सिर घूमने लगता है।

आगे बढ़ते हुए सहसा मेरे पैरों से कुछ टकराया। झुककर देखा, एक नवजात शिशु की मृत-देह थी। लगा, कलेजा उछलकर मुंह में आ गया, मैं अनायास दो कदम पीछे हट गयी।

सिस्टर ने एक पल को मेरी ओर देखा, फिर झुककर उस बच्चे की देह को फूल की तरह उठा लिया।

'इस टेम्पो में रख आने हैं।'

मैंने अपने को प्रकृतिस्थ करते हुए कहा, 'मैं भी चलती हूं सिस्टर !'

कुछ दूर एक पेड़ के नीचे मृत देहों को ले जाने वाली टेम्पो खड़ी थी। अभी सुबह का समय था, किन्तु टेम्पो मृत देहों से आधी भर चुकी थी।

बच्चे को अत्यन्त कोमलता से टेम्पो में लिटाकर सिस्टर बोलीं, 'प्रभु पुत्र ! ईश्वर तुम्हें अपने स्नेह आंचल की छांव में ले लेगा, जहां युद्ध नहीं है, रोग नहीं है। है तो मात्र शान्ति, एक अलौकिक प्रसन्नता। आमीन' ! मैंने भी नत-मस्तक होकर प्रार्थना की पंक्तियां दोहरायीं।

दिन कैसे बीत गया, पता ही नहीं चला। एक नयी दुनिया में मैं आ गयी थी। बिलकुल नयी। मेरे बढ़ते हुए कदमों के साथ निखिल तथा गीताली का संसार बहुत पीछे छूट गया था। कई बार मैंने उन लोगों के

विषय में सोचा, किन्तु अब न किसी प्रकार का क्षोभ ही हृदय में उत्पन्न हो रहा था, न दुख।

आदमी...शायद स्वय ही कुछ दायरों में अपने आपको बन्द कर लेता है। और उन्ही में रोता है, गाता है, हसता है, फरियाद करता है। उससे बाहर कितना विस्तार है, जब वह जान पाता है, तो सब कुछ छोटा हो जाता है। अपनी दुनिया, अपने दुख।

किन्तु उन दायरो से बाहर निकल पाना सभव होता है क्या?

..किन्तु निखिल का विचार अब मेरे लिए दायरा नही था। एक नयी दुनिया का विस्तार मेरे समक्ष फैला था। घोर पीडा, व्यथा से बिलबिलाता, जन्म की करारी चोटो से टुकडे-टुकडे हुआ मानव और इन सबके बीच में...!

मिस्टर जोस्फीन ठीक ही कह रही थी—सुख का क्षितिज जब विस्तृत होता है तभी हम उन दायरो को लाघ सकते हैं। तभी महसूस होता है, सुख वहीं नही है, जगह-जगह बिखरा पडा है। दृष्टि हमे स्वय मे पैदा करनी चाहिए।

थोडे दिनो में ही मैं इन सब की परिचित हो गयी हू। ताराबाई, सरला, सुभद्रा, बूढी मरियम, जद्दनबाई, महिपाल—सब मुझे मेरा नाम लेकर पुकारते हैं।

ताराबाई का पाच वर्ष का पुत्र कालरा से ग्रस्त है। यह खबर मिलते ही मैं मिस्टर नेग्गी के साथ उसके पास पहुची। पाच-छह औरतें एक गोल-सा घनाकर बैठी थीं। बीच में वह नन्हा बच्चा सो रहा था। एक जी उबकाऊ बदबू से मेरा जी मितला आया। लगा, सास भीतर नही समा रही है। शरीर एक अजीब-सी घबराहट में सिहर उठा। बच्चे के चारो ओर उल्टी, टट्टी, पेशाब पसरा पडा था।

साक्षात् नरक में ये लोग कितनी शान्ति से बैठे थे। 'उफ...भाग जाना चाहिए ..दूर...यहा से कहीं दूर...' मेरे पैर पीछे को मुडे।

मिस्टर नेग्गी ने बच्चे के मुह में दवा डाली। फिर उन औरतो को गुस्से में डांटा, 'इस नरक में तुम्हें भगवान भी बचाने नही आयेगा। उठो। काम करो। यह गन्दगी तुरन्त साफ करो।

अन्यमनस्क-सी वे सब सुनती रही। कोई भी नही उठी।

'बच्चा ठीक हो जायेगा न ?' ताराबाई ने भरे गले से पूछा। सिस्टर नेन्सी उन भोग्नो के व्यवहार से विचलित हो उठी थी। मैंने उनके चेहरे को पढ लिया था। ताराबाई ने पुन अधीरता से पूछा, 'मेरा बच्चा मर तो नही जायेगा ?'

मुझे उसकी आवाज़ अत्यन्त अलिप्त लगी। दु ख-सुख से रहित। फिर भी स्वर न जाने कैसा था, मैं भीतर-ही-भीतर व्यथित हो उठी। सिस्टर नेन्सी ने अत्यत ममत्व-भरे स्वर मे सान्त्वना दी, 'हा, प्रार्थना करो, स्वच्छता रखो। ईश्वर की अनुकपा से यह जरूर स्वस्थ हो जायेगा।'

ताराबाई बच्चे को हल्के से स्पर्श करती हुई पुकारने लगी, 'बोरा... बोरा !'

'बेचारी का एक ही लडका बचा है, एक तो रास्ते मे ही खत्म हो गया था' एक औरत ने कहा।

किन्तु मा की आवाज शायद बच्चे के कानो तक नहीं पहुच सकी, और पहुच भी गयी होती, तो भी अपनी नन्ही दृष्टि के समक्ष पिता की क्रूर हत्या और मा की लुटती हुई आबरू को देखकर वह इस धरती पर शायद जिन्दा नही रहना चाहता। हो सकता है इसीलिए उसने अपनी पलकें मूद ली थी, हमेशा के लिए...

निखिल के द्वारा अपने तिरस्कृत प्रेम को लेकर मैं मर जाना चाह रही थी ? ससार मे कितना दु ख है, यातनाओ की चुभन से उफ न करता हुआ आदमी ! प्रचड हत्याकाड की विभीषिका मे जलता हुआ मानव, अकल्पित-असहनीय व्यथा मैं कितनी तुच्छ हू, इन सबके समक्ष।

दिन-पर-दिन बीतते रहे कॉलरा पर काबू पा लिया गया था। लोग काफी स्वस्थ हो रहे थे।

हमारी तरह ही हजारो अन्य स्वयसेवक भी वहा काम करते थे, निर्मय से मेरा परिचय इसी रूप मे हुआ था।

निराश्रितो के लिए विदेशो से बहुत सी आवश्यक वस्तुए उपहार स्वरूप आयी थी। बिस्कुट, चीज, दवाइया स्वेटर, कबल आदि। लॉरी म से सब सामान सावधानीपूर्वक एक जगह उतारकर तथा उसे शरणार्थियो

में समान रूप से पहुचाने की जिम्मेदारी हम लोगो को सौंपी गयी थी।

'आदमी नही हैं। साले भूखे कुत्ते हैं कुत्ते !' एक नवयुवक कार्यकर्ता कभी-कभी गुस्से से झुंभला उठता। शरणार्थियो की भीड कभी कभी इतने जगली ढग से धक्का-मुक्की करती कि उस नवयुवक कार्यकर्ता का आक्रोश हम सही लगता।

'कुत्ते थे नही, बन गये है। इन्हे आदमी बनाये रखने के लिए ही तो हम इतनी मेहनत कर रहे हैं।' निर्मय हमकर कहता। कितना ही उत्तेजित करनेवाला वातावरण क्यो न हो, वह कभी भी झुभलाता नही था। लोगों को अत्यन्त धैर्य तथा स्नेह ने पक्ति मे खडे रहने का वह आग्रह करता, उन्हे समझाता-बुझाता। उस समय उसके चेहरे पर एक अपूर्व सौम्यता झलकती।

'बडा साहब, आदमी दो हैं और कबल हमको एक ही मिला है।' कोई आकर शिकायत करता। तुरन्त पीछे से आवाज आती, 'दूसरा आदमी तो मर गया है साहब। यह साला झूठ बोलता है, हमकू कबल चाहिए।'

'इसके पास भी दो हैं, हमकू दो।' कोई बुढिया अपने कुबडे-कवाल शरीर को फटी धोती से ढापने की चेष्टा करती बडबडा उठती।

'हमकू हमकू, साँब...' असख्य चीखें एक साथ उठती।

ठडी के दिन थे। बर्फ हुई हवा उनके ठडे शरीरो को चिचोडती रहती थी।

इनमे युवा वर्ग अपने हिस्से का भात राशन से ले, पका खा, फिर बैठकर गप्प मारता रहता। करने के लिए उनके पास कोई काम भी तो नहीं था।

एक शाम को कार्यकर्ताओ के लिए बने तबुओ म वापस लौटने के समय मैंने सिस्टर जोस्फीन से कहा, 'ये युवा लोग अगर हमारी थोडी मदद करें, तो हम लोग काफी नये झोपडे तैयार कर सकते है, वरना इस भयानक सर्दी मे काफी लोग मर-मरा जायेंगे।'

'मरने के ही लायक हैं,' वही नवयुवक साथी भडककर बोला।

सिस्टर हस पडी, 'लगता है इनकी जिन्दगी का हिसाब किताब तुम्ही जानते हो।'

नवयुवक शर्मिदा हो उठा, 'सॉरी, सिस्टर ! पता नही कैसे मैं झुंभला उठता हू । वैसे मैं दिल का बुरा कतई नहीं हू । अखबार मे जब मैंने इन शरणार्थियों की खबर पढी, तो सारे घरवालो के विरोध के बावजूद इनकी सेवा करने के लिए यहा भाग आया ।'

'खैर ! अब आ गये हो तो यहा से वापस मत भाग जाना ।' निर्मय ने स्नेह से उसकी पीठ पर एक धौल जमाते हुए कहा, 'कल से हम झोपडे बाधने का काम शुरु कर देंगे ।'

'दूसरे दिन सुबह जब हम अलग होने लगे, तो निर्मय ने मुझसे पूछा, 'आज शाम को इस तरफ आओगी न ? मैं तुम्हे अपने वे नये झोपडे दिखाऊगा, जो हमने बाधे हैं ।'

पता नही, क्या था उसकी आवाज मे, या उन चमकीली आखो मे, मेरे आगे बढते पैर ठिठक गये सहसा । मैंने जितने भी पुरुष देखे थे, निर्मय उन सब से एकदम अलग था । उसके श्याम मुख पर एक अलौकिक सौम्यता थी, एक अजीब-सा आकर्षण ।

'आओगी न ?'

'हा, अवश्य । शायद थोडी देरी हो जायेगी ।'

'क्या ? कलकत्ता शहर जा रही हो क्या ?'

'नही, मैं तथा सिस्टर आज गर्भवती स्त्रियो के कैम्प का निरीक्षण करने जा रहे हैं । उनकी देखभाल की जिम्मेदारी आज से हम लोगो के ऊपर है ।'

निर्मय का चेहरा उदास हो उठा, 'तुम तो हमेशा अलग जाने की ही बातें करती हो ।'

'नही तो, तुम हमारे कैम्प मे सुपरवीजन करने आना । हम तुम्हारे कैम्प में आयेंगे । ठीक है न ?' मैंने मिलने का एक रास्ता स्वय सुझाया था । मैंने देखा, निर्मय का चेहरा खिल उठा है ।

थोडे ही अरसे मे, हम एक-दूसरे के कितने नजदीक आ गये थे ।

और मेरा मन जैसे समुद्र मे पडा हुआ लकडी का कोई गट्ठर हो . !

सिस्टर जोस्फीन ग्रा गयी थी। हम दोनो ग्रलग हो गये। जाते हुए मैंने एक बार पीछे मुडकर निर्मय को देखा, वह ग्रपने साथियो के साथ वातचीत मे मशगूल था।

मैंने मरियम को पहले भी देखा था। काला सूखा शरीर, शिकन-भरे चेहरे पर चमकती दो काली ग्राखें! फटी हुई साडी मे वह रोज राशन लेने डिपो पर सबसे पहले ग्राकर बैठ जाती थी। वह ग्रकेली ही थी। उसने स्वय ग्रपने लिए एक छोटी-सी झोपडी बना ली थी।

और ग्राज वह गर्भवती स्त्रियो की पक्ति मे ग्राकर खडी हो गयी थी।

सारी ग्रौरतें हंसने लगी, 'पागल है पागल।'

किसी ने उसको दिये जाने वाले टॉनिक की शीशी का भी विरोध किया।

सिस्टर ने उसे ग्रपने पास बुलाया। टॉनिक की शीशी उसके हाथो में देते हुए पूछा, 'किसके लिए ले जा रही हो, मरियम'?

'ग्रपने लडके की बहू के लिए।'

'सच! क्या वह यहा है? हम उसे देखने ग्रायेंगे!'

'शी...शी...' मरियम ने होंठो पर ग्रगुली रखते हुए कहा, 'वह सोती रहती है। बच्चा होने वाला है न? ग्रब तो खेत मे भी काम करने नही जा पाती।'

मरियम ग्रभी भी ग्रतीत की सृष्टि मे जी रही थी।

दोपहर ढले हम लौटने लगे, तभी सिस्टर को स्मरण हो ग्राया, 'मजू, मरियम को देखने चली जाना जरा।'

मुझे निर्मय की याद हो ग्रायी। 'ठीक है सिस्टर, हो ग्राऊगी। हा, ग्राज मैं निर्मय की तरफ भी जाऊगी। उसने जो नये झोपडे बाधने का काम शुरू किया है, वह देखने के लिए मुझे बुलाया है।'

सिस्टर जोस्फीन की नीली ग्राखों मे एक सुखद चमक पनिया ग्रायी। पता नही, यह मुझे ही महसूस हुग्रा था...

मैं मरियम की झोपडी की ग्रोर बढ़ी। टूटी-फूटी लकडियो को जोड-जाडकर। छत एक फटी-सी ताड की चटाई से बनायी गयी थी। इतनी

छोटी कि दरवाजे से घुसने के लिए भी शायद पेट के बल रेंगकर जाना होगा। मैं पहुची, उस वक्त वह भोपडी के बाहर बैठी भात पका रही थी।

मैं आकर उसके समीप बैठ गयी। क्या कहू, क्या पूछू ? दुःस्वप्न के ज्वार मे डूबते-उतराते इन असख्य मानवो की व्यथा-कथा.. !

मरियम ने क्षण-भर को मेरी ओर देखा, एक पवित्र मुसकान उसके पपडी-भरे होठो पर खेल गयी, 'बैठो।' गृहस्थ के आगन मे जैसा आदर-भरा सत्कार मिलता है वैसे ही वह स्नेहसिक्त स्वर मे बोली।

'इतना भात पूरा हो जाता है ?'

'हा रे है ही कौन ? मैं तथा असमत की बहू।'

'असमत कहा है ?'

'असमत नही। असमत खान कहो उस।' वह अपनी छाती गर्व से तानकर बोली। फिर धीरे से मेरे कान के पास सरककर फुसफुसाई, 'वह तो मुक्ति वाहिनी मे गया है।'

'ऐसा ? कब ?'

'कल ही तो ! घोर अधेरी रात थी। गाव मे पाकिस्तानी सैनिक आ पहुचे थे। हम दोनो-तीनो लोग खेत मे सास साधे छिपे बैठे थे। मरियम की आखो के समक्ष बीते हुए दिन स्पष्ट हो उठे।

.. और पेट के बल रेंगते हुए असमत खान हमारे पास आया। मुख्य सडक पर पाकिस्तानी जीपें दौड रही थी। उनकी निगाह मे जो भी पड जाये, वह ठाय-ठाय.. !

'असमत अकेला था क्या ?'

'नही, जावेद तथा मुहम्मद भी थे उसके साथ। वे लोग चादपुर के आगे का पुल तोडने जा रहे थे।'

मरियम की आवाज स्वस्थ, सुदृढ, गभीर थी।

मुझे कह गया था—'मा, बहू को सभालना। हो सके तो लुकते-छिपते भारत भाग जाना। मैं बाद मे आकर तुम लोगो को ले जाऊगा। उसी की प्रतीक्षा मे तो मैं भात पकाकर बैठी हू।'

रो नही सकी, किन्तु आखें छलछला आयी। कहा है असमत ? पुत्र-वधू ? ओ मरियम ! सबका अन्त एक दिन अवश्य होगा, किन्तु तेरी

प्रतीक्षा असमाप्त है, मरियम... !'

आखें पोछती हुई मैं उठ खडी हुई। 'मरियम, अस्मत जरूर आयेगा। किन्तु यह भात तो तुम खा लो, कब तक भूखी रहोगी।'

होंठो पर अगुली रखकर वह बोली, 'शी...शी...बहू सो रही है।'

निर्मय के पास जाने के लिए मुडी, तो लगा—पैर एक-एक मन के हो गये हैं। भीतर कुछ कसक रहा था जो आखो के कोनो से किसी एकान्त मे बह जाने के लिए बेचैन हो रहा था।

दूर से मुझे कुछ कोलाहल सुनाई दिया। लग रहा था ढेर सारे लोग किसी काम मे मशगूल थे। 'होईशा...होईशा...' उस आक्रोशी नवयुवक की आवाज मैं उन सम्मिलित स्वरो मे भी पहचान पा रही थी।

मन थोडा हल्का हो उठा। कदम एक नये उत्साह से उस दिशा मे बढ चले। समीप पहुची, तो पाया लोग झोपडा बनाने के लिए जगह-जगह बास गाडने मे व्यस्त है। निर्मय भी उसी मे व्यस्त था। मुझे देखते ही वह खुशी से भर उठा।

'बोलो सुपरवाइजर, क्या रिपोर्ट है ?' उसने मेरी ओर हसते हुए देखा।

आसपास कई झोपडे बनकर तैयार खडे थे। युवक कार्यकर्ताओ के साथ, शरणार्थी युवक भी उत्साहपूर्वक इस कार्य मे योगदान दे रहे थे। कुछ औरतें भी थी, कुछ बच्चे भी थे।

यह तो अलाउद्दीन के चिराग का 'जादू' लगता है ?

तभी वह आक्रोशी नवयुवक आ गया, 'जादू ? अरे, हड्रेड परसेन्ट जादू। आज सुबह जब हम लोगो ने इनसे झोपडा बाधने मे मदद देने का आग्रह किया, तो साफ कन्नी काट गये। कोई उठकर आया ही नही। मुझे तो इतना गुस्सा आया कि एक मशीनगन लाकर इन सब को एक साथ उडाकर रख दू।'

हम सब उसकी बातें सुन हस पडे।

'किन्तु निर्मय हैं क्षमा के अवतार ! जहा ये सब सो रहे थे, वहा जाकर उसने सिगरेट का पैकेट निकाला और सब उसमे चिपक गये सिगरेट मागने के लिए...'

'प्लीज, रहने दो यह पुराण !' निर्मय ने उसे टोका।

'क्या प्लीज ! क्या मैं झूठ बोल रहा हू !'

फिर जो वे एक बार इकट्ठे हुए तो बस उन्हे निर्मय की जबान ने ऐसा चिपकाया काम से...तब से लगे हैं बेचारे। निर्मय सब को गीता और कुरान बीच-बीच मे समझाते जाते, बस अब देखो यह सब.. !

फिर हम सब एक साथ लौट पडे अपने-अपने तम्बुओ की ओर। रास्ते-भर बस यही चर्चा होती रही—किसने कितना काम किया, किसने काम-चोरी की।

जिनके-जिनके तम्बू पडते गये वे सब हमसे अलग होते गये। मेरा तम्बू भी समीप आ गया था। निर्मय और मैं एकाएक ठिठक गये।

'मैं तुमसे, तुम्हारे ही विषय मे बहुत-सी बातें करना चाहता था। यहा कुछ पूछना या कहना मुनासिब नही लग रहा था, लाखो पीडितो के बीच अपनी बातें करना अजीब-सा लगता है न ! मजू, मैं तुम्हे अत्यन्त निकट से देखना चाहता हू। इस जख्म और फफोले भरी हुई दुनिया मे, मैंने तुम्हें अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा-स्नेह से कही बहुत गहरे महसूस किया है.. '

निर्मय का एक-एक वाक्य स्वाति की बूद की तरह मेरे अनतकाल से प्यासे हृदय मे गिर रहा था।

...तिरस्कार, क्षोभ, अपमान के प्रचंड तूफानी झोको ने जब सारे जीवन को उजाडकर रख दिया...तब यह उद्वेलित कर जाने वाला मृदु समीर...!

...जिस अमृतधारा का पान करने को अन्तर तरसता रहा, निखिल के पीछे विक्षिप्त-सा दौडता रहा, भागता रहा, वही अमृतधारा.. होठ सी गये तब...

निर्मय का स्वर मेरी सासो मे भर गया। लगा, रुधिर के साथ-साथ किसी के शब्दो का स्पर्श मेरी आत्मा को हिलाये दे रहा है.. निर्मय की पारदर्शी आखो मे मैं स्वय को देख रही थी...अपनी खुद की पहचान, जो मुझे कभी नही मिली जिन्दगी मे...'मजू, मैं तुम्हे अत्यन्त समीप...!'

आखो पर आसुओ की धुध छा गयी। निर्मय ने कोमलता से मेरे दोनो हाथो को अपने हाथो मे थाम लिया, 'मना कर दोगी तो अन्यथा नही लूगा।

हा कर दोगी तो अपने को सौभाग्यशाली समझूगा। किन्तु मजू, मैं प्रेम की भिक्षा नही माग रहा हू। अगर दो, तो मेरा अधिकार समझकर देना।'

मैं नि शब्द मौन जडवत् खडी रह गयी। वह चला गया।

तम्बू मे प्रवेश करते ही मैंने 'जीसस' की मूर्ति की ओर देखा। उनकी करुणामय दृष्टि मे मुझे निर्मय के शब्द तैरते दिखाई दिये...

तम्बू से बाहर निकल आयी। अधकार मे डूबा हुआ शरणार्थी कैम्प! कही-कही से दीये या लालटेन की रोशनी चमक उठती। कभी बच्चे और कुत्ते साथ-साथ रो पडते। कितना विचित्र है सब कुछ! पीडा...दर्द की असमाप्त यन्त्रणा!...सुबह न जाने किन कवलो मे से...ठडे शरीर निकलेंगे! किन्ही झोपडियो मे किसी और को रख दिया जायेगा। यह मृत्यु की यातना है या नवसृजन के पूर्व पृथ्वी की प्रसूति-पीडा?...

मेरे कन्धे किसी के मृदु स्पर्श से चौक उठे। मैंने पीछे मुडकर देखा, सिस्टर जोस्फीन थी।

'मजू, सरदी लग जायेगी। भीतर चलो।'

इस आकुल हृदय की बात और कौन है, जिसे कह सकू? पलभर को मन हिचका, फिर धीरे से मैंने कह डाला—

'सिस्टर, मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हू।'

'मैं जानती हू। निर्मय ने मुझसे तुम्हारे विषय मे पूछा था। मैंने कह दिया था, उससे ही पूछ लेना।'

'किन्तु...आप मुझे क्या सलाह देंगी?

'सलाह? पगली, सलाह तो ये ही...' उन्होंने तम्बू की दीवार पर टगी प्रभु ईशु की मूर्ति की ओर इगित किया, 'दे सकते है तुझे, इन्ही से पूछ, प्रेम का मतलब है निष्ठा, किन्तु प्रेम का मतलब जीवन-निष्ठा है मजू, उसे मत भूल जाना।'

सिस्टर भीतर चली गयी थी।

कोई हमसे कह रहा था जैसे, 'मजू, आज तेरा भूयो यथा मेनो पाठ? हिन्दू लडकियो के लिए प्रेम यानी पति-निष्ठा। याद रख, तू अपने तप से ही निखिल को एक दिन वश मे कर सकती है।'

वह मुट्ठी मे जैसे कुछ किलबिला रहा था। निखिल तलाक चाहते—

हैं.. वे पति हैं...हृदय से स्वीकृत भले न हो...

निर्मय से परिचय कितने कम समय का है।

घडी दो घडी का सग,

हो गया जनम-जनम का साथ रे।'

कवि ठीक कह रहा था...

नही...नही, प्रेम मे एक बार हार जाने के बाद अब कुछ बाकी नही बचा है। मात्र जर्जर हृदय, उदास दिनचर्या...ग्रोफ! मरा हुआ मन लिये मैं निर्मय को प्रेम की भीख नही दे सकनी...

पूर्व दिशा मे गगन रक्तिम हो उठा था। पूरी रात मैंने बेचैनी में बितायी थी। नया सूर्य ..नया जीवन . किन्तु बजर घरती मे नयी किरणें सिर्फ मिट्टी-पत्थरो के ढेलो का ही स्पर्श पाती हैं!

मैं तम्बू मे गयी। सिस्टर जोस्फीन दोनो हाथ ऊपर उठाये प्रार्थना मे लीन थी।

मेक ग्रस वर्दी लॉर्ड, टु सर्व ग्राउट मैंन थ्रू ग्राउट द वर्ल्ड हू लिव एण्ड डाइड इन पावर्टी एण्ड हगर ..

सिस्टर के स्वर मे स्वर मिलाकर मैं भी प्रार्थना मे तल्लीन हो गयी।

प्रभात का कोलाहल कानो मे टकराने लगा। नित्य-कर्म से निवृत्त होकर मैं सिस्टर के साथ बाहर निकल पडी।

रातो रात कैम्प मे अन्य बहुत से शरणार्थी आ गये थे। थके-हारे, भूखे-प्यासे स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े, स्वयसेवक स्ट्रेचर लिये इधर-उधर भाग-दौड कर रहे थे। अत्याचार की हृदय-विदारक कथा रह-रहकर कानो मे गूज उठती थी। चटगाव बन्दरगाह पर उतरी दो पाकिस्तानी रेजीमेन्टो ने मानवो का बर्बरता से सहार किया था। बग देश की धरती खून से लथपथ कराह उठी थी।

मरियम की झोपडी के पास जब मैं पहुची, तब वह वहा नही थी। थोडी दूर पर खडी शववाहिनी मे वह, ठडा-निर्जीव शरीर लिये अपने अस्मत और बहू की प्रतीक्षा कर रही थी...उसकी खाली झोपडी को हथियाने के लिए कुछ औरतो मे बेहिसाब झगडा हो रहा था।

देखकर मेरे प्राण गले तक आ गये। उफ...

)

'अम्मा ..अम्मा...' एक आर्तनाद मेरे कानों को छेद गया। मुडकर देखा तो एक वृद्ध मेरी ओर हाथ पसारे मुझे पुकार रहा था।

'क्या है, बाबा?' मैंने पास जाकर पूछा।

'कुछ कहे बिना उसने अपनी दृष्टि घुमाई। कुछ दूरी पर एक अधनगी, खून से लथपथ लडकी पडी हुई थी।

'अम्मा, काली माता का प्रसाद ला दोगी क्या? मा इस बिटिया को ठीक कर देंगी।' वृद्ध हाथ जोडकर मेरे समक्ष गिडगिडा रहा था।

'ठीक है बाबा, कल तुम मुझे इसी जगह मिलना। तुम्हारा नाम क्या है?'

गफूर। बूढा गफूर कहकर मुझे बुलाते थे गाव में सब।'

'बूढा गफूर, तुम काली माता का प्रसाद क्यों चाहते हो भला? वह तो हिन्दुओं की देवी है न!'

'अम्मा, काली माता पूरे बगाल की मा है। मेरी मा! मेरा नाम पहले गगानाथ था, मा। गगानाथ चौधरी!'

'फिर?'

'हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का बटवारा हुआ, तब मैं नोआखली म था। खूब खून-खराबा हुआ उस समय। भाई भाई की जान का दुश्मन हो उठा था। एक ही धरती के पुत्र। मैं तथा मेरी बीवी मगला तब से गफूर तथा मरियम बन गये ..जिन्दा रहना था न, मा!'

जिसका आदि नही है, अन्त नही है, वह महाकाल भी मानव को मिटा सकने में समर्थ नहीं है। प्रलय, युद्ध, भूकम्प, तूफान सब अपना ताडव दिखाकर तहस-नहस कर जाते हैं, किन्तु मानव जिन्दा था, जिन्दा है और जिन्दा रहेगा।

'मजू!' एक परिचित स्वर मेरे कानों से टकराया। चौंककर मैं मुडी—निर्मय था।

'मजू, तुम्हें मिस्टर जोस्फीन बुला रही हैं। वे राशन के डिपो के पास खडी हैं।'

मैं तथा निर्मय जब वहा पहुंचे, तब मिस्टर वहां नही थी। मैंने इधर-उधर देखा, वे मुझे दाहिनी ओर छोटे-छोटे कैम्प समूह के पार दृष्टि

गत हुई। हम दोनों तेजी से उनकी ओर लपके। तेज...तेज...

काफी दूर जाने पर हम जहा थे, वहा से भारत और पाकिस्तान की सीमारेखा दिखाई पड रही थी। अनेक छोटे-छोटे नालो और खेतो के बीच मे एक श्वेत रेखा, दो देशो की, दो प्रजाओ की, दो हृदयो के बीच तलवार की धार-सी दिखाई पड रही थी।

चढती हुई दोपहर थी। हम सीमा पार के एक छोटे-से गाव मे गुजर रहे थे।

गाव उजाड पडा हुआ था। श्वेत रेखा के करीब, भारतीय सीमा मे एक पेड के नीचे सिस्टर जोसफीन खडी थी। वृक्ष के नीचे जमीन पर एक स्त्री सो रही थी। उस युवती के शरीर के कपडे बुरी तरह फटे हुए थे। शरीर का निचला हिस्सा खून मे लथपथ हो रहा था.. आसपास की जमीन भी खून के धब्बो से भरी थी। पास पडा था एक नवजात शिशु। नन्ही-नन्ही बद गुलाबी पलको के साथ।

सिस्टर और मैं उसके समीप ही बैठ गये। निर्भय रिक्शा बुलाने गाव मे गया।

उस स्त्री ने पुकारने पर आखें खोली। मृदु हसी हस दी। जिस प्रसव यातना से वह गुजरी थी, उसमे उसकी हसी ..

'नाम क्या है तुम्हारा ? सिस्टर ने ममत्वपूर्ण स्वर मे उससे पूछा।

'सर्वमगला देवी।'

उसने हल्के से करवट ले बच्चे को स्नेह मे थपथपाया।

हमे उसस अनेक प्रश्न पूछने थे। भाषा, जाति...धर्म...नाम... पता...

किन्तु हम लोगो न कुछ भी नही पूछा। नवजात शिशु के ऊपर छाया करते हुए हम मौन बैठे रहे।

रिक्शा आ गया। सर्वमगला देवी को बैठाकर सिस्टर बच्चे को गोद मे लेकर स्वय भी बैठ गयी।

हम वापस लौटे।

'जब मैं छोटा था, तब मुझे चित्र बनाने का अत्यधिक शौक था। फिर वह शौक बस ऐसे ही रह गया। मजू ! आज फिर से एक चित्र बनाने की

इच्छा हो रही है। वासुदेव द्वारा कृष्ण को गोकुल ले जाते हुए या माता मेरी और बालक ईशू का चित्र। पृथ्वी पर जब-जब आतक का प्रलय हुआ है ऐसे ही एक चित्र ने हर दुख को सात्वना दी है। मानव हृदय को बल दिया है...एक नये जीवन-सदेश के साथ...' निर्मय का कठ-स्वर भीगा था।

तपती दोपहरी के बावजूद जमीन ठडी लग रही थी।

तबू मे जब पहुची, तो दोपहर ढल चुकी थी। हाथ-मुह धोकर स्वस्थ हो निखिल को पत्र लिखने बैठ गयी।

लिखने को बहुत कम था। तलाक की मजूरी। कैम्प के पोस्ट-ऑफिस से चिट्ठी पोस्ट कर जब मैं वापस लौटी, तो निर्मय को बैठा पाया।

'मजू, कल से मेरी बदली हो गयी है।'

'बदली ?' मैं चौक पडी, 'तुम्हारी बदली ?'

'हा, मजू, मैं सरकारी नौकर हू। यहा की देख-रेख के लिए भेजा गया था। मेरे विरुद्ध अनेक शिकायतें है। मुख्य शिकायत तो यह है कि...' कहते हुए वह हमेशा की तरह प्रसन्न था, 'मैं उपहार आयी विदशी चीजो की चोरबाजारी न तो करता हू, न करने देता हू।'

'ओह ! किन्तु ..' मुझसे कुछ बोला नही गया।

जेब से उसने एक पुर्जा निकालकर मेरी हथेली पर रख दिया, 'यह मेरा पता है, मजू। जब भी लिखोगी, दौडता हुआ चला आऊगा। मजू...तुम्हारी अभिलाषा आकाशगगा का कमल है, जिसे पाना तो क्या, स्पर्श भी दुर्निवार है।'

वह चला गया था। उसके व्यवहार मे, चाल-चलन मे कहीं से भी सरकारी नौकरी का आभास नहीं होता था। शायद...शायद मैं उसे अभी तक ठीक से नही पहचान पायी।

निर्मय का पता मैंने सभालकर रख लिया। एक...दो...तीन.. दिन के कदम बढते जा रहे हैं।

अधेरे मे डूबे आसमान को मैं हर रात ताकती रहती हूँ। कोई समाधान.. कोई जवाब, इन दुखियो के आर्तनाद मे या प्रार्थना के लिए सिस्टर जोस्फीन की दुआओं मे मैं कोई अर्थ खोजती रहती हू।

एक दृत के दायरे से निकलकर मैंने विश्व

किया है...प्रेम का अर्थ भिक्षा नही, अधिकार है। किन्तु अधिकार ममत्व को जन्म देता है और ममत्व में से ही पीडा का सृजन होता है।

सब कुछ अधूरा अपूर्ण...एक आवाज है जो पुकारती है—आ जाओ... आ जाओ मजू ..चलो आओ...

निर्मय, क्या करू मैं ? फिर एक वृत्त के दायरे मे तुम मुझे बाघ लेना चाहते हो ? नही...नहीं

...क्या जिन्दगी को बिना दायरे दिये हुए, हम साथ-साथ कदम मिलाकर नही चल सकते ? साथ-साथ नही जी सकते ?

निर्मय का पता अब भी मेरे पास सभालकर रखा हुआ है। पत्र लिखने की भी इच्छा है। कब लिख सकूगी, यह शायद मैं स्वय नही जानती।

एक भयंकर चीख सुनाई पड़ी।

एकान्त में गीत गुनगुनाते हुए, बगीचे के छोटे-छोटे फूल खिले पौधों को पानी सींच रहे लीना के हाथ एकाएक थम गये। गीत की कड़ी गले में ही अटक गयी। स्तब्ध-सी वह हाथों में पानी की 'झारी' लिये खड़ी रह गयी। फिर अचानक जैसे वह होश में आयी, हाथों की झारी उसने झट-से नीचे फेंक दी तथा बंगले तक जाने वाली पोर्च की सीढ़ियाँ, एक साथ दो-दो फलांगती हुई बरांडे पर पहुँच गयी। झट-से वह सुरेखा के कमरे की ओर दौड़ी तथा उसके कमरे का दरवाज़ा 'बंद' कर बाहर से कड़ी लगा दी।

एक दूसरी हाड़ कँपा देने वाली चीख के साथ, कमरे के भीतर से दरवाज़े को सख्त कर धमाके के साथ कोई चीज़ फेंकी गयी। दरवाज़ा बुरी तरह हचमचा उठा।

शून्य हृदय लीना बंगले से बाहर आयी और 'पोर्च' की सीढ़ियों पर बैठ गयी।

थोड़ी देर बाद पहियों के चिचर-चिचर का स्वर उभरा। एक काँपता हुआ वृद्ध हाथ, लीना के खुले बालों को धीरे-धीरे सहलाने लगा। लीना की स्तब्ध स्थिरता भंग हो गयी। उसने अपना चेहरा घुमाया। बाबूजी के दोनों हाथ, उसने अपने हाथों में दबाकर गालों से भींच लिये...दोनों चुपचाप एक-दूसरे को देखते रहे। दोनों के पास ही कुछ कहने जैसा नहीं था। बन्द दरवाज़े के पीछे से रह-रहकर उठता हुआ शोर...शान्त रात्रि की पीठ पर

मानो कील-सा चुभो रहा था। अनजाने ही लीना ने अपने हाथ बाबूजी के हाथों से अलग कर कानों पर रख लिये। हरिदास चुपचाप लीना के बालो को सहलाते रहे। दोनो मे से किसी को भी 'पोर्च' मे बत्ती जलाने का खयाल ही नही आया। पिता-पुत्री, दोनो ही अन्धकार मे निस्तब्ध बैठे रहे। रह-रहकर उठती हुई 'चीख' समूचे वातावरण मे तैर रही थी। हरिदास नि श्वास छोडते हुए कभी-कभी निढाल-से पलकें मूद लेते थे।

धीरे-धीरे चीखें शान्त होती गयी। तूफान गुजर जाने के बाद फैली हुई दमघोंट शान्ति...सब-कुछ तहस-नहस कर देने वाली तूफानी हवा मानो स्वय से भयभीत हो या अशक्त हो किन्ही कोनो मे दुबककर बैठ गयी थी।

एक लम्बा नि श्वास छोडते हुए लीना ने अपना चेहरा हल्के-से दोनो हथेलियो से दबाया मानो सारी जडता वह दूर फेंक देना चाहती हो—अपनी भी, वातावरण की भी।

'बाबूजी!' उसकी आवाज मे एक अजीब-सी थरथराहट थी। हरिदास ने उसे पुन अपने करीब खीच लिया तथा माथे को हल्के-हल्के हाथो से सहलाने लगे। फिर बिना लीना की ओर देखे हुए आर्द्र स्वर मे बोले—

'लीना बेटा! अगर आज साझ को तू रमीला की पार्टी मे सुरेखा को अपने साथ ले गयी होती तो ? तू तो समझती है न, क्या वह तुझसे और ? रमीला तेरी सहेली ही नही, बहन जैसी भी है, उसे कुछ बुरा न लगता। इस सबका नतीजा देखा तूने यह सब तूफान...!'

हरिदास का हाथ, झटके से अपने माथे से अलग करती हुई लीना चीख उठी, 'नही! नही!! नही!!! कभी नही! आज से मैं सुरेखा के लिए कुछ भी नही करूगी। सुरेखा . सुरेखा. सुरेखा.. नही . नही ..' बोलते बोलते लीना का गला अवरुद्ध हो उठा, 'बाबूजी, मैं क्या करू ? कैसे करू ? कैसे . ?' उसका स्वर सिसकियों मे डूब चुका था।

सिसकती हुई लीना का चेहरा हरिदास ने धीरे-से अपनी ओर घुमाया और डबडबाये स्वर मे बोले, "शान्त हो मेरे बच्चे, शान्त हो...आई एम सॉरी ..तू...तू ..जरा सुरेखा के पास तो जा कमरे मे .."

बिना कोई उत्तर दिये लीना उठ खडी हुई। थोडी देर पहले स्वय ही बन्द किये गये कमरे के पास जाकर खडी हो गयी। घडी भर कुछ सोचती

रही, फिर उसने कडी खोल दी। देहरी पर ही वह सहसा ठिठक गयी।

पूरा कमरा अस्त व्यस्त पडा था। लीना की उदास-अधीर दृष्टि कमरे की दाहिनी तरफ रखी हुई गोल टेबुल पर गयी। उसका मनपसन्द 'फ्लावर पॉट' उस पर नही था ''सुरेखा रोज़ उसे ताजे फूलो से सजाती थी। उस पर की गयी नक्काशी ने उसे विशेष प्रभावित किया था। और इस वक्त... कमरे मे चिदी-चिदी होकर बिखरी तमाम चीज़ो मे उसका कही नामो-निशान नजर नही आ रहा था।

दरवाजा खुला रख, चारो ओर नजर घुमाते हुए लीना ने कमरे मे प्रवेश किया। कमरे की आखिरी खिडकी के सीखचो मे सिर भिडाये सुरेखा दोनो हथेलियो मे मुह छिपाये सिसक रही थी। लीना सुरेखा के करीब गयी। धीरे से उसके कन्धो पर हाथ रख दिया। फिर बिना कुछ बोले ही उसने हलके-हलके उसकी पीठ पर हाथ फिराया और उसे धीमे-धीमे ड्राइग-रूम मे ले आयी। सोफे पर पडी हुई एक आध चीज़ों को उसने उठाकर एक तरफ रख दिया तथा सुरेखा को सोफे पर लिटा दिया। एक मासूम बच्ची की तरह बिना किसी प्रतिकार के थकी-सी शान्त सुरेखा पडी रही। उसने लीना का हाथ कसकर पकड रखा था। थोडे ही समय मे वह सो गयी। सोफे के सामने पडे स्टूल पर बैठी लीना सुरेखा को देख रही थी। पखे की हल्की हवा मे उसके सुनहरे बाल उड रहे थे। सुन्दर, सुघड देहयष्टि। पनियारी आँखें...लीना के मन को एक धक्का-सा लगा। वह तुरन्त उसके सामने से उठकर बाहर चली आयी।

...और अशक्त-सी वह पुन सीढियो पर बैठ गयी। इस तरह के दृश्यो से वह अपरिचित नही थी। इस सब की उसे आदत पड गयी थी। किन्तु आज...आज...पता नही क्यो, मन रह-रहकर एक चोट-सी महसूस कर रहा था।

...कितने साल हो गये है इस बात को? कितने सालो से वह इस तरह कमरे की अस्त-व्यस्तता सहेजती आयी है! शायद पाच वर्षों से या पद्रह...! कौन जाने? उसे अक्सर महसूस होता है जैसे समय के इस 'शव' को उसके कन्धो पर टिकाकर उस अनन्त यात्रा पर छोड दिया गया है, जो शायद कभी खत्म न होगी।

...उसका मन, टूटी हुई माला के बिखरे मोतियो की तरह भूतकाल के प्रागण मे छितर गया। स्मृतिया...सुरेखा उससे तीन वर्ष छोटी थी। मासूम, नाजुक, छोटे कद की, जबकि लीना लम्बी, समझदार तथा चुस्त। बाहर का कोई भी काम करना हो, तो लक्ष्मी बहन लीना को ही दौडाती। खेलते खेलते अगर किसी के साथ सुरेखा की झडप हो जाती, तो वह तुरन्त आकर लीना से उसकी शिकायत करती, मा से नही। फ्राक पर इस्त्री करनी है या किताब पर 'कवर' चढाना है या माथा दबवाना है या सोने से पहले पीठ सहलवानी है, तो सुरेखा बस 'दीदी, दीदी' की पुकार लगाये रखती।

लीना पढने मे अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थी। स्कूल मे प्रिंसिपल तक उसका मान करते।

वह तब मैट्रिक मे पढती थी। गणित का पीरियड था। वह सवाल हल करने मे मशगूल थी कि इतने मे ही सुरेखा की कक्षा से एक लडकी उसे बुलाने आयी।

लीना उत्सुकता से भरी जब उसकी कक्षा मे पहुची तो उसने पाया, सुरेखा बेहोश पडी है। घर मे भी उसे तीन-चार बार इस तरह का दौरा पड चुका था, किन्तु बाबूजी ने तथा मा ने लीना को दूसरे कमरे मे भेज दिया था। बाद मे उसे घर की नौकरानी केसर ने बताया था कि बाबूजी डॉक्टर को लेकर आये, तब भी सुरेखा को होश काफी देर बाद आया था। किन्तु ऐसी स्थिति से उसका पाला प्रत्यक्ष कभी पडा ही नही था।

टेबुल का कोना पकडे लीना स्तब्ध-सी खडी रह गयी। सुरेखा के क्लास टीचर ने, उसके चेहरे पर पानी के छीटे मारते हुए कई प्रश्न लीना से पूछे, लेकिन लीना को तो कुछ भी मालूम नही था। एक अजब भय ने 'जड' हुई वह सारी भाग-दौड देखती रही। स्कूल का चपरासी तुरन्त बाबूजी को बुलाने गया। डॉक्टर भी तब तक आ गया था।

काफी समय बाद जब लीना, बाबूजी के साथ सुरेखा को लेकर घर लौटी थी, तब तक भी वह उस अचानक घटित घटना के आघात से मुक्त नही हो सकी थी।

फिर तो मा तथा बाबूजी चाह कर भी यह सब उससे छिपा नही

सके थे, न छिपा ही रह सका था। इस 'दौरे' का 'अटैक' कब होगा, कहाँ होगा, इसका भी पता नहीं रहता था। घर मे, बाहर, या स्कूल मे...एक बार सुरेखा हठ करके मेले मे गयी थी और वहा उसे इस 'दौरे' का अटैक हुआ था, चलते-चलते अचानक गिर पड़ने से माथा फूट गया... सारे कपड़े खून से भीग गये। किसी तरह उस दिन वह उसे घर लेकर आयी थी . बस! उस दिन से मा ने निश्चय कर लिया, कि अब सुरेखा का स्कूल जाना बन्द। पता नहीं किस समय क्या घट जाए?

उस रात लीना को नींद नहीं आयी थी। सुबह जो प्रश्न-उत्तर उसने याद करने के लिए सोचे थे, उन्हे अभी ही कर लेने के इरादे से वह उठ बैठी। उसने टेबुल-लैम्प जलाया तथा पढ़ने बैठ गयी। इतनी बीती रात को भी घर मे शान्ति के बदले बातचीत करने की आवाज आ रही थी।

ड्राइगरूम मे मा तथा बाबूजी अभी तक जाग रहे थे तथा धीमी आवाज मे बातचीत कर रहे थे। उस वक्त लीना इस बात से अनभिज्ञ थी कि इन दोनो की यही बातचीत एक दिन उसके जीवन के समग्र अस्तित्व को अजगर की भांति भीतर-ही-भीतर लील लेगी और उसे हमेशा के लिए मौन कर देगी।

निरुपाय, निस्सहाय...!

मा बाबूजी से कह रही थी—

'अच्छी विडम्बना है। पढ़ाई से तो सुरेखा को अलग कर दिया है, पर लड़की की जात, बिना पढ़े भी तो गुजारा नहीं है?'

'तो फिर क्या करें?' बाबूजी का स्वर परेशानी से भरा था, 'लक्ष्मी, तू ता अपनी स्थिति जानती है, 'लोन' लेकर यह छोटा सा बगला बनवाया है रहने के लिए। लीना भी इस वर्ष मैट्रिक मे है। पढ़ने मे वह रत्न है रत्न! मैट्रिक में वह अवश्य फर्स्ट क्लास लायेगी। फिर आगे उसकी इच्छा है डॉक्टर बनने की। साइस साइड लेने पर खर्च भी तो बहुत होगा? इस पर अगर हम सुरेखा को घर पर पढ़ायेंगे तो खर्च किस तरह पूरा होगा? तू ही बता न लक्ष्मी, इन सारी स्थितियो से तू अनजान थोड़े ही है?'

'तुम लीना की चिन्ता क्यों करते हो ? वह तो होशियार लडकी है। जहा भी जायेगी, अपने लिए जगह बना ही लेगी। किन्तु सुरेखा...'

'कैसी बातें करती हो, लक्ष्मी ? हमारे लिए तो दोनो बच्चियां एक ही जैसी है। बाबूजी को वही ये बातें चुभ गयी थी।

'मैं तो कुछ भी नही समझती, ऐसा ही लगता है न आपको ? आपकी बात सच ही है, परन्तु लीना की अपेक्षा सुरेखा नाजुक है, सीधी-सादी है, तिस पर यह विकराल रोग।'

'हूं!' बाबूजी ने कोई उत्तर नही दिया किन्तु वह उनकी ऐसे समय की आदत जानती है—वे धीरे सिर हिला रहे होगे। उसने अपने कमरे मे बैठे हुए ही उनकी कल्पना कर ली।

'नही, तुम्हारा इस तरह से बस हुकारी भर देने से काम नही चलेगा। सुरेखा के विषय मे तो कुछ सोचना ही पडेगा। चिन्ता करनी ही पडेगी। नही तो बेचारी का भविष्य अन्धकारमय हो उठेगा।' मा ने बातचीत का निचोड बाबूजी के समक्ष रख दिया था।

बगल के कमरे मे यह सब सुन रही लीना का मन अपनी छोटी बीमार बहन के प्रति अनुकपा से भर उठा था।

दूसरे दिन जब शाम को वह स्कूल से लौटी, तो उसने पाया—बाबूजी ड्राइगरूम मे बैठे किसी सज्जन से बातें कर रहे थे। सामने की कुर्सी पर बैठी सुरेखा ध्यानमग्न हो उनकी बातचीत सुन रही थी। स्कूल का बैग 'टेबुल' पर रखते-रखते लीना ने उन लोगो की कुछ बातचीत सुन ली थी। ये सज्जन सुरेखा के शिक्षक थे। तनखाह केवल चालीस रुपये। बाप रे! लीना का मुह आश्चर्य से खुला रह गया।

उस रात खाना खाते-खाते लीना ने बाबूजी से पचास रुपये मागे। लाड स वह बोली—

'बाबूजी, कल जरूर दे दीजियेगा। भूलियेगा नही।'

'किसलिए ?' रोटी परसती हुई मा का हाथ क्षण-भर को थम गया।

हाथ का कौर रोककर, उत्साह से भर लीना बोली, 'मैट्रिक के विद्यार्थियो के लिए एक खास वर्ग खुला है, जिसमे मुझे एडमीशन लेना है, उसी की फीस। और बाबूजी, बस रोज शाम को एक घटा ज्यादा

देना होगा। यहा से नजदीक भी बहुत है। फिर तो मेरा फर्स्ट क्लास श्योर। क्या इनाम देंगे आप तब ?'

हरिदास ने जल्दी-से पानी पिया तथा खखारते हुए बोले, 'बेटा लीना..।' किन्तु आगे कुछ बोल न सके। चुपचाप दूसरा कौर तोडकर मुह मे भर लिया।

'किन्तु बाबूजी, आज तो मैंने स्मिता के साथ अपना नाम भी वहा लिखा दिया। उन लोगों ने कहा, पैसा कल भी भर दोगी, तो चलेगा।'

'लीना ..लीना...मेरे पास अब बिलकुल इन रुपयो की गुजाइश नही है।' और थाली मे हाथ धोकर हरिदास तुरन्त उठ गये।

मा मुह नीचा किये चुपचाप खाना खाती रही। लीना ने अपने मुह का कौर जैसे-तैसे गले मे नीचे उतारा।

कई बार जब वह रात को किताबें खोलकर पढने बैठती, तो मा की आवाज़ सुनायी पडती—

'लीना बेटा, जा, जरा जाकर नाके वाली दवाइयों की दुकान पर से डॉक्टर को फोन तो कर।' और लीना किताब बन्द कर तुरत दुकान पर फोन करने दौड पडती।

ऐसे ही कई सुबह जब वह स्कूल जाने के लिए तैयार होती, तो मा को माथा पकडे हुए पट्टे पर बैठा देखती और चिन्तित हो पूछ बैठती—

'क्यों मा, क्या हुआ ? तबीयत ठीक नही है क्या ?'

'सुरेखा की तबीयत रात मे बिगड गयी थी, सारी रात जागते बीती। इसीलिए माथा बहुत दुख रहा है। किन्तु बैठे भी तो गुजारा नही है, कितना काम पडा है।'

लीना कहती, 'रहने दो मा, तुम इतनी चिन्ता क्यों करती हो ? कहीं तुम बीमार पड गयी, तो सारा घर अस्त-व्यस्त हो उठेगा। मैं झटपट काम कर लेती हू। दो पीरियड छोड दूगी। जाइये, आराम कीजिए जाकर।'

...ऐसे ही साल गुजर गया, मैट्रिक की परीक्षा आयी और चली गयी। लीना ने जैसे 'मार्क्स' चाहे थे, नही पा सकी। वह सेकेण्ड क्लास मे पास हुई थी। कॉलेज मे साइंस साइड म एडमीशन मिलने की संभावना समाप्त हो चुकी थी। उतरे हुए मुह से वह घर पहुची, तो उसने पाया—

खुरपी लिये हरिदास गुलाब की क्यारी की टूटी हुई ईंटें खोदकर, उन्हें फिर से जमीन मे करीने मे लगा रहे थे।

दरवाजा खुलने की ग्रावाज़ सुन, उन्होंने बिना सिर उठाये ही-काम करते-करते धीरे से पूछा—

'ग्रा गयी, लीना बिटिया ?'

हताशा-भरे स्वर म लीना ने जवाब दिया

'हा, बाबूजी, मुझे ग्रार्ट्‌स म एडमीशन मिल गया है।'

'ग्ररे राम ! मेरी ग्राख मे पता नही क्या पड गया।' हरिदास हाथ की खुरपी एक तरफ फेंक एक हाथ स ग्राख दबाये उठ खडे हुए तथा बिना लीना की ग्रोर देखे ग्राखें चुराते हुए-से बगले की सीढ़िया चढ गये।

ग्रस्त-व्यस्त चीजो के बिखराव को शून्य दृष्टि मे देखती हुई लीना को इतने वर्षों बाद भी वह दृश्य ज्यो-का-त्यो याद है। धीमे-धीमे स्वर मे कहे गये वे शब्द ..उसके जीवन की प्राणवायु बनकर रह गये...बापू की गमगीन दृष्टि .उस रात मा के वे शब्द...

वह, वह न होकर मानो स्मृतियो मे बदल गयी है—जिन्दा स्मृतियो मे। जिसके ग्रागे न वह कुछ सोच सकती है, न जी सकती है...ग्रसहाय लीना !

उस रोज वह ग्रपनी कक्षा के साथ पिकनिक पर जाने वाली थी। बडे चाव मे वह सारी तैयारिया करती रही। वैसे हर साल स्कूल की तरफ से विद्यार्थियो को पर्यटन के लिए ले जाया जाता था ग्रौर लीना हमेशा किसी-न-किसी ग्रडचन की वजह स रह जाती थी—कभी रुपये-पैसो की, कभी काम-काम ग्रादि। लेकिन ग्रबकी जो पिकनिक जा रही थी, वह यही। ग्रपने गाव के भीतर बनाये गये नये बगीचे मे। वह ग्रत्यन्त खुश थी।

सुबह उठकर वह जाने के लिए जल्दी-जल्दी तैयार हो रही थी, बिना किसी शोर-शराबे के, क्योंकि उसे डर था कही मुरेखा उठ गयी तो ? ग्रौर हुग्रा वही, जिसका उसे भय था। इतनी सावधानी के बावजूद मुरेखा उठ गयी ग्रौर उसके साथ जाने की जिद करने लगी। उन लोगो को पहले

से ही हिदायत थी कि वे किसी भी बाहरी बच्चे को पिकनिक में शामिल नही कर सकते। सिर्फ क्लास के ही विद्यार्थी...उसे कितना समझाया, पुचकारा, लालच दी...किन्तु सुरेखा ने एक न सुनी। अन्त में रोते-रोते वह बेहोश हो गयी। डॉक्टरो की भाग-दौड़...बाबूजी की उदास निगाह ...मा का आंसू भीगा चेहरा—सब कुछ देखती, झेलती लीना। कमरे के एक कोने में निर्जीव बुत-सी खडी रही। उसे महसूस हो रहा था, जैसे उससे कोई गुनाह हो गया है।

फिर वह कभी पिकनिक पर नही गयी। स्कूल से घर, घर से सीधे स्कूल। उसे लगता था, किसी ने उसे धक्का मारकर एक ऐसे घर में बन्द कर दिया था, जिसमें न खिड़की है, न दरवाजे और न रोशनदान ही।

किन्तु जैसे ही उसे फूल-सा कोमल निर्दोष सुरेखा का चेहरा याद आता, वह अपना क्षणिक दुख भूल जाती। बेचारी सुरेखा।

और आज...उसे लगता है घर की दीवारें सिमटती जा रही है, छत थमी चली आ रही है और एक भयानक सन्नाटा गहराता जा रहा है, जो शायद...

अब उसे महसूस हो रहा था, हर बार पैदा कर दी गयी इस अस्त-व्यस्तता को सहेज सकने की शक्ति उसमें खत्म हो चुकी है। धीमे से उठकर वह बाहर वाले कमरे मे आयी। सामने सोफे पर सुरेखा बेखबर सो रही थी, जिसे कुछ समय पूर्व उसने खुद ही यहा लाकर लिटाया था। अस्त-व्यस्त कपडो में भी वह कितनी मोहक लग रही थी।

उस पर से दृष्टि हटा वह सोफे के सामने पड़े स्टूल पर बैठ गयी। उसकी गोद में वह साडी पडी थी, जो आज रात वह रमीला की पार्टी में पहनने वाली थी। सुन्दर रेशमी साडी...सुरेखा ने गुस्से मे आकर उस पर स्याही की बोतल फेंक दी थी। जगह-जगह उभर आये स्याही के दाग ...जैसे सुन्दर शरीर पर कोढ के दाग उभर आये-से दीख रहे थे।

इस वक्त रमीला के यहा काफी गहमागहमी होगी। हसी-मजाक मे सब मशगूल होंगे। और वह...इस सूने बगले मे अकेली बैठी है. एकदम अकेली। दूर कहीं से आती हुई झींगुरों की आवाज हवा में तैर रही है जो शनैः-शनैः उसे तीव्र होती-सी महसूस हो रही है।

दोनो हाथो से साडी पकडे हुए वह सोती हुई सुरेखा को स्थिर दृष्टि से देखती रही।

यही सुरेखा, जिसे वह वर्षों से प्यार करती आयी है या नफरत, आज तक वह निश्चित नही कर सकी। किन्तु आज उसे लग रहा है, वह सुरेखा से सिर्फ नफरत करती आयी है, सिर्फ नफरत !

...पर...हे प्रभो ! मैं क्या करू ? दोनो हाथो मे दबी हुई साडी मे चेहरा छिपाकर वह बुरी तरह फफक पडी।

काफी समय पश्चात लीना जब स्टूल पर से उठी, तो गहरा अधेरा फैल चुका था। वह बिना कुछ बोले अपने कमरे मे आकर पड रही। अशक्त शरीर तथा अन्यमनस्क हृदय लिये वह पलग पर करवटें बदलती रही। आज मन अत्यन्त बेचैन हो रहा था। अन्तर मे स्मृतियो का झझावात...! सब कुछ अशान्त, असहनीय-सा...!

मैट्रिक मे अपेक्षित मार्क्स न मिलने की वजह से उसे आर्ट्स मे एडमीशन लेना पडा था। किन्तु उसमे भी पढना उसके नसीब मे नही था। अन्त मे कॉलेज के प्रागण को आखिरी प्रणाम कर उसने पढना छोड दिया।

बाहरी जगत से उसका एकमात्र नाता भी जैसे टूट गया।

...लीना का मन टूटी हुई विचार-शृखला को पिरोने लगा।

कॉलेज छोडे हुए भी तो कितने साल व्यतीत हो गये हैं।

वह उन्तीस वर्ष की हो रही है। समय कितनी क्रूरता से पख फडफडाता हुआ उससे दूर...बहुत दूर उचे आसमान मे विलीन हो गया था और वह विस्मित-सी बाहे फैलाये अकेली खडी रह गयी थी या छोड दी गयी थी। न उसका कोई मित्र था, न...बस, किसी प्रगाढ परिचय से जुडी थी वह, तो आसमान के उस छोटे-से टुकडे से, जो उसके कमरे की इकलौती खिडकी से हमेशा अलग-अलग रगो के साथ दीखता था। जो उसका बहुत अपना-सा बन गया था।

कॉलेज मे दाखिला लेने के बाद कुछ समय तक तो सब कुछ सामान्य चलता रहा था। कभी-कभी यह कसक जरूर उसे दुखित कर जाती कि

अब वह डॉक्टर नहीं बन सकेगी। किन्तु सुरेखा का चेहरा याद आते ही अपना यह दुख भी वह भूल जाती। सुरेखा का खूबसूरत चेहरा उसकी मजबूरी बन चुका था और स्वयं से उसे शायद कुछ भी याद करने का हक छिन गया था.. !

गुस्से से सुरेखा का दिमाग फटने लगता। वह उत्तेजित हो तोड़-फोड़ शुरू कर देती। या अचानक बेहोश होकर गिर जाती, तब लीना सब कुछ भूलकर उसके पीछे मशीन की तरह भाग-दौड़ करने लगती। उसके बाद, दो-तीन दिन तक सुरेखा अशक्त-सी बिस्तर पर पड़ी रहती और उस समय वह उसे मजेदार बातें सुनाती या चटपटे चुटकुले सुनाकर हसाने का प्रयत्न करती। सुरेखा को मास्टरजी घर मे पढ़ाने आते थे। वे जो भी होम-वर्क दे जाते थे, उसे पूरा करने मे वह उसकी मदद करती।

एक दिन बाबूजी उसे किसी बहुत बड़े डॉक्टर को दिखाने ले गये। मा भी साथ जा रही थी। लीना भी हठ करके उन लोगों के साथ गयी।

एक घटे तक डॉक्टर साहब सुरेखा का परीक्षण करते रहे। तमाम सवाल-जवाब किये गये। अन्त मे उन्होंने जाच का परिणाम बताया। शारीरिक दृष्टि से सुरेखा बिलकुल स्वस्थ लड़की है...शारीरिक विकास भी ठीक है।

हताश हो सब लौट आये। डॉक्टर ने भले ही कह दिया था कि उसे कोई विकार नहीं है, किन्तु सभी निश्चित थे कि सुरेखा में कुछ असामान्य अवश्य है, जो सामान्य लड़कियों में नहीं होता है।

लीना मैट्रिक मे पास हुई थी, उसी समय की घटना है। मा ने कुछ स्नेही जनों तथा मित्रों को भोजन पर आमन्त्रित किया था। लीना तथा मा रसोई में बैठे कुछ बना रहे थे। अचानक किसी जरूरतवश मा ने सुरेखा को आवाज दी। किन्तु सुरेखा न आयी। मा बार-बार पुकारती रही, फिर भी उसने कोई जवाब न दिया। चिढ़कर लीना उठी तथा गुस्से से भरकर सीधे उसके कमरे में पहुची।

'तुम यहा बैठी क्या कर रही हो? मा कब से बुला रही है।'

'तो क्या हो गया?' सुरेखा का उपेक्षित उत्तर सुनकर लीना उत्तेजित हो उठी।

'तो क्या हो गया ? तू वहाँ की लाट साहब है क्या, आराम से बैठी है ? चल उठ काम है।'

'हाँ, लाट साहब हूँ, भागो यहाँ से। नहीं आऊँगी, जाओ।' गुस्से से भन्नाती सुरेखा उसकी ओर झपटी।

दोनों एक-दूसरे से गुथ गयीं। उनकी ऊँची आवाज सुनकर माँ तथा बाबूजी दोनों दौड़े-दौड़े आये, तो देखा — दोनों एक-दूसरे में भिड़ी हुई एक-दूसरे को नीचे गिराने की चेष्टा कर रही हैं।

'हूँ, मैं नहीं आऊँगी, नहीं आऊँगी ! जा, तू कौन होती है मुझे कहने-वाली ?' चीखती हुई सुरेखा ने एक हाथ छुड़ाकर लीना के गाल पर एक जोर का तमाचा जड़ दिया।

देखकर सब स्तब्ध रह गये।

आज की यह सुरेखा एकदम अलग थी। अभी भी वह खूँखार लाल आँखें निकाले लीना को घूर रही थी। उसका शरीर क्रोध से थरथरा रहा था।

माँ लीना को अपने नजदीक खींच लेने के लिए उसकी ओर लपकीं किन्तु इससे पहले ही वह अपना चेहरा दोनों हथेलियों में छिपाकर वहाँ से बाहर चली गयी।

माँ के बहुत समझाने के बावजूद उस दिन लीना न अपने कमरे से बाहर ही निकली, न उसने खाना ही खाया। खुशी का वह प्रसंग उदासी में बदल गया था।

लीना गुमसुम औंधे मुँह पलंग पर पड़ी रही। उसने सोच लिया था, आज से वह सुरेखा के साथ बिलकुल नहीं बोलेगी।

तभी उसी क्षण उसने अपने माथे पर किन्हीं मुलायम हाथों का स्पर्श महसूस किया। उसने तुरन्त उस हाथ को पकड़ लिया और सामने पलटी— सुरेखा थी। दोनों हथेलियों के बीच चेहरा छिपाकर वह बुरी तरह फफक पड़ी।

'सॉरी दीदी, पता नहीं कैसे मेरा हाथ आप पर उठ गया। यह मुझ पर कैसी अमानुषिकता सवार हो जाती है ? मैंने ऐसा क्यों किया दीदी, क्या किया ?...मुझे माफ कर दीजिए...दीदीऽऽऽ!'

लीना की छाती मे सिर छिपा वह पुन जोरो से फफक पडी। लीना की आखें भी भीग आयी।

दूसरे दिन बाबूजी आफिस मे कुछ जल्दी ही आ गये थे तथा मा के साथ अस्पष्ट स्वर मे कुछ बातचीत कर रहे थे। बाबूजी से सारी बातें जान लेने के लिए लीना अत्यन्त अधीर हो उठी। उस रात जैसे ही सुरेखा अपने कमरे मे गयी, वह तुरन्त बाबूजी के पास पहुची। बाबूजी ने सारी बातें बतायी। वे सुरेखा को किसी मानसिक चिकित्सक को दिखाने ले जा रहे थे। तीन दिन बाद मा, बाबूजी तथा वह पॉलिश से चमचमाती कुर्सियो पर बैठे थे। सामने टेबुल पर सुरेखा की 'रिपोर्ट' पडी थी और डॉक्टर अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कह रहे थे

'हा, आप लोगो की यह बात सच है कि सुरेखा शारीरिक दृष्टि से एक तदुरुस्त लडकी है, लेकिन वह मानसिक रूप से बीमार है।'

मा अपनी छूटती हुई रुलाई को भीतर-ही भीतर दबा शान्तचित्त हो डॉक्टर की बातें सुनने का प्रयत्न कर रही थी, बाबूजी ऊपर से स्वस्थ दिखने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु उनकी वेदनापूर्ण दृष्टि लीना से छिपी न रह सकी। बाबूजी की इस दृष्टि से वह खूब परिचित थी।

'आप अगर इस बीमारी का नाम जानना चाहते हैं, तो इस 'सीजोफेनिया' कह सकते है। सुरेखा का वह उत्तेजित व्यवहार या बेहोश हो जाना इसी का एक रूप है। इस रोग की मात्रा समयानुसार घटती-बढती रहती है। इस रोग से पीडित रोगियो को सम्पूर्ण मानव-जाति पर अविश्वास होता है। कुछ लोग तो इतने हिंसक बन जाते हैं कि उनको परिवार मे रखना सम्भव ही नही होता। आप लोगो को तो ईश्वर का आभार मानना चाहिए कि आपकी लडकी की अवस्था अभी काफी अच्छी है।'

'किन्तु डॉक्टर साहब, हम लोग क्या करें?' मा से अपनी रुलाई रोकी न जा सकी। वे फूट-फूटकर रो पडी।

डॉक्टर ने अत्यन्त स्नेह से बाबूजी के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, 'सॉरी, आपके जैसे स्नेही मा-बाप से मुझे बस इतना ही कहना है कि इस रोग की कोई दवा नही है। आप अपने घर मे प्रेममय वातावरण रखिए। जहा तक हो सकता है सुरेखा की सारी इच्छाए पूरी कीजिए। उसे बिलकुल

क्रोध मत दिलाइए। हो सकता है इन सब बातों से सुरेखा एकदम ठीक हो जाये।'

और तब से, डॉक्टर के शब्द वेद-वाक्य की तरह पाले जाने लगे।

शनैः-शनैः सुरेखा ने यौवन की देहरी पर कदम रखा। उसका रूप खिले गुलाब-सा महक उठा। धीरे-धीरे उसकी बीमारी का स्वरूप भी बदलता गया। 'बेचारी', 'बीमार लडकी' जैसे विशेषणों के साथ उसे हमेशा लोगों का विशेष स्नेह मिलता था। उसकी सारी इच्छाओं का विशेष ध्यान रखा जाता था और बाकी लोगों को अपनी इच्छाए दबा लेनी पडती थीं। यह समझौता मां तथा बाबूजी ने बिलकुल अन्धे मन से स्वीकार कर लिया था, जहां किसी के भी विषय में सोचने की कोई गुंजाइश नहीं रह गयी थी —शायद लीना के लिए भी नहीं, और वह भी उस समझौते की कडी बन-कर रह गयी थी।

सुरेखा की इच्छा अगर पूरी न हुई या इच्छित वस्तु न प्राप्त होती, तो वह मानसिक आघात से उत्तेजित हो उठती और उसी उत्तेजना में वह चीखें मार-मारकर बेहोश हो जाती।

डॉक्टर की बात सच थी।

सुरेखा को अब बचपन की तरह दौरे नहीं पडते थे। अतः मां तथा बाबूजी उसका विशेष ध्यान रखते थे। उसे ज्यादा-से-ज्यादा खुश रखने की चेष्टा करते। लगता, शायद डॉक्टर के शब्द किसी दिन सही हो जायें और सुरेखा एकदम ठीक हो जाये।

सुरेखा को मां तथा बाबूजी पुनः एक बार डॉक्टर के पास दिखाने ले गये थे। सुरेखा की प्रगति देखकर डॉक्टर अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। 'एक-दो साल बस इसी तरह ध्यान रखिए, सुरेखा सामान्य युवतियों में से एक होगी।' फिर भी एक बात हमेशा करकती। सुरेखा को हमेशा अपेक्षित बर्ताव की आदत पड गयी। उसकी छोटी सी इच्छा या विचार परिवार के लिए सर्वोपरि बन जाता। किसी प्रकार का प्रतिकार होने पर वह क्रोध से उत्तेजित हो जाती, तूफान बरपा देती और ऐसे में हंसता-खेलता घर पुनः उदासी में डूब जाता।

मां कहती, 'लीना, मत जा तू कॉलेज के कार्यक्रम में, नहीं तो सुरेखा

भी हठ करेगी...' 'लीना, यह किताब दे दे न सुरेखा को, वह तुझसे छोटी है न। इतना भी नहीं समझती तू?'...'देखो, यह सुरेखा के लिए फ्राक का कपडा, उसके गोरे रग पर यह खूब खिलेगा न?'...

'सुरेखा को दे दो, सुरेखा के लिए मत जा...सुरेखा...सुरेखा...सुरेखा...'

बिना किसी पूर्व सूचना के बराडे से होती हुई हवा जैसे धीमे-धीमे उसके कमरे मे घुस आती है, वैसे ही सुरेखा के लिए उसके मन मे वितृष्णा का भाव अनजाने ही पनपता जा रहा था। ऐसे विचारो से वह अकसर चौंक उठती। उन्हे अपने भीतर से निकालकर फेंक देने का प्रयत्न करती। किन्तु निष्फल...विष-बेल की तरह वह पनपता ही जा रहा था।

लीना को महसूस होता, सुरेखा नाम की धुरी पर घर तीव्र गति से गोल-गोल घूम रहा है। उसे चक्कर आ जाता। उसे लगता, वह चीख-चीखकर सारे घर से कह दे, 'नहीं, नहीं, नहीं। बस, बहुत हो गया। अब मैं सुरेखा के नाम पर ये ज्यादतियां सहन नही कर सकती। मैं भी इन्सान हू। मुझे भी अपने ढग से जिन्दगी जीने का हक है।' लेकिन फिर मा तथा बाबूजी की याचना-भरी दृष्टि उसके समक्ष उभर आती और लीना ..

मा गभीर रूप से बीमार पड गयी।

मां को दिल का दौरा पडा था। डॉक्टर ने पूर्ण रूप से आराम करने की सलाह दी थी। कॉलेज की परीक्षा, मा की बीमारी, घर का काम-काज, सुरेखा की देख-रेख। लीना को लगता, उसे एक मोटे खभे से कसकर बाध दिया गया है और नियति के क्रूर हाथ जब जी चाहे उस पर कोडे चलाते रहते हैं.. वह निरुपाय, न अपने को बचा ही सकती है, न सहन ही करना चाहती है। लेकिन सब कुछ...

जिस रात मा की मृत्यु हुई, कितनी शान्त, भयानक रात थी वह। पूरा घर स्तब्ध-सा हो रहा था। काफी रात बीत गयी थी। सभी धडकते हृदय से मां के बिस्तर के पास जागते हुए बैठे थे। हाफते-से स्वर मे, मां ने कराहते हुए लीना को अपने समीप बुलाया और उसका हाथ अपने निर्जीव-से हाथो मे लेकर कहा—

'लीना, मैं जानती हू, मैंने तेरे साथ बहुत अन्याय किया है। तुझे

कोई सुख नही दिया, किन्तु तू तो मुझे समझ सकती है बेटा, तू भी स्त्री है न ! इसके सिवा और कोई उपाय भी तो नही था। पर आज इस अन्तिम समय मुझे किसी बात की चिन्ता नही है। मुझे विश्वास है, यह घर तेरे मजबूत कन्धो के सहारे जिन्दा रहेगा...मैं शान्ति से जा रही हू...'

लीना को लगा, मा के पार्थिव शरीर को वह झकझोरकर चीख पडे, "नही, मा ..नही . मुझसे यह सब नही होगा। मैं इतना बडा बोझ नही उठा सकूगी, मा...मेरे कन्धे देखो, मा...कितने छोटे हैं...कितने छोटे . !'

किन्तु उसकी चीख गले मे ही घुटकर रह गयी। वह कुछ भी न कह सकी। बस फटी आखो मे मा का निर्जीव शरीर ताकती रही।

कई दिनों तक लोगो की आवाज उसके कानो मे गूजती रही।

'कितनी हिम्मती लडकी है ! लडकी मिले तो भई ऐसी। ईश्वर ने लक्ष्मी बहन को लडकी के रूप मे लडका दिया है। कितनी भाग्यशाली थी वे !'

सुरेखा बिना खाये-पीये पूरा दिन उदास सी घर मे घूमती रहती या कभी कमरा बन्द कर पडी रहती। अक्सर वह मा की फोटो के समक्ष बैठी घटों रोती रहती।

लीना चुपचाप घर का काम करती रहती, केसर को रसोई मे मदद करती, फिर कॉलिज जाती। कॉलिज से घर आती, न कही आना, न जाना। जाने के लिए टाइम भी तो नही मिलता था। रात को थककर जब वह बिस्तर पर पडती, तो अपनी पढाई भी नही कर पाती., कमरे मे अधेरा करके वह काले आसमान को उस खिडकी से ताकती रहती, जो इस अकेलेपन मे उसका एकमात्र सहारा थी।

हरिदास 'पोर्च' मे काफी रात गये तक बैठे रहते। कभी-कभी लीना भी उनके साथ सीढियो पर बैठी रहती। पूरे समय वे बिना बोले एक-दूसरे के आस-पास बैठे रहते मानो शब्द चुक गये हो, कहने के लिए पास मे कुछ भी न हो।

एक स्थिर उदासी ने सारे घर को डस लिया था। सिर्फ एक आदमी के न रहने से...!

किन्तु एक दिन अचानक घर की बची-खुची जिन्दगी भी टुकडो-टुकडो मे बट गयी। लगता था, उन्हे अकेला—नितान्त अकेला छोड देने का निश्चय कर लिया था नियति ने या षड्यन्त्र ! ...

अचानक हरिदास पर पक्षाघात का हमला हुआ, शरीर का निचला हिस्सा निर्जीव हो गया। मा की मृत्यु के तुरन्त बाद ही बाबूजी की यह बीमारी...सुरेखा दुख से भीतर-ही-भीतर गलने-सी लगी। बाबूजी के बिस्तर के करीब वह उनका हाथ पकडे बैठी रहती। और कोई भी काम वह नही कर पाती थी। बाबूजी की सम्पूर्ण देख-भाल, मालिश की व्यवस्था, डॉक्टरो के पास भाग-दौड तथा घर का भी ध्यान—लीना को कुछ भी सोचने या महसूस करने का भी मौका कहा मिलता था। एक यन्त्र की तरह, बस चलते ही रहना...!

बाबूजी अब काफी स्वस्थ हो गये थे। व्हील-चेयर के सहारे वे घर मे यहा-वहा टहलते रहते।

एक रात हमेशा की तरह खाना हो जाने के पश्चात लीना बाबूजी की व्हील चेयर 'पोर्च' मे ले आयी।

'बाबूजी, आज मैं आपके पास नहीं बैठूगी, अच्छा...! थोडा पढना है, एक निबन्ध भी तैयार करना है। दो दिन से बिलकुल समय ही नही मिल पा रहा।'

कहकर लीना जाने के लिए मुडी।

'लीना.. लीना ! बेटा, थोडी देर बैठ न मेरे पास, मुझे तुझसे कुछ काम है। बैठे तो...'

हरिदास का कापता स्वर सुनकर लीना सहसा ठिठक गयी। उनके नजदीक आकर चिन्ता से बोली—

'जरूर बैठूगी, बाबू जी, लगता है आज आपकी तबीयत ठीक नही है। आज मैं आपके करीब ही बिस्तर बिछाऊगी। जरा-सा भी कुछ लगे, तो मुझे उठा लीजिएगा। निबन्ध मैं सुबह जल्दी उठकर लिख लूगी।'

करीब आयी हुई लीना का हाथ उन्होने खीचकर अपनी छाती से चिपका लिया। लीना चौक उठी। उसने अपने हाथ पर कुछ गरम बूदें महसूस की।

'आप रो रहे हैं, बाबू जी ? नहीं...नहीं...आप अगर इस तरह हिम्मत छोड देंगे, तो मैं क्या करूगी ? मुझे कौन सहारा देगा ?' वह बाबू जी के पैरो के पास बैठ गयी, 'आप क्या कहना चाह रहे थ ? नि सकोच कहिए। जो कुछ भी आपके मन म हो सब कह दो, बाबू जी !'

हरिदास कडवी हसी हस दिये, 'सकोच ! सकोच, किससे बेटी ? अगले जन्म म न जाने कैसे कर्म किये थे जिनका प्रतिफल मेरे साथ-साथ तुझे भी—पूरे घर को भोगना पड रहा है। लगता है, छाती पर पहाड लिये ही जाना होगा।'

सुनकर लीना अस्थिर हो उठी। क्या हो गया है आज बाबूजी को ? हिम्मत न हारनेवाले बाबूजी आज कैसी थकी-थकी बातें कर रहे हैं... उससे रहा नही गया। तुरन्त बोल पडी, 'कभी भी यह सब नहीं कहते' फिर आज क्यो बाबू जी ? क्या बात है, मुझे बताइय न !..'

'तुझसे ही तो कहूगा, बेटा। तेरे सिवा दूसरा कौन है ? तू ..तू... यह बगला बेच डाल, लीना।'

'बाबूजी !'

'ठीक कह रहा हू, बेटा। तू तो इस घर की मालकिन है। तुझसे क्या छिपाना? मैं तो अब शायद किसी काम धाम के लायक रहा ही नही। जो कुछ जिन्दगी-भर की बचत थी, वह लक्ष्मी तथा सुरेखा की बीमारी चाट गयी बाकी बचा-खुचा खुद मुझ पर ही स्वाहा हो गया। तू खुद ही सोच बिना किसी आमदनी के हमारी जिन्दगी कैसे कटेगी ! दो दिन से मैं भीतर ही-भीतर सोच सोचकर घुल रहा हू, पर तुझसे कहने की हिम्मत ही नही पड रही थी। एक पिता होकर ..' कहते कहते वे पुन रुक गये, जैसे गल मे कुछ फस गया हो। फिर धीरे से बोले, 'दो दिन हो गये नोटिस आय हुए। बगले के 'लोन' का इन्स्टालमेन्ट भी भर नही पाया हू।'

'ओह !' लीना ने सिर पकड लिया।

'इसीलिए कहता हू यह बगला बेच दे। अभी इसकी अच्छी कीमत मिल जायेगी। हम लोग कहीं छोटा-सा घर ले लेंगे।'

लीना धीरे-स उठ खडी हुई।

'ठीक है। सोचकर बताऊगी।' आगे हरिदास कुछ कहें, इसके पूर्व ही वह झटके से अपने कमरे मे चली गयी।

उस रात लीना सो नही सकी थी। वह रोती भी नही रही थी। अब यह सारी भावुकता उसे अनावश्यक लगती थी। त्याग, बलिदान, महान जैसे शब्द सुनने-सोचने मे भी खोखले प्रतीत होते थे। अब तो जो कुछ भी करना है, सोचना है, अत्यन्त व्यावहारिक बनकर। नही, बगला तो वह बेचने नही देगी, नही तो इतने लोगों के साथ कहा छत ढूढेगी ! ...उस छोटे-से घर का खर्च, निर्वाह का खर्च...!

एक नि श्वास के साथ उसने खिडकी तथा खिडकी से दिख रहे उस आसमान के टुकडे की ओर पीठ कर ली। वह जियेगी तथा उन सब को जिन्दा रखेगी। लीना कॉलिज छोड देगी। बस कल से ही कॉलिज बन्द। साइन्स नही ले सकी तो क्या, आर्ट्स भी नही पढेगी। वह नौकरी करेगी। लीना ने कॉलिज छोड दिया। कुछ दिनो की भाग-दौड के पश्चात उसे एक अच्छे ऑफिस मे टाइपिस्ट की नौकरी मिल गयी। स्कूल के समय शौक के लिए सीखी गयी टाईपिंग अनजाने ही उसके काम आयी। वह खूब मेहनत करेगी तथा स्पीड फटाफट बढाने की कोशिश करेगी—टक...टक ...टक...टक.. के स्वर मे वह एकरस हो उठेगी।

नौकरी की बात पक्की होते ही लीना ने सबसे पहले यह सुखद समाचार हरिदास को सुनाया। हरिदास सुनकर बस टुकुर-टुकुर उसकी तरफ देखते रहे। फिर कुछ बोले बिना अपनी व्हील चेयर को खुद ढकेलते हुए अपने कमरे की ओर चल दिये। उन आखो की पीडा लीना महसूस कर रही थी। वह भी नि शब्द खडी रह गयी।

आजकल सुरेखा की तबीयत अच्छी रहती थी। अब पढाने के लिए मास्टरजी भी नही आते थे। सुधरी हुई तबीयत तथा जी भर आराम ने उसके भरे गालो मे गुलाबीपन भर दिया था। उसका सौन्दर्य अत्यन्त लुनाईपूर्ण लगता था। वह अब कढाई-बुनाई की क्लास मे जाती थी तथा घर मे बैठकर सुन्दर-सुन्दर डिजाइनें काढा करती थी।

डॉक्टर के बिल धीरे-धीरे चुकता हो गये थे। 'लोन' का इन्स्टालमेन्ट समय पर भर दिया जाता था। सोफे पर नये कवर चढ गये थे। धीरे-

धीरे घर एक नये रंग, नये ढंग से सज गया था। लीना नौकरी कर रही थी, उसने घर का बोझ अपने मजबूत कन्धों पर सभाल लिया था। पर जिस वक्त वह सुन्दर, उजली-धुली सुरेखा को, टेबुल-लैम्प के प्रकाश में कढाई करते हुए देखती तो बस एकटक देखती ही रह जाती। सुरेखा के कमनीय होठ हसकर कहते—

'दीदी, यह डिजाइन कैसी है ? अपनी डाइनिंग टेबुल के रूमालों के लिए मैंने खास चुनी है।'

सुनकर लीना हल्के-से मुसकरा देती तथा पुन अपनी हिसाब की डायरी लिखने मे मशगूल हो जाती।

'दीदी, मैं सोने जा रही हू।'

सुरेखा के धीमे स्वर ने उसे सहसा चौंका दिया। वह अतीत की खोह से अचानक उबर आयी।

आज शाम को रमीला के घर उसके जन्मदिन की पार्टी थी। उससे ऑफिस म उसका खास बहनापा था। बहुत सारे लोग इकट्ठा होने वाले थे। अचानक लीना को स्मरण हो आया—अरे, आज अनुपम भी वहा आने वाला है। कितने दिनो से लीना इस दिन की अधीर मन से प्रतीक्षा कर रही थी! उसने विशेष कढाई अपनी एक रेशमी साडी पर आज के लिए करवायी थी। शाम को वह तैयार होने लगी। इतने में ही सुरेखा आ गयी तथा उसके साथ स्वय भी चलने की जिद करने लगी। आवेश मे आकर उसने सुरेखा को बुरी तरह डाट दिया।...काफी अरसे बाद उस पर पुन 'दौरे' का अटैक हुआ था।

सुरेखा जब अपने कमरे मे चली गयी तब लीना पलग पर से उठकर ड्राइंग-रूम मे आयी। थोडी देर पहले गुस्से में उतारकर फेंक दी गयी साडी को उसने दोनों हाथों से उठा लिया। उसके होठ वितृष्णा से तिरछे हो उठे। ओह सुरेखा . सुरेखा! उसे महसूस हुआ सुरेखा उसकी जिन्दगी के साथ जोंक की तरह चिपक गयी है, जो उसका सारा लहू चूस लेगी।

उसने साडी को बेदिली से पुन. सोफे पर फेंक दिया और अपने कमरे मे आ गयी। नींद भी नही आ रही थी। खिडकी के सीखचो से लगी वह

अधेरे मे ताकती रही। साफ को सुरेखा की चीख सुनते ही, फेंक दी गयी पानी सीचने वाली भारी मोगरे की क्यारी के समीप अस्पष्ट-सी दिखायी पड रही थी।

वह अकेली...नितान्त अकेली, मोगरे की नन्ही-नन्ही कलियो के गुच्छो को देखती रही। लगता था, रात के अधेरे मे आसमान के चमकते सितारे धरती पर उतर आये हैं और इन मोगरे के पौधो पर गुच्छो मे इकट्ठ हो गये है...

...शायद अधेरी रात से या इस भयानक सन्नाटे से वे कभी नही डरते...!

दूसरे दिन सुबह लीना बहुत देर से उठी। सूरज काफी चढ आया था।

अपने कमरे मे आकर उसने जल्दी-जल्दी बाल सवारे। ऑफिस के लिए निकलने मे अभी वक्त था, किन्तु यहा से वह शीघ्र ही निकल जाना चाहती थी। किसी के साथ बोलने के मूड मे वह नही थी। उसने अलमारी खोल-कर बिना सोचे थप्पी मे से एक आसमानी साडी खीच ली। जल्दी-से साडी लपेट उसने हल्के गुलाबी रंग की लिपस्टिक होंठों पर फेरी।

...कढाई करती हुई सुरेखा जब मीठी हसी हस पडती, तो उसके होठ कुछ अधिक गुलाबी हो जाते। उसका चेहरा खिले हुए मोगरे की तरह भीनी-भीनी सुगन्ध से महकता रहता...उसकी कढाई नफासत से भरी नक्काशीदार होती थी। ऊह, फिर से सुरेखा.. सुरेखा...उफ, विचारो मे भी वह उसका पीछा नही छोडती। क्यो उसे अपने होठो पर लिपस्टिक लगाते हुए सुरेखा के होठो की परछाई उभर ..!

उसे लगा, सुरेखा की धीमी-सुस्त चाल की जगह वह कितनी स्फूर्ति भरी स्मार्ट चलती है। जो भी काम हो, सूझ-बूझ से मिनटो मे करती है।

इसकी तारीफ अनुपम ने भी की थी...अचानक लीना को अनुपम का हसमुख चेहरा याद आ गया। अनुपम उसके विषय मे क्या सोचता होगा ?...

'दीदी!'

सहसा वह चौंक गयी। लिपस्टिक उसके हाथ से छूटकर गिर गयी

सामने आईने में, उसके करीब ही सुरेखा का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था।

बिना कुछ बोले उसने नीचे झुककर लिपस्टिक उठा ली। फिर कुछ स्वस्थ होने का प्रयत्न करती हुई, सुरेखा की ओर अपना चेहरा घुमाया। उदास सुरेखा उसके पलंग की पाटी पर बैठ गयी थी। भीगे हुए स्वर में, मुंह नीचा किए हुए ही वह बोली—

'कल रात अपने बर्ताव के लिए मैं बहुत दुखी हूं, दीदी। मुझे क्या हो गया था, क्या पता ? आपकी पार्टी में मुझे जाने की क्या आवश्यकता थी ? क्यों मैं यह फिजूल जिद करती हूं...आपका सारा उत्साह मैंने खत्म कर दिया और आपकी प्यारी सी साड़ी.. छि-छि, सोचती हूं तो स्वयं पर घृणा हो आती है।'

'जो होना था, वह हो गया। कल तो कब का बीत गया। अब वह सांझ लौटकर नहीं आयेगी। अफसोस करने से क्या हाथ लगेगा।' कबाट में से अपना पर्स निकाल, हाथ में पकड़ी हुई लिपस्टिक उसमें डाल दी। फिर एक झटके-से कबाट बन्द कर बिनी पीछे मुड़े वह तीर-सी कमरे से बाहर हो गयी। उसे बुरी तरह महसूस हुआ। यह घर, ये बातें, यह हवा.. सब कुछ जहरीली गैस में परिवर्तित हो गया है, जो उसे खत्म कर देना चाहती है, उसका दम घोंट देना चाह रही है। जल्दी-जल्दी भीड़-भरे रास्तों से गुजरती, जब वह ऑफिस में दाखिल हुई, तो लगा यह जगह बहुत बड़ी है . बहुत खुली हुई...यहां वह भरपूर सांसें ले सकती है...

आज वह ऑफिस कुछ पहले ही आ गयी थी। उड़ती-उड़ती-सी नजर चारों ओर डालती हुई वह अपनी कुर्सी पर जब बैठी, तब उसकी बेचैनी काफी कम हो चुकी थी। रमीला उसकी बगल वाली कुर्सी पर ही बैठती थी, किन्तु अभी तक वह आयी नहीं थी। कल का बचा-खुचा काम उसने फुर्ती से निबटाया। काम करते हुए कई बार उसकी दृष्टि घड़ी के कांटों पर गयी। बस, कुछ समय बाद ही लंच टाइम हो जायेगा। वह ऑफिस की कैंटीन में जायेगी। वहां नाश्ता करेगी। चाय पियेगी। वहां अनुपम भी मिलेगा। लीना को देखकर अनुपम कहेगा—

'आओ, आओ, लीना ! क्या मंगाऊं तुम्हारे लिए ?'

वह कुछ उत्तर दिये बिना धीरे-से मुसकरा देगी।

'कॉफी पियोगी मेरे साथ ?'

.. फिर अनुपम खूब बातें करेगा, और वह कॉफी का प्याला अंगुलियों में थामे उसकी रसपूर्ण बातों में उलझ जायेगी।

लीना ने फिर से घड़ी देखी—अरे! लंच टाइम हो गया। वह झट-से अपने रूम से बाहर आयी और कैंटीन जाने के लिए लिफ्ट में दाखिल हो गयी।

अनुपम क्या कहेगा ? 'कल तुम पार्टी में क्यों नहीं आयी ? ओह, मैंने तुम्हारी कितनी प्रतीक्षा की।' ऐसा ही कुछ वह कहेगा !...

लीना का मन सोचकर धड़क उठा।

खटाक् की आवाज के साथ 'लिफ्ट' का दरवाजा खुल गया। दूसरे के निकलने से पूर्व ही वह बाहर आ गयी।

कैंटीन में दाखिल होकर उसने खोजपूर्ण दृष्टि पूरे हॉल पर डाली। अभी तक अनुपम आया नहीं था। उसने एक कॉर्नर की टेबुल पसन्द की तथा बैठ गयी।

...अनुपम को उसने उस दिन पहली बार देखा था। इसी कैंटीन में, वह खिड़की के पास वाली टेबुल पर बैठा था। चाय का कप सामने पड़ा था और वह कोई किताब पढ़ने में इतना मशगूल हो गया था कि उसे चाय का भी ध्यान नहीं था।

देखकर उसे हंसी आ गयी थी। सचमुच में 'धुनी' है। उसके बाद दो दिन तक वह कैंटीन में दिखाई ही नहीं पड़ा था। और वह भी उसे भूल गयी। तीसरे दिन वह रमीला के साथ कैंटीन थोड़ा लेट पहुंची थी। दोनों बातें करती हुई उसी कॉर्नर टेबुल पर बैठ गयी। तुरन्त उसकी नजर सामने पड़ी। वही युवक धीरे धीरे नाश्ता करता हुआ किताब भी पढ़ता जा रहा था।

उसने हंसकर रमीला से कहा, 'जरा सामने तो देख ! किताबी कीड़ा ! पहले दिन भी मैंने इसे ऐसे ही देखा था।'

रमीला ने उसके पेट में चिकोटी काटी। फिर हमेशा की तरह आंखें मटकाती हुई शरारत-से बोली, 'क्यों, क्या बात है ? तुझे एकाएक इसकी फिकर कैसे होने लगी ?'

मेरा

'छि !' लीना ने सुनकर सिर झटका। परन्तु अचानक पूरे शरीर मे उसने एक सुरसुरी-सी महसूस की। हमेशा, हर वक्त उसके दिमाग मे सुरेखा ही सुरेखा घूमती रहती थी। अपने विषय मे इस ढग स उसने कभी सोचा ही नही था, न महसूस ही किया था। अनजाने ही रमीला की चुटकी ने उसे खुद के विषय मे एक अजीब ढग से सोचने पर विवश कर दिया था . वह ढग, जो अत्यन्त स्वप्निल था।

वह अकारण ही शरमा गयी। बातो का रुख बदलने के लिए उसने पास से गुजरते हुए 'बैरे' को रोककर नाश्ते का 'आर्डर' दे डाला।

उस दिन के बाद, अपने भीतर जगा दिये गये उस ख़याल के सम्मोहन से वह हर वक्त घिरी रहती।

ऑफिस मे वह स्वय को पूरी तरह काम म डुबो देती, किन्तु जैसे ही लच-टाइम करीब आता, वह झट से फाइलें समेट सुमेटकर एक ओर रख उठ खडी होती। अब वह कैंटीन म दाखिल होने से पूर्व, 'क्लोक रूम' म जाकर एक निगाह खुद के चेहरे पर डालना न भूलती।

कैंटीन मे घुसते ही उसकी दृष्टि सारी टेबुलो पर घूम जाती। अनुपम अगर न दिखाई पडता, तो स्वय स कह उठती—'हू, मुझे उससे क्या ?' किन्तु फिर किसी टेबुल पर जाकर बैठते ही एक अनमनापन स्वय उसके चेहरे को दबोच लेता। कुछ समय बाद जब वह चाय की चुस्कियां ले रही होती और अचानक अनुपम कैंटीन मे दाखिल हो रहा होता, तो बिना फूके चाय का घूट लेने से उसके होठ जल जाते। ऊचा कद, गोरा कसरती बदन, बेफिक्री से उडते हुए बाल सब कुछ अत्यन्त आकर्षक, और लीना का सहेजकर स्थिर किया गया मन फिर अनचीन्ही-अजानी दिशाओ म प्रवाहित होने लगता।

आजकल रमीला एक महीने की छुट्टी पर थी। वह 'हिल स्टेशन' गयी हुई थी। कभी-कभी उसका पास न होना लीना को खल जाता।

रमीला के जाने के दो तीन दिन बाद की घटना है। वह कैंटीन मे अकेली बैठी थी कि—

'मैं अगर यहा बैठ जाऊ, तो आपको कोई ऐतराज तो न होगा ?'

लीना ने ऊपर देखा।

टेबुल पर जरा झुककर अनुपम उससे पूछ रहा था। वह सिर्फ उसे ताकती ही रह गयी, कुछ जवाब न दे सकी। सचमुच क्या अनुपम उससे पूछ रहा था ?

'आपका जवाब न देने का मतलब है, जनाब को कोई ऐतराज नही है ! यही मैं माने ले रहा हू।' कहकर वह कुर्सी खिसकाकर उसके सामने ही बैठ गया। फिर एक उन्मुक्त ठहाका छोडा उसने।

लीना भी हस पडी। लगा, अचानक उसके व्यक्तित्व का अकेलापन चूर-चूर हो गया है। अनुपम की खुली हुई हसी के साथ उसे अपनी हसी भी बहुत प्यारी लगी थी...आसपास बिखरी हुई गहमागहमी, अब उसे जीवन जीता हुआ एक सैलाब महसूस हो रहा था।

'आपको लग रहा होगा, मैं भी कितना अजीब हू। है न ! पर क्या करू। 'लेट' हो जाने से सारी टेबुलें 'हाउस फुल' वाला बोर्ड चिपकाये हैं। हालाकि आपको इस तरह बैठा देख मैं समझ गया था कि आप 'मूड' मे नही है...'

'ठीक ही अनुमान था आपका। मेरे सिर मे काफी दर्द था।'

'दर्द था, अब नही है न।'

वह पुन ठहाका मारकर हस पडा।

उसका जवाब सुन वह भी साथ-साथ हस पडी। लीना का मन इन सब बातो से गुदगुदा उठा था।

'मैंने दो कप चाय का आर्डर दे दिया है। फर्स्ट क्लास चाय...एक 'कप' आपके लिए।'

'मेरे लिए कष्ट...'

'जी, आपके पास बैठने का भाडा तो देना है।'

और फिर दोनो ही हस पडे थे।

अनुपम के साथ लीना का यह प्रथम परिचय था। फिर तो कई बार वह लीना को चाय का आमन्त्रण देता या कभी लीना नाश्ता कर रही होती, तो वह भी उसके साथ बैठकर खाने लगता। अनुपम तरह-तरह की बातें सुनाता, उसे हसाता और जैसे अचानक आता, वैसे ही चला भी जाता।

"नही, हम लोग भी बस अभी-अभी ही आये हैं।' लीना ने उत्तर दिया।

'ओ माय गॉड ! अब तक नही पी ? इसका मतलब है कॉफी का बिल मेरे मत्थे। फस गया भई।'

हाथ की फाइल टेबुल के एक कोने में रख, कुर्सी खीचकर अनुपम बैठ गया।

उस दोपहर अनुपम ने बहुत सारी बातें की थी—चित्रो की नयी प्रदर्शनी के विषय मे, नयी-नयी पढी गयी किताबो के बारे में, राजनीति की चर्चा.. सब कुछ लीना मन्त्रमुग्ध हो सुनती रही। एक सुखद अनुभूति की मधुर पुलकन से उसका रोम-रोम खिल उठा था।

लच का समय जैसे मिनट-भर का ही हुआ हो, ऐसा लगा लीना को। अनुपम से अलग हो वे दोनो अपने ऑफिस मे आयी। लीना अत्यन्त प्रसन्न थी।

बैठते ही उसने टाइपराइटर सभाला। उसकी अगुलिया अक्षरो पर हवा की रफ्तार से दौडने लगी—टक.. टक...टक-टक...एक-एक शब्द एक-दूसरे से जुडते गये।...अब वह स्वय मे कितनी फुर्ती महसूस करती है...वह अकेलापन...नीरसता...सब कुछ पीछे छूट गया था। सहसा अनुपम की भेंट ने उसकी जीवनधारा को नया मोड दे दिया था। उसे लगा, उसके कन्धो का बोझ काफी हल्का हो गया है...किन्तु क्या अनुपम उससे शादी करेगा ?...

यह विचार आते ही उसकी उगलिया टाइपराइटर पर जम-सी गयी। नही...नही ..अनुपम जरूर उसे चाहता होगा। मात्र समय . उसे थोडा समय मिल जाये तो बस।

तभी रमीला आकर उसकी टेबुल के सामने खडी हो गयी। 'क्यो री लीना, अच्छा दगा दिया तूने ? कल रात पार्टी मे क्यो नही आयी ?'

लीना के विचारो का ताता एकाएक टूट गया। रमीला सामने खडी उससे पूछ रही थी। वह अमीर थी। मात्र शौक के लिए नौकरी करती थी। शायद किसी अच्छे युवक की तलाश मे वह अपना समय इस तरह व्यतीत कर रही थी। लीना धीरे-से हस पडी। अच्छा लडका और शादी ! उसे अनुपम याद आ गया। रमीला भले पैसेवाली है किन्तु वह सचमुच भाग्य-

शाली है।

'तू इस तरह झूठ-मूठ हसकर मुझे बेवकूफ नही बना सकती, समझी।' पर्स उगलियो मे घुमाती हुई रमीला ने तनिक रोष-भरे स्वर मे कहा।

किन्तु लीना खुश थी। हसते हुए बोली, 'भई, तुम्हारी तरह हमारा गुजारा कहा?'

'मैं कुछ समझी नही?'

'इसमे कुछ समझने जैसा है भी क्या। कल रात बाबूजी के पेट मे काफी दर्द होने लगा। डॉक्टर को बुलाना पडा। तू जिस वक्त पार्टी मे थक-थकाकर बिस्तर पर पडी होगी, उसी वक्त शायद मैं भी बिस्तर पर लेटी हूगी, सुरेखा का खूबसूरत चेहरा उसकी आखों के आगे उभर आया। उसे किसी तरह हटाकर लीना हसकर झूठ बोल गयी।

लीना के पास इस वक्त काम भी नही था। साहब दोपहर की मीटिंग के बाद ही कागज भेजेंगे, जो उसे टाइप कर तैयार करने होगे। तब तक वह फ्री है। उसने दोनो हाथो की उगलिया एक-दूसरे मे फसा तडाक-से फोड दी, मानो शरीर की टूटन निकाल रही हो। फिर फोन से दो कप कॉफी का आर्डर दे डाला।

रमीला धीरे से बोली—

'लीना, तू सचमुच भाग्यशाली है।'

'हू!'

लीना को सचमुच अचरज हुआ। आज तक उसने अपने विषय मे कभी ऐसा नही सोचा था।

कॉफी आ गयी थी। कॉफी का एक छोटा-सा गरम 'सिप' लेकर रमीला पुन बोली—

'हा, तू भाग्यशाली है। तेरी जिन्दगी में कुछ करने के लिए तो है, आगे बढने का सघर्ष है। लडाई लडकर कुछ पा सकने का गौरव तो है। सच कहू, तो मुझे तेरा जीवन अर्थपूर्ण प्रतीत होता है। सुखी लगता है।'

कॉफी का आखिरी 'सिप' लेकर रमीला ने खाली प्याला टेबुल पर रख दिया। फिर अपना पर्स खोल 'इम्पोर्टेड इन्टीमेट' मे सुगन्धित रूमाल निकाल, हल्के से होठो पर फिराया।

काफी थक गयी है तू।'

खिडकी के पास बैठे हुए साझ के झुटपुटे प्रकाश मे पढ़ते हुए हरिदास का ध्यान उस पर गया। तो वे चिन्ता से बोले।

'ओह, कौन दीदी? अच्छा हुआ आप आ गयी। मैं कब से आपका रास्ता देख रही हू। ये आपके मित्र अनुपम आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आज बहुत देरी कर दी आपने! नाश्ते की प्लेट अनुपम के करीब खिसकाती हुई सुरेखा हसते हुए बोली।

लीना धीरे से कमरे मे दाखिल हुई। पर्स सोफे पर लापरवाही से फेंक वह निढाल-सी सुरेखा की बगल वाली कुर्सी मे ढेर हो गयी।

'आप आप यहा कैसे?'

'वाह रे वाह, तुम तो ऐसे पूछ रही हो जैसे मेरा यहा अचानक टपक पडना तुम्हे अच्छा न लगा हो। मूड एकदम आउट! यह मेरे चले जाने का सिगनल तो नही है न?' और वह हमेशा की तरह ठठाकर हस पडा।

'अरे, नही, भई नही, आप कैसी बातें कर रहे हैं। यह तो इस वजह .. कि दोपहर मे जब आप मिले थे, तब आपने यहा आने का जरा भी जिक्र नही किया था। और घर का पता कैसे मिला..?'

'यह कोई बडी बात नही है। तुम्हे 'सीक्रेट' बता ही दू? तुम्हारे घर के पिछवाडे मेरा एक दोस्त रहता है। ऑफिस से छूटकर मैं उसके यहा गया था। वह अपने पडोसियो की बहुत तारीफ कर रहा था। बातो ही-बातो मे तुम्हारी बात निकल आयी। अब बताओ, तुम्हारा पता ढूढने मे मुश्किल ही क्या थी? हू न शरलक होम्स!'

अनुपम की बातें सुन, हरिदास और सुरेखा दोनो जोरो से खुलकर हस पडे। किन्तु लीना न हस सकी। क्या कहे, क्या न कहे, उसे कुछ नही सूझ रहा था।

'किन्तु आज तुझे इतनी देर कैसे हो गयी, बेटा? आज काम ज्यादा था क्या? ये तो कब के चले जा रहे थे। मैंने आग्रह करके बैठा लिया कि बस लीना आती ही होगी।'

'अरे बाबूजी, आपने क्या बैठा लिया? मैं तो यह चाय-नाश्ता देखकर खुद ही ललचा गया। यह मेरी सबसे बडी कमजोरी है।' अनुपम ने नाश्ते

पर हाथ साफ करना शुरू कर दिया।

अनुपम का उत्साह, सुरेखा का निश्छल हास्य या बाबूजी की स्नेहिल दृष्टि जैसे इन सब के स्पर्श से अछूती वह बोली, 'रमीला को कुछ शॉपिंग करनी थी, इसलिए उसने ऑफिस मे ही गाडी बुला ली थी। ऑफिस स हम सीधे बाहर गये।'

ये बातें लीना अत्यन्त स्वाभाविक स्वर मे, हरिदास की ओर उन्मुख हो बोल रही थी, किन्तु उसका ध्यान इन बातो मे नही था। सुरेखा निष्पलक नेत्रो से अनुपम को निहारे जा रही थी।

एक वक्त था, जब वह सुरेखा की मीठी हसी सुनकर उसका गाल चूम लिया करती थी। सुरेखा को जबरदस्ती आराम करने के लिए कह-कर, सारा काम वह स्वय कर डालती। और आज सुरेखा का वही हास्य ···उसे भीतर ही-भीतर सुलगा रहा था। लीना ने उस ओर से तुरन्त नजर फेर ली।

दोनों खूब तरह-तरह की बातो मे मशगूल हो उठे थे। हस रहे थे। कभी सुरेखा अनुपम की बातो से आश्चर्यचकित हो, आखें कटोरे की तरह फैला देती और कभी हसते हसते पेट पर हाथ रख लेती। लीना को अनुभव हो रहा था, जिन्दगी की लडाई मे वह बुरी तरह जख्मी हो उठी है और सुरेखा उन जख्मो को अपनी उगलियो से नही, सुइयों से कुरेद रही है··· रमीला क्या कहती थी दोपहर मे! और अभी अगर वह यह सब देख ले तो क्या कहेगी?

'अरे सुरेखा, तुम जब इतनी सुन्दर कढाई करती हो, तो इन्हें प्रदर्शनी मे क्यो नही भेजती?'

'मैं!' सुरेखा शरमा गयी थी।

'हा हा, तुम ही। आजकल तो लोग-बाग इसका बिजनेस करते हैं। तुम जो भी प्रदर्शनी मे रखने के लिए भेजोगी न, वह वही से बिक जायेगा। यह टेबुल क्लाथ तो अच्छा है, किन्तु तुम साडिया तैयार करो न! इट विल बी सोल्ड ऐज ए हॉट केक!'

'सचमुच क्या?' उत्तेजना से सुरेखा के गाल लाल-लाल हो उठे थे। उसकी आखें एक अजीब-सी चमक से भर उठी थी।

'अरे, देखना एक दिन तुम इतना कमाओगी कि लीना अपनी नौकरी छोडकर तुम्हारी सेक्रेटरी बन जायेगी। क्यों, लीना? मैं ठीक कह रहा हू न! कैसा आइडिया है?'

'ठीक ही होगा!' लीना के होठ तिरस्कार से तिरछे हो उठे।

'यह बेमन से क्यों बोल रही हो? तुम तो सुरेखा की बडी बहन हो। तुम्हें तो इसे खूब प्रोत्साहित करना चाहिए।' अनुपम कहते हुए अब भी हस रहा था। लीना मन-ही-मन चिढ गयी। अनुपम भी ढकी हुई चिनगारी को फूक मार-मारकर नगा कर रहा था। उसे क्या पता? हुह, सुरेखा की मदद करनी चाहिए! अच्छा हो, वह जल्दी-से-जल्दी चला जाये। उफ्. कल तक लीना इस दिन का इतजार कर रही थी, जिस दिन वह अनुपम को अपने घर पर बुलायेगी। बाबूजी तथा सुरेखा के समक्ष शरमाती हुई कहेगी, 'बाबूजी, यह अनुपम है। हम दोनो एक-दूसरे से शादी करना चाहते हैं...'

...और आज अनुपम स्वय उसके घर आ गया था। उसे लगा था, उसकी ये लच्छेदार बातें, सहज हास्य घर मे सब का हृदय जीत लेंगी, लेकिन यह सब हो रहा था...वह सब का हृदय जीत चुका था. सुरेखा का भी...! वह चाह रही थी अब अनुपम चला जाये। उसे वह सुरेखा के साथ इस तरह बैठा हुआ..! और तभी अनुपम जाने के लिए उठ खडा हुआ।

'ओह, बातो-ही-बातो म कितनी देर हो गयी! आई ऐम सॉरी। आप सब को मैने अच्छा-खासा बोर किया।'

'नही-नही, बडा मजा आया। अब कब आयेंगे आप?' पूछते हुए सुरेखा का स्वर उदास हो उठा था।

'अब मुझे आमन्त्रण देने की जरूरत नही पडेगी। मैं खुद ही आ टपकूगा।' सभी की ओर हसते हुए उसने विदा ली। लीना समझ गयी थी। ये शब्द उसे या बाबूजी को लक्षित कर नही कहे गये थे। अनुपम चला गया था। और सुरेखा पोर्च मे खडी हाथ हिला रही थी।

फिर तो अनुपम की कई शामे उसके घर मे बीतने लगी थीं। हफ्त मे दो या तीन बार वह आ ही जाता था। कभी कभी वह नयी-नयी किताबें

लाता या कभी खिले हुए गुलाब लाकर फ्लावर पॉट में सजा देता।

दोपहर के टीन में बैठी लीना की आँखें अनुपम को खोजती रहती। कभी वह मिलता भी, तो थोड़ी देर बैठने के बाद ऐसे भागता, जैसे बहुत हड़बड़ी में हो।

लीना की यह बेचैनी रमीला से छिपी नहीं थी। एक दिन उसने मज़ाक में कहा भी —

'क्या हुआ, भई ? क्या मियां बीवी में झगड़ा हो गया है ?'

'क्या ?' लीना चौंक पड़ी।

'अगर ऐसा हो गया हो तो मैं काज़ी का काम कर सकती हूं।'

'हम एक थे ही कब, जो झगड़ा करेंगे ? अनुपम मेरे साथ बोले या न बोले, इससे मुझे क्या मतलब ?' वह धीरे से होंठ चबाती हुई बोली।

उसे स्वयं से भय लग रहा था। कहीं वह रो न पड़े!

रमीला ने उसका हाथ अपने हाथ में ले स्नेह से दबा दिया, 'लीना, तू उसे चाहती है यह मैं जानती हूं। प्रणय लिपिहीन है, फिर भी...आँखें उसकी भाषा हैं।'

'ओह, रमीला, मैं क्या करूं ?' लीना की आँखें भर आयीं।

'तेरी जगह अगर मैं होऊं न, तो प्रत्यक्ष प्रेम का निवेदन कर दूं। एक क्षण का संकोच तुझे सारी जिन्दगी सालता रहेगा। फिर अपने आत्मीय से लज्जा कैसी ? प्रेम की यात्रा हमेशा अहंकार के शव पर शुरू होती है।'

'तेरी बात शायद सच है, किन्तु रमीला, प्रेम सत्य की तरह स्वयंभू है। उसके बीज नहीं बोने पड़ते। अंकुर स्वयं प्रस्फुटित हो उठते हैं और इसीलिए शायद मैं अनुपम से स्वयं कुछ भी न कह सकूंगी। शायद कभी नहीं।' लीना थोड़ी अप्रकृतिस्थ हुई। रूमाल से उसने आँखें पोंछ लीं। फिर एक फीकी हंसी हंसकर बोली, तू शायद नहीं जानती, संघर्ष मेरी सांसें बन चुका है। आई ऐम फाइटर, एण्ड फाइटर थ्रू आउट।'

लीना तुरन्त उठ खड़ी हुई। उस दिन उसने ऑफिस से छुट्टी ले ली। किन्तु विचार किसी प्रेत की तरह उसके पीछे लगे हुए थे। वह कहां जाये ? कहीं भी तो छुटकारा नहीं है।

वह समझती थी, उसका प्रेम दिवास्वप्न-सा है...छुई-मुई के पेड़

की तरह, जो स्पर्श मात्र से मुरझा जाता है...।' सुरेखा अनुपम को चाहती थी और अनुपम सुरेखा को। उन दोनो के दरम्यान उसका अस्तित्व महत्व-हीन था। वह परायी थी। ऑफिस से थकी-मादी, लस्त-पस्त जब वह घर पहुचती तो पाती—सुन्दर सजी-सवरी सुरेखा, आरामकुर्सी पर बैठी कढाई कर रही होती या फिर अनुपम की लायी हुई कोई किताब पढ रही होती।

कोई किसी से नही बोलता था। शब्द जैसे एक दूसरे के लिए जम-कर रह गये थे, किन्तु लीना तुरन्त समझ जाती थी, अनुपम शायद अभी इसी वक्त आने वाला है। बाबूजी के साथ वह थोडी इधर-उधर की बातें कर, शिकारी कुत्ते की तरह सूघती-सी रसोई मे पहुचती तो पाती, केसर काफी व्यस्त है। गरम-गरम कोई खास नाश्ता बन रहा है। उसे देख केसर मुसकराती। 'लीना दीदी, आज तो सुरेखा ने कचौरिया बनाने का विशेष आर्डर दिया है। अनुपम भैया कल दोपहर मे ..।' कहती-कहती केसर एकाएक लीना का उतरा चेहरा देखकर सहम उठती।

और वह...भरी-भरी-सी दौडकर अपने बिस्तर पर ढेर हो जाती। यह सब क्या हो रहा है ? मेरे सामने तो सब ठीक है, किन्तु मेरी गैरहाजिरी मे भी ये दोनो ..वह आगे कुछ भी सोच नही पाती। लगता, सारा शरीर एक अजीब अवशता मे सुन्न पडता जा रहा है, अब न वह हिल-डुल सकेगी, न देख-सुन सकेगी। एक असह्य पीडा का ज्वार, जो उसे खीच-खीचकर तट पर पटक देता है —एक जीवित लाश की तरह! कभी-कभी तो उसे महसूस होता कि उसके खिलाफ यह एक षड्यन्त्र है, जिसमे घर का हर सदस्य शामिल हो गया है। एक दिन ऑफिस मे लीना का माथा सख्त दुखने लगा। रमीला को पता चला, तो उसने लीना को जबरदस्ती छुट्टी लिवा कर दोपहर मे ही घर भेज दिया। जब वह घर पहुची, तो देखा—बाबूजी दोपहर की नीद मे पडे हैं। वह कपडे बदलने के लिए अपने कमरे मे गयी। पीछे-पीछे पानी का गिलास लिये केसर आयी।

'लो दीदी, पानी पी लो। फिर माथा भी दबा देती हू। बस, जरा सा फेर-फार हो गयी। आप इधर आयीं और सुरेखा अभी-अभी यहा से निकली।'

लीना कापकर रह गयी।

'सुरेखा नहीं है ? कहां गयी ? कब गयी ?'

'वह तो मुझे नहीं पता दीदी, किन्तु आज वह आपकी नयी केसरी साड़ी पहनकर गयी है। इतनी सुन्दर लग रही थी उस साड़ी में कि क्या बताऊं !'

केसर चली गयी।

लीना अवाक्-सी उठी। उसे स्मरण हो आया।

एक बार अनुपम ने पूछा था—

'लीना, तुम्हें कौन-सा रंग अच्छा लगता है ?'

'मुझे—तो हल्का नीला रंग बहुत पसन्द है।' लीना ने हंसकर कहा था।

'और मुझे कौन-सा रंग पसन्द है जानती हो ? बहुत कम लोगों को यह पसन्द होगा शायद।'

'बिना कहे मुझे कैसे पता चलेगा ?'

'मुझे तो, केसरी रंग बहुत पसन्द है। देखा न ! सुनकर चौंक गयी न ! मैं तो जानता था। ..खुला हुआ केसरी। तुम मानोगी ? कई बार सन्ध्या के समय आकाश केसरी रंग की आभा से जब चित्रित हो उठता है, तो उस शाम मैं ऑफिस से छूटकर सीधे समंदर के किनारे चला जाता हूं। इतना चटख रंग मेरे जैसे धुनी को छोड़ भला किसे अच्छा लगेगा ?'

लीना के कानों में अनुपम की मधुर हंसी गूंजने लगी। और इस बात-चीत के बाद ही जब पहली को उसने 'पे' ली, तो तुरन्त जाकर एक केसरी रंग की साड़ी खरीद लायी। किन्तु उसे पहनने की हिम्मत ही नहीं पड़ी उसकी। उसने वैसी ही 'कबाट' में उठाकर रख दी।

लीना दौड़कर अपने कबाट के पास गयी और जल्दी-से कबाट खोल-कर उसने अपनी सारी साड़ियों की थप्पी पर एक निगाह डाली। फिर यहां-वहां कुछ उठा-हटाकर भी देखा। किन्तु वह साड़ी वहां पर नहीं थी...कितने यत्न से उसने सहेजकर रखी हुई थी।

दोनों हाथों की उंगलियां एक-दूसरे में उलझा अन्यमनस्क-सी लीना पोर्च में आ हरिदास की आरामकुर्सी पर पसर गयी।

रात का अंधेरा फैलने लगा था। किन्तु अभी भी हल्की-सी राख-रंग उजास बाकी थी। लीना की दृष्टि अपने छोटे-से बगीचे पर स्थिर हो

गयी। फूलों की क्यारियां कुछ मुरझायी हुई-सी लग रही थी। क्यारियों में कुछ जगली घास भी उग आयी थी। आस-पास काफी कचरा इकट्ठा हो गया है। कितने दिन बीत गये हैं वह बगीचे की देख-रेख बिलकुल नहीं कर सकी है।

उसने हल्के-से अपनी पलकें मूद ली। यह घर, यह बगीचा, ये लोग—सब कुछ तो उसका अपना है। उसके मजबूत कन्धा ने एक लड़के की तरह इस घर की ढहती हुई दीवारों को कितनी मजबूती से थाम लिया है। किन्तु बदले में उसे क्या मिला? बाबूजी जानते होंगे क्या? उसके अनुपम का सुरेखा चाहती है, उसके साथ घूमती है, उसके साथ सह-जीवन का मधुर स्वप्न देख रही है?

केसर उसे खाना खाने के लिए बुलाने आयी किन्तु 'भूख नहीं है' कहकर उसने उसे वापस भेज दिया। उसकी आखें निरन्तर अंधेरे से जूझ रही थी। सुरेखा तथा अनुपम अब शायद एक-दूसरे के आलिंगन में आबद्ध होंगे। शर्म से झुक आये सुरेखा के चेहरे को धीमे से ऊपर उठा अनुपम पूछेगा, *'मैं तुम्हे प्यार करता हू, सुरेखा। तुम्हारे बिना इस जीवन की अब शायद कल्पना भी नही कर सकूगा। तुम मुझ से शादी करोगी?'* लीना की केसरी साड़ी का पल्ला उगलियों के बीच मरोड़ते हुए लज्जा से अवनत वह नाजुक-सी मीठी हसी हस देगी। अनुपम पुन उसे बाहों में भर हल्के-से उसके गुलाबी होठ चूम लेगा। जो शब्द कभी वह सुनती, वह आज सुरेखा .. *उसने दोनो हथेलियां म अपनी भीगी पलकें भींच ली।*

कपाउन्ड का दरवाजा खुलने की आवाज हुई। हल्की-सी चरमराहट के बाद स्वर शान्त हो गया। लीना चौंक गयी। उसने एक झटके से हथेलियां अपनी आखो पर से हटा ली। उसका शरीर धनुष की डोरी की तरह स्वयमेव खिंच गया। सुरेखा बिना किसी आहट के पोर्च की सीढ़ियां चढ़ रही थी। अचानक उसकी दृष्टि कुर्सी पर बैठी हुई आकृति पर गयी। वह ठिठक गयी। हसकर बोली—

'अरे बाबूजी, आपने बत्ती नही जलायी? अधेरे मे कैसे बैठे हैं?' उसका हाथ बत्ती जलाने के लिए स्विच की ओर बढ़ा।

'रहने दे सुरेखा, बत्ती की जरूरत नही है। अधेरा ही ठीक है।'

आशा के विपरीत लीना का गभीर स्वर सुनकर सुरेखा सहम उठी।

'कौन...कौन दीदी ? आप अधेरे मे कैसे बैठी हैं ?' सुरेखा का स्वर हुक लाइट से भरपूर था।

'तेरा ही रास्ता देख रही थी, सुरेखा !' हमेशा से सुनती आयी दीदी का स्नेहिल स्वर आज अजीब तीखेपन मे उबडा हुआ था। डरकर वह दीवार से चिपक गयी।

'मैं...मैं...यहा ही...!'

'सफाई देने की आवश्यकता नही है, मैं सब जानती हू।'

लीना के रोषपूर्ण व्यग्य से भयभीत सुरेखा वही सीढियो पर अशक्त-सी बैठ गयी।

'मैं भी जानती हू दीदी, कि आपको मेरे तथा अनुपम के विषय मे पता है...मैं आपको पहले ही बताना चाहती थी...'

'क्या ?'

'मैं और अनुपम दोनो शादी करना चाहते हैं।' सीढियो की टाइल्स पर उगलिया फिराती हुई सुरेखा ने धीमी आवाज़ मे कहा।

'किन्तु मैं यह हरगिज नही होने दूगी।' लीना की आवाज मे जैसे ज्वालामुखी फट पडा।

इस अचानक प्रत्याघात से सुरेखा तिलमिला उठी।

'ओ, दीदी...प्लीज दीदी ! आप ऐसा नही करेंगी। अनुपम के बिना मैं जी नही सकूगी। ईश्वर के लिए आप ऐसा निर्णय...'

'किसलिए ऐसा न करू ?' लीना कुर्सी से उठ कर सुरेखा के समीप आकर खडी हो गयी, 'तू खुद ही बता, क्यो न करू मैं ऐसा ? तुझे हसाने के लिए, तुझे खुश रखने के लिए अपने आसुओ को भीतर-ही-भीतर गरल के समान पिया है मैंने। अपनी समस्त इच्छाओ को तेरी एक मुस्कान पर ठोकर मार दी...किन्तु अब? अब मुझसे यह सब नही सहन होगा। अनुपम तुझ से शादी कैसे करेगा, मैं क्या बेवकूफ हू !'

'दीदी !' बातो के इस रुख से सुरेखा अवाक् हो उठी।

'...मुझे लगता है, आज अगर नही बोल सकी, तो फिर कभी जिन्दगी भर नही बोल सकूगी। पागल हो जाऊगी मैं, पागल ! मेरा अरमान था

कि डॉक्टर बनूं। खूब पढ़ूं। मेरी महत्त्वाकांक्षा खुले आसमान में पंख पसार, ऊंचे—बहुत ऊंचे उड़ना चाहती थी, सुख-समृद्धि के स्वर्ग को छूना चाहती थी, भोगना चाहती थी। किन्तु तुम...तुम्हारी वजह से यह कंकरीली-पथरीली जमीन मुझे दे दी गयी है चलने के लिए। मेरे कमजोर कन्धों पर-तुम सब लोगों को बैठा दिया गया है ढोने के लिए। यह मेरी नियति नहीं थी...तेरी देन है सिर्फ तेरी। लेकिन किसलिए ?...'

'...आप क्या सोचती हैं, आपको इस तरह तड़पता देखकर मुझे आनन्द आता था ? आज मुझे भी अपनी बात कह लेने दीजिए। वह जो खुद ही टूटे हुए हाथ-पैरों वाला है, जो खुद ही एक बियावान जंगल में भटक रहा था, वह क्या इतना नासमझ है कि अपने सामने वाले की पीड़ा को भी नहीं समझ सकता, जो अपनी वेदना से स्वयं गल रहा था। कितना मोहताज था वह दूसरों की दया के लिए...'

'इन तर्कों से हकीकत पर पर्दा नहीं पड़ सकता।'

'दीदी !'

'मेहरबानी कर मुझ पर दया मत दर्शाओ। यह भीख मुझसे सहन नहीं हो सकेगी। जो मेरा है वह मुझे मिलना ही चाहिए। और वही मैं चाहती भी हूं। सहन शक्ति की भी सीमा होती है। त्याग, फर्ज, बलिदान...ये शब्द कितने कीमती हैं, कितने महान हैं, किन्तु ये शब्द हर बार किसी की जिन्दगी उससे नहीं छीन सकते, जीना उससे नहीं मांग सकते।'

दीदी का यह रूप उसके लिए नया था। कभी छोटी-सी चीज के लिए भी उन्होंने मना नहीं किया था, न उसे मांगने की जरूरत ही पड़ी थी। अपनी इस विचित्र बीमारी की आड़ में वह शेर के समान सुरक्षित थी। उसे मानो सब खून माफ थे। किन्तु आज उसे अपनी जिन्दगी की सबसे प्रिय वस्तु पाने के लिए इतना संघर्ष करना पड़ रहा है। अब वह स्वस्थ थी और स्थिति की गंभीरता से अनभिज्ञ नहीं थी। जिन्दगी का सबसे नाजुक क्षण उसके समक्ष उपस्थित था और आज अगर वह मजबूती से काम नहीं लेगी, तो उसका सुन्दर सपना...वह अपने आपको कभी माफ नहीं कर सकेगी।

'आप ठीक कह रही हैं। आपकी बात सच है। दलीलो की आड मे सच को छिपाया नही जा सकता, किन्तु उसे अलग स्वरूप मे स्वीकार तो किया जा सकता है। बस दीदी...यह मेरी आखिरी माग है, अनुपम की भीख मुझे दे दो मैं तुम्हारी जिन्दगी मे से हमेशा के लिए चली जाऊगी।'

'कैसी वाहियात बातें करके मुझे फुसला रही है। तू जब इस तरह स मेरी ज़िन्दगी से चली जायेगी, तो शेष क्या रह जायेगा। मात्र सासें लेते रहने से ही ज़िन्दगी थोडे ही कट जाती है। सुरेखा, जीवन जीने के लिए और बहुत-सी चीजो की आवश्यकता होती है। और वे सारी चीजें, सुविधाए मुझसे छीनकर मुझे ज़िन्दगी जीने के लिए कहती है ?'

'तो फिर कहिए, मैं भी क्या करू, क्या करु आखिर ?' सुरेखा रो पडी। शान्त, स्तब्ध रात्रि उसकी हिचकियो से अस्थिर हो उठी जैसे। दोनो हथेलियो के बीच हिचकिया भरती हुई सुरेखा को देखती रही लीना। आज उसने सुरेखा को बिलकुल सामने खडा करके बातें की थी। किन्तु इसके सिवा कोई रास्ता भी नही था। उसके जीवन की बस एक चाह...एकमात्र हरियाली, वीरान होती जा रही थी। और लीना...लीना खामोश बैठी रहे ? अपने अस्तित्व के प्रति भी तो उसका कोई फर्ज है। उसने गलत ही क्या किया था।

लीना ने अत्यन्त तीखे स्वर मे कहा, 'तू क्या करती है, यह मैं क्या जानू ? यह तेरी अपनी समस्या है, तू स्वय सुलझा। मैं तो सिर्फ अपनी बात जानती हू। अनुपम से तेरी शादी हरगिज नही होने दूगी, हरगिज नही।'

लीना के स्वर की उग्रता से सुरेखा काप गयी।

उसने धीरे से अपना सिर उठाया। ड्राइग-रूम से झाकती हुई हलकी प्रकाश की रेखा उसके चेहरे पर पड रही थी। लीना ने देख लिया, सुरेखा के होठ एक अजीब-सी सख्ती मे खिच गये हैं। उसकी आखें काच की गोटियो सी चमक उठी। आसू पोछने की परवाह न करते हुए उसका प्रतिद्वन्द्वी स्वर तीखा हो उठा

'अच्छा ? तो आप क्या करेंगी—-

'मैं क्या करूगी, यह जानना है ?' शब्दो को क्रोध से उगलते हुए

लीना बोली, 'मैं अनुपम से कह दूंगी कि सुरेखा बीमार लडकी है, रोगी है—भयंकर रोगी। उस पर पागलपन के दौरे आते हैं तब यह खूबसूरत सुरेखा एकदम बदल जाती है और तब भूखी शेरनी-सी यह लडकी किसी की पत्नी बनने लायक नही रहती, न किसी बच्चे की मा ही बनने के काबिल।'

एक क्षण के लिए लीना को लगा, उसका छोडा हुआ तीर निशाने पर बैठा है। सुरेखा फक् पड गयी है। सुरेखा ने दोनो हाथों से माथा पकड लिया और क्षीण स्वर मे बोली—

'आप अपनी मर्जी के मुताबिक काम करिए। अनुपम से जो भी कहना चाहें, कह। मेरा प्रणय सीप में बन्द मोती-सा उजला है। वह ओस की बूद नही है, जो क्षणाश मे लुप्त हो जाती है। और मान लो, आप अगर अनुपम को यह सब बता ही दें और वह मुझसे व्याह करने से पीछे हट जाये, तो भी यह तो निश्चित ही है कि वह आपसे शादी कदापि नही करेगा क्योंकि अनुपम मेरा है, और सिर्फ मेरा ही रहेगा। वह मुझे जी-जान से चाहता है मुझे—सुरेखा को, आपको—लीना को नहीं।'

दिग्मूढ-सी खडी लीना की ओर बिना देखे वह झटके-से उठ अपने कमरे की ओर चल दी।

लीना प्रस्तर मूर्ति सी हो उठी। सुरेखा के वाक्यो ने उस बन्दूक की गोली की तरह छलनी कर दिया था। सुरेखा तथा अनुपम एक-दूसरे के थे। एक-दूसरे को चाहते थे। उन दोनो के बीच उसका कोई स्थान नही था। वह नितान्त अकेली थी। एकदम अकेली। असहाय! सुरेखा के समक्ष आसू बहाना निरर्थक है! क्या बाबूजी से कह दे जाकर? रमोला क्या कहती थी—एक क्षण का सकोच तुझे जिन्दगी भर सालेगा! यही वह सही वक्त है। अगर यह मौका वह चूक गयी तो फिर कभी अपनी बात किसी से नही कह सकेगी। इस मौके को मुट्ठी से छोडना नही चाहिए। सुरेखा के अरमानो को रौदकर अनुपम को प्राप्त करना?...नही-नही यह असभव है। लीना का स्वभाव यह नही है। तो क्या यह बात अनुपम से कह दे? और अगर फिर भी वह सुरेखा को छोडने के लिए तैयार न हुआ तो? . उसका तिरस्कार कर या दुत्कार कर निकाल देता? इस

अपमान के साथ वह कैसे जीवित रहेगी ? कैसे मुह दिखाएगी ? . .वह अशक्त सी पोर्च की सीढियो पर ही बैठ गयी । उसकी निगाह आसमान की ओर गयी । उसे महसूस हुआ, वह टूटा हुआ तारा है जो इन चमकते हुए जुगनुओ के बीच से टूटकर धरती के किसी कोने म जले हुए काले पत्थर-सा आ गिरा है, जिसमे अब न चमक है न आब ! ...पोर्च मे, आस पास, बस अधेरा-ही-अधेरा है . और उस अधेरे मे वह.. !

..दिन अपग आदमी की तरह घिसट रह थ ।

उस रात की घटना के पश्चात उसके तथा सुरेखा के बीच उस विषय मे फिर कोई कहा-सुनी नहीं । ऊपर म उन दोनो का बर्ताव पुन स्वाभाविक हो उठा था, किन्तु भीतर खडी हो गयी वे दीवारें अब भी वही-की-वही थी ।

कभी-कभी उसे लगता, यह दभ किसलिए ? किसके लिए ? सब कुछ छोड-छाडकर वह कही भाग जाये, जहा य स्मृतिया न हो और वह इस हारी हुई जिन्दगी का लबादा फेंककर, फिर नये सिरे से सहेजे । किन्तु पुन अनुपम का हसता हुआ चेहरा उसके जहन मे उभर आता । बाबूजी की गमगीनी आखो मे तैर जाती और उसके विचार धराशायी हो जाते ।

लीना ने स्वय हरिदास के समक्ष सुरेखा तथा अनुपम के प्रणय की चर्चा छेडी । बाबूजी ने अपनी सम्मति दे दी । अनुपम तथा सुरेखा के बार-बार मना करने के बावजूद उसने सुरेखा के लिए तमाम सुन्दर-सुन्दर साडिया खरीदी । मा के जो थोडे-बहुत आभूषण थे, उन्हे तुडवाकर नये डिजाइन के बनवा उसने सुरेखा को पहना पहनाकर दगे ।

और एक दिन ..सुरेखा तथा अनुपम का व्याह अत्यन्त सादगी मे सपन्न हो गया । विदाई के वक्त बाबूजी ने सुरेखा के माथे पर आशीर्वाद का हाथ रखा और झटपट अपने कमरे मे चले गय । सुरेखा ने लीना के पैर छुए, फिर गले मिलकर खूब रोयी । सुरेखा का आसुओ से भीगा चेहरा मलिन हो उठा था । लीना की आखो म जैसे गगा-जमुना फूट पडी थी । एक न टूटन वाली अजीब खामोशी ने उसके अन्तर्मन को डस लिया था .. यह अध्याय उसकी जिन्दगी मे अब हमेशा के लिए खत्म हो रहा है !"

सुरेखा अब हमेशा के लिए उसकी जिन्दगी मे दूर हो रही थी। शायद, यही तो उसकी इच्छा थी! लेकिन आज...इस नन्ही-सी गुडिया जैसी सुरेखा ने उसे हिला दिया था। उसे लग रहा था, जिसकी वजह से वह अपने आप मे बडापन महसूस करती रही, जिम्मेदारी की भावना से आक्रान्त रही, वही सुरेखा...उसने सुरेखा को अपनी छाती से चिपका लिया और फफक-फफककर रो पडी।

...धीरे-धीरे सारी चहल-पहल समाप्त हो गयी। मेहमान भी चले गये। मडप की फूल-मालाए मुरझाने लगी। खाली हवनकुड और इधर-उधर बिखरी पडी चीजें...लीना मे जैसे सारी हिम्मत चुक गयी थी। वह पोर्च की सीढियो पर, कुहनियो के सहारे चेहरा टिकाये न जाने क्या सोचती हुई बैठी थी कि एक स्नेहिल स्वर ने उसे चौका दिया।

'लीना!'

उसने घूमकर देखा, रमीला पास खडी थी।

'तू...तू...अभी तक गयी नहीं?

'सॉरी, मैं...'

'नही, मैं अन्दर बाबूजी के पास बैठी थी।' और वह धीरे से उसके करीब बैठ गयी। थोडी देर तक दोनो मे से कोई भी एक-दूसरे से कुछ भी नही बोला। फिर रमीला ने ही मौन तोडा—

'लीना, आज मैं यहां रुक जाती हू? ड्राइवर से घर पर कहलवा देती हूं कि मेरी प्रतीक्षा नही करें।

लीना ने धीरे से सिर उठाया, 'प्लीज रमीला, तू घर जा। ऐसी कोई बात नही है। बडी हिम्मत आ गयी है झेलते-झेलते...और फिर कोई कब तक किसी के आसू पोछेगा! अपना रोना खुद ही...!'

'तेरी फिलासफी से मैं अपरिचित नही हू, रहने दे अपना लेक्चर। और अगर मैं रुक ही गयी तो तुझे क्या परेशानी होगी?' रमीला ने हसने का प्रयत्न करते हुए कहा।

'बहुत परेशानी होगी। तू ऐशोआराम से रहने वाली लडकी तुझे मेरे घर मे नीद कैसे आयेगी! और फिर...तू जो सोचकर रुकने के लिए कह रही है न, वह...मैं बिलकुल स्वस्थ हू।'

'लीना.....'

'रमीला, तू क्यों दुखी होती है ? तू तो जानती है मैं विषकन्या हूं। बूंद-बूंद करके ईश्वर ने मेरे भीतर जहर भरा है, अब कोई भी विष मुझ पर असर नहीं करेगा।'

'लीना ! मैंने एक बार तुझसे कहा था न, तू कितनी महान है, मुझे तुझ पर गर्व होता है। और आज भी है। तेरा धीरज, तेरी हिम्मत...'

'बस-बस, ज्यादा बखान मत कर। मैंने भी तुझसे कहा था न कि मैं भी फाइटर हूं ?' हंसकर लीना उठ खड़ी हुई। फिर तुरन्त गंभीर होकर बोली, 'थैंक यू रमीला, तू घर जा, नहीं तो मम्मी पापा तेरी चिन्ता करेंगे।'

रमीला चली गयी, परन्तु उसका मन उसी तरह अशान्त था, जैसे उबलते हुए तेल में पानी के कुछ छींटे पड़ जाने से तेल में खलबलाहट पैदा हो जाती है। उसे लगा, वह चिल्ला-चिल्लाकर रमीला से कह दे कि घड़ी भर के लिए वह उसका शरीर ले ले, उसका सिसकता हुआ मन जी ले, फिर कहे कि कि...किसकी जिन्दगी महान है ? कौन सुखी है ? कौन सफल है ?

व्हील चेयर के पहियों की आवाज से उसने चौंककर सिर उठाया, तो देखा बाबूजी थे। उसने तुरन्त अपने पर काबू किया। हंसकर बोली—

'सब ठीक-ठाक से निपट गया है, न बाबूजी ! सिर से एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। सुरेखा खूब खुश है, दोनों ही खुश थे। मैं थक गयी थी इसीलिए जरा यहां आकर बैठ गयी। चलिए, अब हम लोग सो जायेंगे। मेरी छुट्टियां अभी काफी बाकी हैं। कल सुबह उठकर सब धरा-उठाई करूंगी तभी हिसाब-किताब बताऊंगी,...'

'लीना !'

हरिदास का गंभीर स्वर सुनकर लीना सकपका उठी। उसे लगा, जिन शब्दों के भुलावे में वह सब दबा-दबा रहने देना चाह रही थी, उन्हें बाबूजी के स्वर ने नंगा कर दिया है।

'क्या है, बाबूजी ?' वह अपने गले का हार उतारने का उपक्रम करने लगी, वह समझ गयी, बाबूजी की दृष्टि उसमें कुछ खोज रही है, कुछ

मेरा

मनरहा था लेना चाह रही है।

'सीता, तू अनुपम को चाहती थी न ?'

सुनकर सीता कांप उठी। वह दृष्टि इतनी तीव्र होगी कि वह इस हद तक उसकी मनोदशा पढ़ लेगी, इसका उसे भान ही नहीं था। भर आयी आंखों को उसने बापूजी के समक्ष उठाया।

'बापूजी, आप क्या कह रहे हैं !'

'बेटी, मैं तुझे जिन्दगी में कुछ दे सकूंगा, अब ऐसा कुछ भी बचा नहीं। मैं सब देख रहा था, समझ रहा था, तूने किस तरह हृदय पर पत्थर रखकर आज यह शुभ कार्य निपटाया है, किस तरह वेदी के होम में तूने स्वयं को तिल-तिल स्वाहा कर दिया। बेटा, मेरी इन बूढ़ी आंखों ने सब कुछ ...सब...' मैं देखता रहा, तू हंस हंसकर काम कर रही थी। सब का स्वागत-सत्कार कर रही थी और मैं...मैं कितना बदनसीब बाप हूं, जो तेरी खुशियां अपनी आंखों के आगे लुटती देखता रहा। वह भी दूसरी बेटी के लिए...' इस सब का जिम्मेदार मैं हूं, सीता ! पर क्या करूं ? किससे कहूं ? तुझे छोड़कर यह वेदना भी मैं किससे व्यक्त कर सकता हूं'

बापू ?'

'हां, सीता ! लक्ष्मी और मैं हमेशा सुरेखा के ही सुख-दुख के विषय में सोचते रहे। हमेशा उसकी ही बातें मानते रहे। आज जब सारी घटनाएं शुरू से याद करता हूं, तो हृदय टूक-टूक हो उठता है। गर्दन शर्म से झुक जाती है। एक बहन के सुख की खातिर दूसरी बहन की चीजें तो दे देना ठीक है, किन्तु उसके अरमान भी हमने छीन लिये !

'यह मेरी भयंकर भूल थी। मैं इस भूल के लिए कभी स्वयं को क्षमा नहीं कर सकूंगा। सुरेखा की बीमारी जब तक बीमारी थी, तब तक तो सब कुछ क्षम्य था, किन्तु वही बीमारी जब उसकी आदत बन गयी, तब उसका पोषण न किया होता, तो उस आघात से ही वह अपनी बीमारी भूल जाती। उसकी बीमारी की कीमत एक जिन्दगी तो नहीं थी।'

सीता का हृदय भर आया। किन्तु अब इन सब बातों का क्या अर्थ ? कदाचित बापूजी अगर यह सब न कहते, तो उसे ज्यादा अच्छा लगता। अपने मन में ही छिपाकर रखते, तो...किन्तु अब तो बात खुल गयी है।

अब दोनों को ही यह घटना रह-रहकर झिझोड़ती रहेगी।

'और बेटा, मेरी कायरता देख। अब जब तू सब कुछ लुटाकर थकी-हारी बैठी है, तब मैं पछता रहा हूं। लेकिन इस पछतावे का क्या सुपरिणाम होगा? कुछ नहीं...शून्य!'

लीना से अब बिलकुल नहीं सुना जा रहा था। वह एकाएक उठ खड़ी हुई।

'चलिए बाबूजी, अब छोड़िए ये सब बातें। यह क्रूर सत्य है, वरण करने के सिवा मुझे छुटकारा भी तो नहीं था। शायद विधि ने मेरा भाग्य ही ऐसा लिखा है।' कड़वी हंसी हंसकर लीना बोली।

हरिदास संतप्त हो उठे—

'विधि का नहीं बेटा यह मेरी भूल की कीमत है, जो तुझे चुकानी पड़ी। विधि का विधान तो शायद मेरे लिए...जीवन भर अपंगता का बोझ अपनी बच्ची के कन्धों पर ढोता रहूं...उसकी कमाई की रोटियां तोड़ता रहूं! सच कहता हूं बेटी, एक को तो उसने उठा लिया, छुटकारा दे दिया, किन्तु मैं...! मुझसे जो अपराध तेरे लिए हो गया है...एक का प्राण हर दूसरे को जीवनदान करने का अधिकार तो स्वयं ईश्वर को भी नहीं है!'

लीना स्तब्ध हो उठी। आज हरिदास कोई और व्यक्ति हों, उसे ऐसा महसूस हो रहा था। जैसे उन्हें उसने प्रथम बार देखा हो, इस तरह से वह अचरज-भरी दृष्टि से उन्हें देखती रही। ओह! इतने वर्षों से बाबूजी ने यह धधकती हुई बेचैनी कहां छिपा रखी थी?...

लीना ने धीरे से हरिदास के कन्धे पर हाथ रख दिया, 'सुनिए बाबू जी, मैं झूठ तो नहीं बोल सकूंगी आपसे ..मैं अनुपम को हृदय से चाहती थी.. किन्तु नहीं, अब ये बातें अर्थहीन हैं। मैं यह सब भूल जाना चाहती हूं। और मेरी इच्छा है इस प्रसंग को आप भी भुला दीजिए। इसी में हम सब का भला है।'

'मेरी एक बात मानेगी तू, लीना?'

'क्या, बाबू जी?'

'तू ब्याह कर ले, किसी अच्छे-से लड़के के साथ। अनुपम तथा सुरेखा को भूल जा।'

मेरा भी

'आप क्या कह रहे हैं, बाबू जी ? चलिए, बहुत देरी हो गयी है...'

'नहीं, लीना, तू मेरी बात मान ले, और शादी कर ले और फिर यहा से चली जा। इस मनहूस घर की परछाईं से दूर।'

'आप अभी अत्यन्त बेचैन हैं, इतनी ठंडी हवा चल रही है, कहीं तबीयत न बिगड जाय।'

'नही लीना, जब तक तू ..'

'अच्छा, सुनिए। मुझे जब भी, जिस किसी से भी ब्याह करना होगा, तब आप से कह दूगी। अब चलिए, चलकर सो जायें। कल बहुत सारे काम करने है।'

उस दिन तो लीना ने बातो को यू ही टाल दिया था, किन्तु उसका पूरा प्रयत्न होता था कि किसी भी तरह, किसी भी रूप मे पिछली बातें अब नही उखडनी चाहिए।

थककर शाम को जब लीना घर लौटती, तो सन्नाटे मे डूबा बगला उसे खाने को दौडता। हरिदास भी पूरे दिन अकेले बैठे-बैठे ऊब जाते थे। *अक्सर वे पोर्च मे कोई किताब पढते हुए लीना की प्रतीक्षा करते रहते।* हाथ-मुह धोकर कपडे बदल लीना भी उनके समीप ही आकर बैठ जाती। पेसर क्यारियो में पानी डालती रहती थी। बीच-बीच में वह कभी सब्जी के बढते हुए भाव के विषय में चर्चा करती या पडोसी के कुत्ते के बारे मे या मोगरे मे आज कितनी नयी कलिया आयी हैं। हरिदास शान्त-भाव से पेपर पढते रहते और पढने के बाद उसे तहा कर तिपाई पर रख देते।

घर की एकरसता से त्रस्त लीना को ऑफिस की गहमा-गहमी भी भाती नही थी। टाइपराइटर की टक्-टक्, पखे की फरफराहट, लोगो का हसी-मजाक, लीना इस सबके बीच भी अपने को अकेला पाती। कभी-कभी तो वह किसी की छोटी-सी बात पर बेमतलब हस देती, या शून्य मन से सामने वाले की बात इस तरह से सुनती, जैसे बहुत रसपूर्वक सुन रही हो, हालाकि उसी समय अगर उससे कोई उसी विषय म कुछ पूछ बैठे, तो वह बता भी नही पायेगी। *उसे लगता वह एक कुशल अभिनेत्री बन गयी है।* चेहरे पर जब जैसा चाहे मुखौटा चढा सकती है।

दोपहर लच के समय रमीला अक्सर मजे मे उसे टोकती—

'तू आजकल खूब प्रसन्न दिखती है, लीना ?'

'जिन्दा रहने की कोशिश कर रहे हैं साहब ! पर मेरी बात छोड, जो गयी सो बीत गयी। तेरी उमर भी तो अच्छी-खासी हो गयी है, तू शादी क्यो नही करती ?'

सुनकर रमीला हस पडी, 'किससे करू ? अपने मन का कोई दिखता ही नहीं।'

दोनो ही हस पडी। रमीला ने कैंटीन का बिल चुकाया। दोनो कैंटीन से बाहर निकली। 'कॉर्नर' पर आकर रमीला एकाएक खडी हो गयी। रमीला की आखो मे कुछ ऐसा था, लीना एकदम गभीर हो गयी। रमीला ने धीमे से कहा—

'लीना, तू शादी क्यों नही कर रही है ?'

'प्लीज रमीला, तू बाबूजी की तरह मुझे उपदेश मत दे। अब मैं काफी सभल गयी हू। तू क्या समझती है कि मैं जिन्दगी-भर यू ही रोती रहूगी। किन्तु क्या जिन्दगी मे खुशिया पाने के लिए शादी करना जरूरी है ?... उसके बाद भी अतीन हसने न देगा तो ? . अब जिन्दगी म अपने मुताबिक जीना चाहती हू और उसी मे मुझे सुख भी मिलता है।'

'किन्तु लीना, तू अकेली . '

'देख, अगर मुझे शादी करनी होगी, तो तेरे आसपास जो आधे दर्जन मजनू चक्कर काटते रहते हैं न, उनमे से एक को मेरी ओर खिसका देना।'

रमीला समझ गयी। लीना अपनी कमजोरी अपनी पीड़ा अब व्यक्त नहीं करना चाहती। उलटा वह हसकर यह बताना चाहती है कि वह सब कुछ भूल चुकी है लेकिन यह हसी...मजाक. सब कितने भीग हुए है, कितने भुलावे है, जो वह दूसरा को देती है...

अनुपम तथा सुरेखा अकसर शाम को मिलने आ जाते थे। इतने वर्षो से अकेले रहते आये अनुपम के लिए कुटुम्ब के नाम पर बस यही परिवार था। केसर अच्छा अच्छा खाना बनाती। सब लोग रात मे एक साथ बैठकर खाना खाते। फिर पोर्च मे बैठकर देर तक गप्प मारते रहते। हमेशा की तरह बातचीत मे मैदान अनुपम का होता था। कभी राजनीति की बातें करते-करते बीच मे गृह-सज्जा के गुर बताने लगता, फिर बीच म टी

किसी बात से बात निकाल वह मनोविज्ञान पर अच्छा-खासा लेक्चर दे डालता। और इस सब के बाद अचानक वह गभीर हो लीना से पूछता, 'आजकल सब्जी का क्या भाव चल रहा है?' सुनकर सब हस पडते। और लीना अपने आपको हल्का महसूस करती।

किन्तु कभी उसे लगता, हरिदास उसे अपलक नज़रो से देखते रहते है। और उन नजरो के नीचे वह एक बेचैन छटपटाहट से तडप उठती। पर ऐसे असावधान क्षण यदा-कदा ही आते थे और लीना को उद्वेलित कर चले जाते।

छुट्टी की एक दोपहर को लीना धुले बाल पीठ पर खोले कवाट में कपडे सहेज रही थी, इस्त्री वाली साडिया एक-एक कर हैंगर पर टाग रही थी, तभी सुरेखा उसके पास आयी। आज उसे अकेला आया देख लीना को आश्चर्य हुआ। अक्सर वे दोनो साथ-साथ ही आते थे।

'क्यो री, अकेली ही आयी है क्या?'

'हा, दीदी, आज उन्होंने देर तक सोने का कार्यक्रम बनाया है। मु ऊबन हो रही थी। सोचा, अकेले ही चली जाती हू।'

सुरेखा इधर-उधर की सामान्य बातें करती रही और उसके हाथ कपडो को रखते-रखाते रहे। वह अपने नये पडोसियो की बातें, अनुपम के मित्रो की बातें, घर मे क्या कुछ वे नया लाने का इरादा कर रहे हैं, वह सब बताती रही और वह मजे ले-ले सुनती रही। लीना को यह सब काफी दिलचस्प लग रहा था।

एकाएक सुरेखा कुछ कहते कहते अचकचा गई, 'दीदी, आपसे मैं कुछ...एक बात कहना चाहती थी।'

लीना हस पडी उसकी अचकचाहट देखकर। 'मैं समझ गयी हू। बोल, क्या बात है? दूल्हे मिया के साथ कुछ रूठा-रूठी हो गयी है या खाना-पीना भाता नहीं है?'

'ओ दीदी, आप मुझे ..मतलब कि. '

'हू!'

'मै, मतलब...मैं प्रेगनेन्ट हू। मुझे तीसरा महीना चालू है।'

लीना को लगा, उसका दिल उछलकर बाहर गिर पडेगा। 'क्या

सचमुच सुरेखा मा बनने वाली है ?'

'सुरेखा ! ...सुरेखा ! ...क्या सचमुच ?'

सुरेखा खिलखिलाकर हस पडी। 'आप भी कमाल की हैं दीदी, झूठ-मूठ किसलिए बोलूगी ?'

'नहीं, वह बात नही है। किन्तु तुझे ठीक से पता है न ! डॉक्टर ने क्या कहा ?' आवेश मे सुरेखा का हाथ उसने अपनी दोना हथेलियो के बीच बुरी तरह दबा दिया।

'ओ मा ! दीदी, जरा धीरे से। अभी अपनी सीधी डाक्टर के पास से यहा चली आ रही हू। डॉक्टर ने ही मुझे बताया कि तीन महीने...!'

लीना खुशी से विभोर हो उठी। इतनी बडी खुशी वह झेल सकेगी ? क्या सचमुच उसका यह सूना घर किसी की निर्दोष किलकारियो से गूज उठेगा ? इतने वर्षों की मनहूसियत किसी की ठुनक-भरे रुदन से महक-महक उठेगी ?

लीना का बचपन जैसे लौट आया। वह खुशी से तालिया पीटती हुई उछल पडी—'सुरेखा, जरा सोच तो, इस घर म, कपाउन्ड मे, इन क्यारिया मे वह अपने नन्हे-नन्हे पैरो से भागमभाग किया करेगा। अरे बाप रे ! मेहनत से सवारे हुए इस छोटे बगीचे का सत्यानाश कर देगा। हा, केसर को कहकर रखना पडेगा कि दरवाजो का खास खयाल रखे। बाकी काम-धाम चाहे हो या न हो, कही खुले रहें और वे जनाब बैया-बैया खिसककर बाहर पहुच गए, तो बस मुसीबत हो जायेगी और बाबूजी हमारी जान ही ले लेंगे।'

'दीदी, एक मिनट के लिए अपनी इस कल्पना की रानी को जरा रोको तो...'

'रानी ? कैसी रानी ? अरे, राजा आयेगा राजा। और सुन, ये सब फूलदार पॉट अब किसी ऊची जगह रख देन पडेंगे, नीचे कोई चीज पडी नहीं रहनी चाहिए। हा, सुन ! आज से अनुपम को कह देना कि सिगरेट पीना छोड दे। उनके यहा-वहा सिगरेट के जले टुकडे फेंक देने से नहीं चलेगा, और सिगार का यह धुआ...बाप रे, इसका भी कोई इन्तजाम करना होगा, नहीं तो...'

सुरेखा ने उठकर लीना के मुह पर हाथ रख दिया।

'लीना दीदी, जरा सब्र कीजिए। सब्र कीजिए। आप तो पागल हो ही गयी हैं, हम सब को पागल कर देंगी।'

'तू जानती है, सुरेखा ? मैं उसका नाम क्या रखूगी ? अपूर्व—अनुपम तथा अपूर्व !' कहकर लीना पल-भर के लिए मौन हो गयी। फिर पुन कुछ सोचती हुई धीमे से बोली

'एक बात कहू, सुरेखा ? आज तक मैंने अपनी जिन्दगी मे कभी किसी से कुछ मागा नही। आज तुझसे कुछ मागना चाहती हू !'

'क्या, दीदी ?' कहिए न !'

'अपूर्व मुझे दे दे, सुरेखा ! उसे मैं अपना बेटा समझूगी। उसे अपने हृदय से चिपकाकर रखूगी।'

सुरेखा ने धीरे से लीना का चेहरा उठाया। उसका चेहरा आसुओ से भीगा हुआ था।

'अपूर्व आप ही का है, दीदी !' और दोनो बहनें एक-दूसरे से लिपट-कर रो पडी।

लीना का मन एक अजीब उत्साह से भर गया था। उसकी नीरस जिन्दगी मे जैसे सहसा किसी ने प्राण फूक दिये थे। मुरझाये हुए पौधा मे फिर से नयी कोपलो ने जन्म लिया था।

उसका हर क्षण जैसे खुशी से छलकता रहता। धीमे स्वर मे न जाने कौन-से भूले-बिसरे गीत गुनगुनाती रहती। घर मे भी खूब मस्ती करती रहती। केसर मे कहकर मनपसन्द खाना बनवाती, बापूजी के साथ घटो बैठी हस हसकर बतियाती रहती। ऑफिस मे भी वह अकारण हस पडती।

एक बार तो रमीला ने उसे टोक ही दिया—

'अरी लीना, तू तो इतनी ज्यादा खुश है, जैसे मा तू ही बनने वाली है। धरती से दो-चार फुट ऊचे चलने लगी है।'

'*हा, इसमे क्या शक है। मा तो मैं ही हूगी। अपूर्व मेरा ही बेटा* होगा। समझी ?' लीना गर्व से फूलकर कुप्पा हो उठती।

घर मे भी बस उसे अपूर्व-ही-अपूर्व याद रहता। बाबूजी से वह कहती, 'बाबूजी, आपको आखिरी बार चेता रही हू, अपने कागजो का यह पुलिन्दा उठाकर कही ऊपर रख दीजिए। बाद मे न कहिएगा, यह फट गया, वह नही मिल रहा है। चाहिए तो मैं आपके लिए एक छोटी-सी 'शेल्फ' बनवा देती हू। और केसर, तू अपनी आदत नही सुधारेगी शायद ? जगह-जगह फ्लावर पॉट ? एक भी टूटा न, तो तुझे समझ लूगी।'

केसर मजाक करती—

'अभी पहले उसे आने तो दीजिये, सब हो जायेगा ठीक-ठाक आप तो बस !'...

सुनकर लीना खीज उठती।

'तुम लोगो के स्वभाव मे आलस भर गया है, अभी से ध्यान न रखू, तो कभी सुधरोगे नही।'

और केसर साडी का आचल मुह मे ठूस हसी रोकती हुई भाग जाती।

कुछ भी काम न होता, तो भी लीना को फुरसत नही रहती। उसका मन न जाने किन-किन विचारो मे उलझा रहता।

ऑफिस से छूटते ही वह तुरन्त घर की ओर भागती। हरिदास पोर्च मे बैठे हुए उसकी प्रतीक्षा करते होते। बिना कपडे-लत्ते बदले ही वह पर्स समेत उनके करीब डट जाती। फिर थोडी बहुत ऑफिस की बात, आज के विशेष समाचारो की चर्चा और बात घूम-फिरकर अपूर्व पर आ जाती— उसका पालना किस कमरे मे रखा जायेगा। उसके नीचे वह डनलप की मुलायम छोटी-सी गद्दी डलवायेगी। अपूर्व के लिए विशेष रूप से बनवाया गया छोटा-सा सम्राट किस जगह रखना ठीक होगा ? सुरेखा की दवाइया उस ऊची गोल टेबुल पर ही रखनी होगी, बडी भी है। अपूर्व के ड्रम्स, पाउडर, फीडिंग बाटल्स वगैरह भी उस पर आ जायेंगी। और वह उन्मादिनी की भांति बोलती ही जाती।

कई बार केसर थाली परसकर उसे खाने के लिए बुलाती, तब कही जाकर वह हाथ-मुह धोने के लिए उठती। हरिदास अत्यन्त दिलचस्पी से उसकी बातें सुनते रहते। भीतर-ही-भीतर सुलगता हुआ उनका हृदय उनकी

मेरा भी

बातें सुन राहत-सी महसूस करता । एक तो अपनी अपंगता का दु:ख, ऊपर से लीना के व्यथित हृदय के रुदन से वे अनभिज्ञ नहीं थे । कई बार परोक्ष-अपरोक्ष रूप में वे लीना को समझाने की चेष्टा करते, अपने न रहने के बाद की स्थिति की चर्चा करते···किन्तु लीना थी कि सारी बातों को हवा में उड़ा देती । उन्हें लगता—लीना शादी कर ले, अपना खुद का घर बसाये, तभी उन्हें सन्तोष मिल सकेगा और वे शान्ति से मर भी सकेंगे । वे कहते—

लीना, तू मेरे लिए शादी कर ले बेटी, नहीं तो मैं शान्ति से...।'

लीना जोरों से हँस पड़ती 'किन्तु बाबूजी, मैं तो आपकी वजह से ही शादी नहीं करती, कहीं आपके जमाई साहब आपको ही सहन नहीं कर पायें तो ? और फिर आपके साथ न रहने दें तो ? मैं किसके भरोसे आपको छोड़ूँगी ? नहीं, बाबा, नहीं ।'

हरिदास पैंतरा बदलते, 'तू मेरे न रहने के बाद की स्थिति का विचार कर ! देख, लक्ष्मी को कुछ था क्या ? कैसे अचानक हम लोगों को अकेला छोड़कर चली गयी । फिर मेरा क्या भरोसा ? तू कितनी अकेली रह जायेगी ।'

'वाह, बाबूजी ! सुरेखा और अनुपम नहीं हैं क्या ? और फिर मेरा अपूर्व मेरे साथ होगा, भूल गये क्या आप ?'

.. और हरिदास एक लम्बा निःश्वास छोड़कर चुप हो जाते ।

दिन सारी व्यस्तताओं में कब निकल जाता, पता ही नहीं चलता । रात को पलंग पर सोयी हुई लीना की जब कभी आँख खुल जाती, तो उसे महसूस होता, जैसे पुरानी लीना सहसा रात के सन्नाटे में जग उठी है । और ..चेष्टा कर-करके दबा दिये गये विचार हठात् उभर आये हैं । उसे घबराहट होने लगती । लगता, जैसे बलपूर्वक कोई उसकी छाती पर चढ़ बैठा है और धीमे-धीमे स्वर में कानों में फुसफुसा रहा है . लीना, यह सब आडम्बर तू क्यों ओढ़े रखती है ? सुरेखा के होने वाले बच्चे अपूर्व को तू चाहती है यह तेरा भ्रम है और वह कभी तेरा अपना बेटा बन सकेगा क्या ? तेरे अनुपम को तुझसे जबरदस्ती छीनकर सुरेखा ने अपना सुन्दर घर-संसार बनाया है । अनुपम को तू अब भी चाहती है । तू उसे बिलकुल नहीं भूली

है। तेरा हृदय अब भी उसे देखकर छटपटा उठता है। सिर्फ एक आवरण तू ओढ लेती है अपने ऊपर। भुलावे का आवरण ! अगर सुरेखा बीच मे न आयी होती, तो वह सचमुच तेरा होता। यह तेरा घर-बार होता और यह अपूर्व तेरा अपना गर्भ होता—तेरी अपनी कोख से जन्मा बेटा।

.. विचार ..जैसे मगरमच्छ की तरह जबडा खोले उसे निगलने के लिए आगे बढते। वह छूटने का प्रयत्न करती, छटपटाती, किन्तु उसके नुकीले दात लीना का शरीर छेद डालते, रक्त की धार फूट निकलती। लीना बेचैन हो पलग पर से उठ बैठती। फिर न जाने कितनी रात उस खिडकी के सीखचों के सहारे कटती। और अधेरे मे तैरते हुए ये शब्द उसके कानो को छेदते रहते—यह तेरा बच्चा नही बन सकता...अनुपम तेरा पति नही है...अब तू अकेली है, एकदम अकेली...

किन्तु दूसरे दिन लीना दुगुने उत्साह से जीने लगती। रात के अन्धकार मे जो विचार उसे सहसा दबोच लेते, वे दिन के प्रकाश मे न जाने कहा लुप्त हो जाते, और फिर से उसका हृदय प्रथम वर्षा की बौछार से भीगी हुई माटी-सा महक उठता।

सुरेखा के दिन निकट आ गये थे। सुरेखा तथा अनुपम, दोनो अब यही रहने लगे थे।

लीना के दिन जैसे छोटे हो गये थे। उसे बिलकुल फुरसत नही मिलती थी। सुबह सुरेखा को दूध, विटामिन, दस बजे के करीब नाश्ता तथा दोपहर मे उसके खाने की व्यवस्था करके वह जल्दी-जल्दी ऑफिस के लिए तैयार होती। निकलते समय अनुपम कहता

'लीना, तुम भूल कर रही हो। सुरेखा के बदले ये सब विटामिन आदि तुम्हे लेने चाहिए। तुम इतनी भाग दौड जो करती रहती हो।'

'भाग दौड कैसी ? और मैं तो बिलकुल ठीक हू।'

हरिदास भी अनुपम की हा-मे-हा मिलाते—'ठीक तो कहता है यह। तुम दूध के साथ 'बी-कॉम्पलेक्स' की गोलिया स्वय भी ले लिया करो।'

'प्लीज बाबूजी, बन्द करिए यह अपना कथा-पुराण। नही तो ऑफिस जाने के बदले मुझे यही बैठकर ओम हरि, ओम हरि, कहना पडेगा।'

और लीना उतावली से भागती। यदा-कदा अनुपम भी उसके साथ

ऑफिस के लिए निकल पड़ता। किन्तु उसका ऑफिस लीना के ऑफिस से अलग दिशा में था, अत वह दूसरी बस पकड़ता था। लीना को लगता—ठीक ही है, अनुपम का रास्ता उसके रास्ते से अलग है।

...किन्तु एक साथ, एक ही घर में रहना फिर अनुपम से कितनी दूर भागा जा सकता है ? लीना जब शाम को घर पहुंचती, तो पाती, अनुपम ऑफिस से पहले ही आ चुका है। अनुपम के सान्निध्य में लीना को आत्मिक शान्ति मिलती। उसकी खूबसूरत बातों में वह उलझ जाती और उसे लगता, उसके पास अनुपम की बातें सुनने के सिवा, कहने के लिए कुछ भी नहीं है शायद।

जब कभी लीना को रात के वे भयावह विचार याद आ जाते, तो वह स्वयं से ही भयभीत हो उठती। कई बार वे लोग पोर्च में बैठकर बातें कर रहे होते थे और सहसा वह कोई बहाना बना उठकर अपने कमरे में चली जाती। कभी ताश खेलते हुए भूले से अनुपम का हाथ उसके हाथ से छू जाता, तो वह स्पर्श उसे झनझनाकर रख देता। हृदय एक अवर्णनीय पुलकन से भर उठता। वह अपने मन को स्थिर करने की चेष्टा करती। न जाने कौन-सा असावधान क्षण उसकी अभिव्यक्ति बन जाये और जो वह अपने आप में ही रखना चाहती है, वह अनुपम पर न स्पष्ट हो सके।

अनुपम घर में ही रहता था। उसका उठना, बैठना, खाना-पीना, हंसना-बोलना—सब कुछ उसके एकदम निकट होता और यह सब अपने करीब महसूस कर उसका खून तेजी से दौड़ने लगता। कभी-कभी वह स्वयं पर ही झुंझला उठती। अनुपम को उसने स्वयं अपनी छोटी बहन का पति स्वीकार किया, अपने हाथों से उसका व्याह किया है, फिर उसके प्रति इस तरह की भावना कितनी लज्जास्पद है। वह उसके लिए छोटे भाई की तरह है—जैसी सुरेखा, वैसा वह ! ...पाप पुण्य और क्या है ? सामाजिक मर्यादा...नैतिक मूल्य ..रीति-रिवाज . यह सब मनुष्य के द्वारा बनाये गये अपनी कमजोरियों को मर्यादित करने के नियम हैं और उनसे हटकर तो आदमी गिर जाता है ! नहीं. .नहीं ! वह चीख उठती। पाप-पुण्य अपनी सुविधाओं के अनुरूप लोग बांट लेते हैं। उन्हें जो चाहिए, उसे वे पा ही लेते हैं। उसे पा लेने का अधिकार उन्हें है। सफल जीवन जीने के

लिए त्याग नाम की कायरता नहीं, पा लेने का संघर्ष पहली शर्त है।

लीना को लगता, वह धनुष की प्रत्यंचा की तरह खिंचती, सामान्य होती रहती है। उसका मन बस अदृश्य हाथों से जैसे खिंचता ही चला जाता। घबराकर वह सुरेखा के कमरे में चली जाती। बढ़े हुए पेट वाली सुरेखा फीका चेहरा लिये, पड़े-पड़े कोई किताब पढ़ रही होती या बच्चे का खूबसूरत स्वेटर बुन रही होती। लीना उसके समीप बैठ जाती तथा धीमे स्वर में रेडियो ऑन कर देती। फिर या तो वह अपूर्व की बातें शुरू कर देती या फिर सुरेखा की पढ़ी हुई कहानी पर चर्चा करने लगती। शनैः-शनैः लगता, वह शान्त हो उठी है।

सूखे हुए पत्तों की तरह दिन झड़ते रहे।

एक दिन अनुपम ने ही उसकी इस व्यस्तता से चिढ़कर कहा, 'देखो लीना, अब तुम ऑफिस से छुट्टी ले लो। दिन-भर की तुम्हारी इस भागम-भाग में दिल घबराता है। नहीं मानोगी, तो मैं स्वयं जाकर तुम्हारे नाम का त्यागपत्र दे आऊंगा। समझी!'

'वाह भई! ऐसा कहो न, इस पार्ट-टाइम काम करने वाली से काम नहीं चलेगा, फुल टाइम वाली चाहिए आपको!'

'तुम मजाक समझ रही हो, सच कह रहा हूं मैं।' वह और चिढ़कर बोलता।

किन्तु लीना ने छुट्टी ले ही डाली। अनुपम ने भी कुछ दिनों के लिए छुट्टी ले ली थी। कोई खास बाहर नहीं आता-जाता था। हर किसी को आगत की उत्सुकता थी। पता नहीं किस वक्त क्या आवश्यकता पड़ जाय।

...और वह दिन आ गया, जिसकी प्रतीक्षा लीना अत्यन्त उत्सुकता-पूर्वक कर रही थी। एक आधी रात को अनुपम ने उसे आकर जगाया। लीना ने तो बस तूफान मचा दिया। अनुपम टैक्सी लेने दौड़ा। हरिदास भी उठ गये, किन्तु उन्हें तो घर पर ही रहना था। लीना ने पहले ही से साथ ले जाने वाली जरूरत की चीजों का बैग तैयार कर रखा था। वह उसे लेकर बेचैनी से पोर्च में टैक्सी का इन्तजार करने लगी। अनुपम तुरन्त गाड़ी लेकर आ गया। दोनों ने मिलकर सुरेखा को टैक्सी में बैठाया। फिर लीना ने दौड़कर बाबूजी को सान्त्वना दी 'बिलकुल घबराइयेगा नहीं आप।

मैं तथा अनुपम वही रहेगे। शुभ समाचार मिलते ही आपको जल्दी से खबर करेंगे, अच्छा!' और फिर बिजली की फुर्ती से वह भी टैक्सी मे बैठ गयी।

उस पूरी रात, सुरेखा प्रसव पीडा मे तडपती रही। लीना उसके करीब खडी सात्वना देती रही, फिर कुछ समय के लिए कमरे से बाहर आ चहल कदमी करते हुए अनुपम स उसके विषय मे बतियाने लगती। ढाढस बधाती।

और ऐसे ही एक क्षण मे नर्स कमरे स बाहर आयी।

आपके यहा लडका हुआ है! . .'

नर्स की बात पूरी होने से पहले ही वह खुशी स उछल पडी, 'देखा न! मेरा अपूर्व ही आया।' लीना की आखें सहसा छलक आयी।

अनुपम अवाक् हो लीना का चहरा देखने लगा। नर्स हसती हसती चली गयी। और अनुपम ने पाया लीना भी जोरो से हस पडी. .अश्रु भीगी हसी!

'क्यो महाशय, चुप कैसे हो गये? रोज ताने तुक्के दे-देकर मेरा दिमाग खा लते थे न! अब कहो, आ गया न तुम्हारा शाहजादा, मेरा अपूर्व। अरे! चलो, अन्दर चलें। मैं तो यहीं खडी-खडी लेक्चर भाड रही हू।'

लीना सुरेखा के कमरे मे आयी। अत्यन्त निर्जीव-सा चेहरा, बन्द पलकें, प्रसव के बाद की थकान से अशक्त सुरेखा निढाल सी बिस्तर पर पडी थी। उसके 'बेड' से लगे झूले म रुई के गोले-सा मुलायम, गुलाबी रगत का छोटा-सा बच्चा, नन्ही नन्ही पलकें मूदे सो रहा था।

सुरेखा के माथे पर ममता से हाथ फिरा लीना पालने के पास दौड गयी। सुरेखा की तरह ही अण्डाकार चेहरा, पतले गुलाबी होंठ, अनुपम की तरह काले बाल। लीना को लगा, खुशी से उसका हृदय छलक पडेगा।

'ओ मिया, बीवी के हाल-चाल बाद म पूछना, पहले इस गुलाबी गुट्टरगू को तो देख लो। पर एक बात सुन लीजिये, अपने मैले हाथा स इसे छुइयेगा नही, बस दूर से ही देख लीजिए। हा!' लीना ने मजाक भरे स्वर मे अनुपम की खिचाई की।

और लीना की वह बात सच भी थी।

हॉस्पिटल स घर आ जाने के पश्चात् सुरेखा को अपूर्व के विषय मे

कोई चिन्ता करनी नहीं पडती थी। अपूर्व के आ जाने से उसकी जिन्दगी मे नयी जान आ गयी थी, नया उत्साह भर गया था और वह हवा की तरह सारे घर मे डोलती फिरती।

अपूर्व के लिए आया रखने की अनुपम की इच्छा को उसने मना कर दिया।

'जहा तक मुझसे हो सकेगा, मैं अपूर्व को दूसरो के हाथ मे नही सौपूगी। जब मुझे इसकी आवश्यकता महसूस होगी, मैं आपसे कह दूगी। बस!'

सुरेखा कहती—

'दीदी, आप अगर मुझे इस तरह परवश कर देंगी, तो घर जाकर मैं इसे कैसे सभालूगी? मेरे से तो अकेले यह सब होगा भी नही। और यह मेरे पास रहेगा भी नही।'

'अरे, नही होगा, तो मैं तो हू न! इसे मैं यहीं रखूगी। मैंने तुझसे कहा था न? मेरी वह बात तुझे याद है न, सुरेखा?...'

सुरेखा सिर हिलाकर हंस पडती, 'अपूर्व आपका ही है! यह मेरा बेटा है, यह तो मुझे बिलकुल महसूस ही नही होता।'

अपूर्व लीना का मन-प्राण था। दिन-रात जप की तरह उसके होठों से बस अपूर्व की ही रट निकलती। उसके लिए कपडे लाने है, विटामिन्स खतम हो रहे हैं, मालिश का तेल लाना है—सारी बातो का ध्यान रखना ही जैसे उसका ध्येय बन गया था। लीना न जाने कहा-कहा से ढूढ-ढूंढकर बच्चो की किताबें लाती। डॉक्टरो से सलाह लेती। अपूर्व कब तक खेला, कितने बजे सोया, कब उसे 'ड्राप्स' देने हैं—सब चीजो की उसे चिन्ता रहती थी।

हरिदास कभी उसकी चुटकी लेते—

'लीना, तू पागल तो अवश्य हो जायेगी एक दिन, लेकिन उससे पहले जो बिस्तर से लग जायगी, तो कौन देख-भाल करेगा तेरी?'

सुनकर लीना मुह बिगाडती, 'बाबूजी, आप चुप रहिए, आपको बच्चा पालने के विषय मे कुछ भी तो मालूम है नही। सब कुछ नियम से करना पडता है, चाहे जितनी भाग-दौड हो। यह तो एक सुकोमल फूल है। इसका

ही नहीं लगाया है, हर चीज स्वच्छतापूर्वक ढकी-मुदी रखी हुई थी।

एकाएक घर म शान्ति छा गयी। अपूर्व की रोने की आवाज एकदम बन्द हो गयी। लीना को महसूस हुआ जैसे वह किसी वीरान खडहर मे नितान्त अकेली खडी है और इस भयानक खामोशी का भय उसे अभी-अभी निगल जायेगा। दबे पैरों से वह सुरेखा के शयनकक्ष की ओर बढी। दरवाजा अधखुला पडा था। चादर, तकिये, गद्दे—सब के सब एक-दूसरे पर फिके पडे थे और पलग के पायों के करीब औंधे मुह सुरेखा पडी हुई थी। आस-पास खून की बूदें तथा टूटे काच के टुकडे भी उसे दिखाई दिये। लीना अत्यन्त घबरा उठी।

इतने मे सुरेखा के मुह से एक दर्द-भरी चीख निकली। लीना तुरन्त उसके करीब दौडी गयी। किसी तरह उठाकर उसने सुरेखा को पलग पर लिटाया। एक पलग पर तो गद्दा ही नही और एक पर चादर आधी लटकी पडी थी। उसी को किसी प्रकार उसके नीचे से खीचकर उसने सुरेखा को उढा दिया। फिर रसोई मे जाकर मटके से ठडा पानी ले आयी तथा उसमे अपना रूमाल भिगोकर धीरे-धीरे उसके चेहरे पर से खून के धब्बे पोछे। फिर माथे पर ठडे पानी की पट्टिया रखी। सुरेखा की बेहोशी ही बता रही थी कि 'अटैक' काफी गहरा हुआ। इतने अरसे के बाद सहसा... उफ, अपूर्व के साथ क्या किया होगा इसने ?...इसे जरा-सा होश आये, तो पूछू—लीना ने सोचा।

पुन उसके माथे पर ठडे पानी की पट्टी रखकर उसने हल्के से सुरेखा का कन्धा हिलाया और पूछा—

'सुरेखा, सुरेखा.. देख, मैं हू। तेरी दीदी सुरेखा . अपूर्व कहा है ?...

थोडी देर बाद सुरेखा ने धीमे से सिर हिलाया। पलकें खोलने की चेष्टा की, फिर बुदबुदाहट-भरे स्वर मे बोली—'लीना...लीना... अपूर्व...'

'हा-हा, कहा है ?' लीना अधीर हो उठी।

'पिछवाडे।' धीरे से हाथ उठाकर उसने पिछले बरामदे की ओर सकेत किया और पुन उसका हाथ नीचे गिर गया।

बिना कुछ बोले लीना पिछवाडे वाले बरामदे की ओर दौडी। ड्राइंग-

रूम से एक दरवाजा पिछवाडे की ओर खुलता था, वह बन्द था। उसने झटपट दरवाजा खोला, तो पाया—बराण्डे की सीढियो पर बैठा-बैठा अपूर्व रोते-रोते थक्कर झोके ले रहा था। उसके गालो पर आसू चिपक गये थे। बाल बुरी तरह बिखरे थे।

लीना ने तुरन्त उसे उठाकर अपनी छाती से चिपका लिया। उसकी आखें खुशी से छलक उठी। ईश्वर जिसका रखवाला है, उसका कोई क्या बिगाड सकता है।

अपूर्व को गोद म लिये हुए वह सुरेखा के शयन-कक्ष मे आयी, तब तक सुरेखा बिस्तर पर अधलेटी-सी पडी थी। पूरे कमरे को आखें फाड-फाड-कर घूरे जा रही थी। अपूर्व को देखते ही वह रो पडी।

'ईश्वर का लाख-लाख शुक्र है कि अनुपम बच गया, दीदी।'

लीना अपूर्व को लिये हुए ही पलग के पायताने बैठ गयी। अपूर्व अभी भी भयभीत-सा उससे चिपका बैठा रहा।

'मुझे यह क्या हो गया है, दीदी...? मैं मर क्यो नही जाती? मुझे किसलिए ईश्वर ने ज़िन्दा रखा है?'

'शान्त रह, सुरेखा, शान्त हो। मुझे खुद को समझ मे नही आ रहा है कि इतने लम्बे अरसे बाद ऐसा कैसे हो गया? कल रात ही तो हम दोनो ने बैठकर खाना खाया था और आज एकाएक...'

'मुझे स्वय समझ मे नही आ रहा, दीदी। मुझे लगने लगा था कि अब शायद मेरी जिन्दगी पर लगा यह ग्रहण छूट चुका है। अब मैं मुक्त हो गयी हू लेकिन...' उसने दोनो हथेलियो से अपनी आखें मीच ली, जैसे उनमे दर्द हो रहा हो...

'अनुपम तो दोपहर मे ही खाना खाकर चले गये थे। घर मे तो सिर्फ मैं और अपूर्व ही थे। और शाम को तो आपके साथ घूमने जाने की बात थी न! खाना जल्दी-जल्दी पकाकर रख दिया, ताकि देरी से लौटने पर कोई दिक्कत न हो। फिर अपूर्व को तैयार करने लगी किन्तु यह न जाने किस चीज़ को लेकर रोने लगा। मैंने इसे प्यार से पुचकारा, बिस्कुट दिया, पर इसने ऐसी हठ पकडी कि किसी तरह माना ही नही। और...और दीदी, मेरा सिर अचानक भन्नाने लगा। हाथ-पैरो मे अजीब-सी खिचक

सथा मरोड़-सी महसूस होने लगी। मैं डर गयी। लगा, अभी ही शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा। पता नहीं कैसे, उस स्थिति में भी मुझे ध्यान आ गया कि अब क्या होगा। अपूर्व अभी भी सामने खड़ा रोता चला जा रहा था। मैंने अपने पर काबू पाने का काफी प्रयत्न किया। उसे घसीटकर खड़ा करने की कोशिश की किन्तु वह था कि बिलकुल आपे से बाहर। हाथ से छूटकर नीचे गिर गया। और पैर पटक-पटककर जोर-जोर से चीखने लगा। मेरा खून खौल उठा। लगा, यह सब मुझसे सहन नहीं होगा। और मैं बिलकुल पागल सी हो उठी।

लीना अपूर्व को कन्धों से चिपकाये उसे धीरे-धीरे थपकती जा रही थी तथा सुरेखा की बातें भी सुनती जा रही थी। अपूर्व सो गया था शायद।

'ओह! इस समय वह बात याद आती है तो हृदय काँप उठता है। मुझे एकदम लगने लगा था, यह आवाज मैं सहन नहीं कर सकूँगी। अपूर्व का गला जब तक नहीं दबा दूँगी तब तक शान्ति नहीं मिलेगी। मैं विक्षिप्त-सी उसके पीछे दौड़ी। अपूर्व जरूर भयभीत हो उठा होगा, वह पिछवाड़े के बराण्डे की ओर भागा। मैं उसके पीछे पकड़ने के लिए भागी, किन्तु ईश्वर की कृपा! मैं तिपाई से टकराकर गिर पड़ी। तिपाई का काँच टूट गया। और मुझे कई जगह चुभ भी गया। बस, फिर याद नहीं। शायद मैं अपूर्व को भूल गयी होऊँगी और मेरी खीज तिपाई पर, फिर इन सब बिखरे सामानों पर उतरी होगी। कुछ याद नहीं।'

सारा घटित बताते-बताते सुरेखा ने थककर आँखें मूँद लीं। लीना ने अपूर्व को पुनः स्नेह से थपथपाते हुए उठने की चेष्टा की कि अचानक सुरेखा ने उसकी बाँह पकड़ ली। लीना गिरते-गिरते बची। कौन जाने क्यों, इतने वर्षों के बीच उसे प्रथम बार सुरेखा से भय लगा।

'अपूर्व को ले जाइए, मेहरबानी कर ले जाइए, दीदी। क्या पता मैं राक्षसी कब क्या कर बैठूँ! मुझे भी यहाँ से दूर . बहुत दूर ले जाइए, जहाँ अनुपम मुझे खोज न सके। उसकी नफरत-भरी दृष्टि मैं सहन नहीं कर सकूँगी। दीदी...'

सुरेखा दोनों हाथों से अपने घुटनों को पीटती चीखने लगी।

'मुझे सारे-के सारे अकेला छोड दो। भाग जाओ यहा से नहीं तो मैं किसी को मुह नही दिखाऊगी...मैं आत्महत्या कर लूगी। आत्महत्या!' वह फिर बेहोश सी-पलग पर लुढक गयी। लीना तुरन्त उठकर उसके कमरे स बाहर निकल आयी। अपूर्व की नन्ही नन्ही बाहे उसकी गर्दन को घेरे थी। सुरेखा का यह उन्मादकारी रूप उसके लिए अनजाना-सा था। पहले जब उस पर इस तरह के दौरो का हमला होता था, तो वह एक-डेढ घटे के बाद निढाल-सी सो जाती थी। दो-तीन दिन लग जाते थे उसका स्वास्थ्य सुधरने मे और वह पहले की तरह ही प्रफुल्ल, खुश मिजाज बन जाती थी। किन्तु आज ..आज वह रह-रहकर...

'अगर मैंन आत्महत्या नही कि तो खून करूगी, हा!' अन्दर के कमरे मे अभी भी सुरेखा का प्रलाप स्पष्ट रूप से सुनाई पड रहा था। किन्तु कुछ समय बाद वह भी शान्त हो गया।

अपूर्व गहरी नीद मे सो गया था। लीना ने उसे ड्राइग-रूम के सोफे पर एक तकिये की आड लगा धीरे से सुला दिया। उसकी नजर पूरे कमरे मे घूम गयी। असभव, आज यह सब व्यवस्थित नही हो सकता। उसमे शक्ति भी नही है। खूब फुलाया गया बडा-सा फुग्गा जैसे एक छोटे-से छेद की वजह से फूट जाता है उसी प्रकार सुरेखा का यह खूबसूरत घर-ससार, उसकी सहेजी हुई जिन्दगी ..सब जैसे छिन्न-भिन्न हो उठा था। कुरूप... अर्थहीन...!

अनुपम! टुकडो-टुकडो मे भोगी हुई इतने वर्षों की वेदना, सुरेखा की यह जानलेवा बीमारी, बाबूजी की उदास-गमगीन जिन्दगी, यह सब किस तरह से स्पष्ट कर सकेगी अनुपम के समक्ष? क्या शब्द इस चौडी खाई को भर सकेंगे? वह तो हर तरह की कोशिश करेगी, किन्तु क्या अनुपम उनकी मजबूरियो को समझ सकेगा?

एक नि श्वास छोडकर लीना बैठी रही। जिन्दगी कितनी बडी भूल-भुलैया खेल रही है उसके साथ। लगता है जहा से वह चली थी, फिर वही पहुच गयी है। सुरेखा की इस बीमारी ने सब कुछ तहस-नहस कर दिया है...

लीना आखें मीचे बस सोचती ही जा रही

अनुपम

की आवाज ने उसे चौंका दिया।

'अरे, वाह! लगता है आप लोग काफी जल्दी आ गये हैं।'

लीना ने कोई जवाब नही दिया। अचानक अनुपम की निगाह अस्त-व्यस्त कमरे की ओर गयी। वह स्तब्ध हो उठा। लीना नीची दृष्टि किये हुए भी जैसे उसके चेहरे के बदलते हुए भावो को पढ सकती थी।

'लीना! यह सब क्या है? घर मे चोर-बोर तो नही घुस आया था? अपूर्व तो इतनी फेंका-फेंकी कतई नही कर सकता। सुरेखा कहा है? दिखाई क्यो नही पडती?'

लीना उठकर धीरे से उसके समीप खडी हो गयी।

'अनुपम, जरा बाहर आओ। हम लोग यहा सीढिया पर बैठते हैं। मुझे तुमसे कुछ कहना है। और इसके लिए आवश्यक है कि तुम अपना दिल-दिमाग थोडा शान्त रखो।'

लीना का गभीर स्वर सुनकर अनुपम एकाएक हस पडा।

'कमाल करती हैं आप भी। ऐसे कह रही हैं जैसे किसी उपन्यास का कोई 'राज' भरा अन्तिम परिच्छेद सुना रही हो। माई गॉड! मुझे तो तुम सीधे-सीधे बता दो यह सब क्या माजरा है। क्यो हुआ यह सब? सुरेखा कहा है?'

'आप ही बोलते रहेगे या मुझे भी बोलने देंगे?'

'किन्तु तुम बता ही कहा रही हो, बस भूमिका बाध रही हो तब से।'

'प्लीज अनुपम!'

लीना का उदास चेहरा देखकर अनुपम चुप हो गया। लीना उसे खीचकर पोर्च की सीढियो के पास ले आयी और दोनो वही बैठ गये।

वह अनुपम को क्या कहे? कहा से शुरू करे? सजय की तरह अगर अनुपम के दिव्य चक्षु होते, तो हमारी जिन्दगी मे चल रहे सतत तुमुल युद्ध को वह देख तो सकता! कोई बात इतनी नाजुक होती है कि उसे शब्दो से स्पर्श करते भी भय लगता है। वह कही टूट न जाये, कही गलत-सलत ढग से व्यक्त न हो। अर्थ वह न निकले, जो उनका भोगा हुआ कटु यथार्थ है! खैर, बताना तो होगा ही। जीवन की इस अग्नि-परीक्षा मे पैर रखे बिना भी उपाय नही है।

'बात...बात ऐसी है, अनुपम...'

'हा,-हा, तुम कुछ कहो तो। मैं सुनने की समस्त उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहा हू।' अनुपम के स्वर मे एक चिढ़ स्पष्ट हो रही थी।

'आपकी अधीरता का अदाज है मुझे, किन्तु एक प्रार्थना है, सुनकर उत्तेजित मत होना, गलत मत लेना।' लीना का स्वर कुछ भर्रा उठा था।

'हा, भई हा, मैं बिलकुल शात बैठा हू। मेरी समझ मे कुछ नही आ रहा है। घर की इस अस्त-व्यस्तता से तुम्हारी बातो का क्या सम्बन्ध है?'

'अनुपम...अनुपम...सुरेखा को एक बीमारी है।'

'क्या?' अनुपम चौक गया। उसकी हसती हुई आखें एकाएक गभीर बन गयी। हसकर लीना बोली—

'मैंने आपसे पहले ही कहा था न कि आपको अत्यन्त धीरज से काम लेना होगा। यह बात काफी वर्ष पूर्व की है। जिन्दगी कली के रूप मे अभी प्रस्फुटित हो रही थी कि तभी सुरेखा को इस बीमारी ने अपने शिकजो मे दबोच लिया। कभी-कभी इस रोग का दौरा पडने पर वह बेहोश हो जाती तो कभी वह विक्षिप्त-सी पूरे घर का सामान इधर-उधर पटकना शुरू कर देती, तोड-फोड डालती। फिर उसके बाद पूरे दिन तक अशक्त-सी पडी रहती। हमने कई बडे-बडे डॉक्टरो को दिखाया, मानसिक चिकित्सक को भी दिखाया।'

'लीना, तुम यह सब क्या कह रही हो? मुझे कुछ भी समझ मे नही आ रहा है। यह कोई परी-कथा तो नही है?' अनुपम आश्चर्यचकित हो बोला।

खेद-पूर्ण स्वर मे लीना बोली—

'नही अनुपम, यह परीकथा नहीं है। कदाचित ऐसा होता तो अच्छा था।'

'जिस मानसिक चिकित्सक के पास हम गये थे, उन्होंने कहा था कि सुरेखा की हर इच्छा का ध्यान रखने से उसके मन को किसी प्रकार की ठेस नही लगेगी और सुरेखा भी धीरे-धीरे अन्य सामान्य युवतियो की तरह बन जायेगी। और हम लोगो ने डॉक्टर की उस सलाह का अक्षरश पालन किया। किन्तु इस नतीजे से शायद डॉक्टर भी अनभिज्ञ थे कि एक रोग के

खत्म होते ही दूसरा जन्म ले लेगा।

'सुरेखा युवा होती गयी। अब उसे इस बीमारी का दौरा यदा-कदा ही पड़ता था, किन्तु जब भी पड़ता तो वह एकदम बदल जाती। वह इतनी विक्षिप्त हो जाती कि उसे अच्छे-बुरे, बन-बिगड़े, किसी चीज का भी ध्यान नहीं रहता था।'

'किन्तु...यह बीमारी है क्या ?' अनुपम के लिए यह अनबूझ पहेली-सा हो रहा था।

'अंग्रेजी में इस तरह की बीमारी को 'सिझोफेनिया' कहते हैं। बहुत प्रयत्न किये। बाबूजी ने इलाज में कुछ भी नहीं उठा रखा। किन्तु यह भी सच है कि इस बीमारी का कोई ऐसा उपाय नहीं है, जो इसे जड़ से खत्म कर सके।'

'किन्तु विवाह की इतनी बड़ी अवधि के बाद भी मैंने कभी उसे छोटे-मोटे रूप में भी बीमार नहीं देखा। और ..और ऐसा भी हो सकता है क्या ?' अनुपम का विस्मय जरा भी कम नहीं हुआ था।

'आपकी बात सच है। पिछले कई सालों से सुरेखा बिलकुल स्वस्थ रही है और सहसा इतने समय की सुख-शान्ति के पश्चात अगर ऐसी बीमारी से इत्तफाक होता है, तो शायद किसी को विश्वास नहीं हो सकेगा।'

'तो फिर चलो, चलकर सुरेखा को देखें। डॉक्टर...कौन से डॉक्टर को बुलाना होगा ?' अनुपम उठकर खड़ा हो गया।

बिना किसी प्रतिक्रिया के लीना बैठी रही। 'नहीं-नहीं, अनुपम, सुरेखा को अभी भी कुछ देर तक ऐसे ही पड़ा रहने दो। वह स्वयं ही स्वस्थ हो जायगी।' कहकर लीना चुप हो गयी। अनुपम भी मौन ही रहा।

लीना ने कुछ समय पश्चात एक नज़र घर पर डाली। फिर धीमे स्वर में बोली—

'सचमुच ! भगवान को धन्यवाद दो कि आज अपूर्व बच गया, नहीं तो मैं आज आपको मुंह दिखाने लायक नहीं रहती। वह...वह आज जरूर अपूर्व के प्राण ले लेती।'

'मतलब ?'

'हां, ठीक कह रही हूं। जब सुरेखा होश में नहीं होती, तो वह कुछ भी

कर सकती है, कोई भी एक विचार उस समय उसके दिमाग में सर्वोपरि होता है और वह उसे अमल में लाती ही है। अपूर्व खूब रो रहा था, शायद किसी बात पर जिद कर रहा था। सुरेखा को लगा, यह आवाज बन्द होनी ही चाहिए, चाहे उस अपूर्व का गला ही क्यों न दबाना पड़े...किन्तु अपूर्व शायद भयभीत हो भागकर पिछवाड़े वाले बराण्डे में चला गया और बच गया।'

अनुपम घुटनों के बीच सिर रखे अवाक् बैठा रहा।

साँझ पूरी ढल गयी थी। वातावरण मौन था। एक ऐसी वीरानियत छायी हुई थी कि जैसे वर्षों से यहा कोई रहता ही न रहा हो। अचानक अनुपम ने मौन तोड़ा—

'मुझे सुरेखा से मिलना है।' लीना का मन हो रहा था, वह कह दे—'रहने दो अनुपम, अपनी खूबसूरत पत्नी को तुम इस विक्षिप्तावस्था में देख नही सकोगे शायद।' किन्तु वह कुछ भी नहीं बोल सकी। जख्म खुला हुआ था, खून बह रहा था, मरहम-पट्टी करनी ही होगी। वह उठ खड़ी हुई। सुरेखा के कमरे की ओर बढ़ी। दरवाजे का पल्ला पकड़कर वह थोड़ी देर ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गयी। उजाड़-खडहर जैसी शान्ति थी। कांपते हाथों से दरवाजे का दूसरा पल्ला खोलकर वह बाजू में पड़े एक स्टूल पर बैठ गयी। किन्तु अनुपम वहीं का वहीं जड़वत् हो गया।

...वह फटी हुई आंखों से सुरेखा को देख रहा था। शान्त, नाजुक, प्यारी-सी सुरेखा उसे याद आ गयी और यह सुरेखा...कितना भयानक हो उठा था उसका चेहरा। अनुपम एकाएक भयभीत हो उठा।

...अचानक सुरेखा के मुंह से एक दर्द-भरी चीख निकल पड़ी—

'इसे जल्दी यहा से ले जाओ। मुझे अनुपम का मुंह भी नहीं देखना है गला दबा दूंगी। गला...'

लीना और अनुपम तुरन्त कमरे से बाहर निकल आये। दरवाजा बन्द कर दिया। लीना पुनः आकर सीढ़ियों पर बैठ गई। अनुपम भी पैंट की जेब में दोनों हाथ घुसेड़े न जाने किस सोच में डूबा उसकी बगल में आकर बैठ गया।

लीना ने धीरे से अनुपम के कन्धे पर अपना [illegible] दिया :

'तुम अब क्या करना चाहते हो ?'

थोडी देर तक वह अनुपम के कुछ बोलने की प्रतीक्षा करती रही, फिर स्वय बोली—

'तो अब तुम क्या करना चाहते हो, अनुपम ?'

वह अनुपम को देख रही थी। उसे लगा, यह शान्ति, यह मौन कितना वाचाल है। उसे खुद पर आश्चर्य हुआ, कि इतनी हिम्मत उसमे कहा से पैदा हो गयी है कि यह सब कितनी *स्पष्टता से वह व्यक्त कर* सकी। शायद जिन्दगी ने उसे समझा दिया था . उस हार ने उसे ताकत दी थी, जो उसने सदा अपने हिस्से मे झेली है। उसने सब कुछ बता दिया है। खेल खत्म हो गया था। अब नतीजे की प्रतीक्षा थी।

अनुपम ने धीमे से अपना सिर ऊपर उठाया, 'मैं क्या करना चाहता हू ?' उसका स्वर अस्फुट-सा था। अचानक उसके चेहरे की वह प्रफुल्लता, *आवाज म वह गर्मजोशी—सब कुछ बर्फ-सा जम गया था।*

'मुझे क्या करना चाहिए ! शायद मैं स्वय उससे अनभिज्ञ हू। या क्या कहना चाहिए तुमसे, यह भी नही समझ पा रहा हू।'

'मै तो आपसे बस इतना ही कहना चाहती हू। आप अपने निर्णय के स्वय मुख्तियार हैं। जो भी आपको ठीक लगे, कह सकते है। बस आपसे एक ही बात की प्रार्थना करती हू कि आप हम लोगो को गलत न समझें...आप को भुलावे मे रखने वाली भावना इसके पीछे बिलकुल नही थी।'

तो फिर क्यो मुझसे ये सारी बातें छिपायी गयी ? इसकी बीमारी, इसका भोगना, वह सब अपनी जगह पर ठीक है किन्तु तुममे स किसी ने इस बाबत जरा-सी भनक भी न लगने दी मुझे।' अनुपम का स्वर उत्तेजित था।

'अनुपम प्लीज, आप मुझे समझने की कोशिश कीजिए। बाबूजी अपने मुह से तो यह सब बताने से रहे। उनके जीवन का यह *ऐसा* दुखद प्रसग है, जिसने उनसे उनकी जबान ही छीन ली है। घर में दो-दो ब्याहने लायक लडकिया...नही-नही, अनुपम, आप उनकी हताशा...उनकी व्यथा, मुझसे मत कहलवाओ।'

'और सुरेखा ?' अनुपम ने कहीं और ताकते हुए पूछा। उसका चेहरा, मन इस अप्रत्याशित आघात से टुकडे-टुकडे हो उठा था। शुष्क, निचुडा-सा।

लीना का हृदय विचलित हो उठा। उसे महसूस हुआ, वह अनुपम के करीब होते हुए भी कितनी दूर है, कितनी दूर !

'ओह, अनुपम ! तुम एक बार कल्पना करके तो देखो। सुरेखा तुम्हें चाहती थी। अपनी बीमारी मे त्रस्त, थकी-हारी, ऊबी हुई सुरेखा के लिए सहसा नयी जिन्दगी के द्वार खुल रहे थे। जहा अधेरा ही-अधेरा था, वहा एक हल्की-सी प्रकाश की किरण उभर रही थी, जो उसकी अपनी जिन्दगी की एकमात्र रोशनी थी। सहसा पायी हुई खुशी...और ऐसे समय वह अपने दुर्भाग्य की बात आपको कैसे बताती ?'

'क्यो, क्या सुरेखा को यह भय था कि उसके दुर्भाग्य की यह बात सुनकर मैं उससे शादी करने से इन्कार कर दूगा ?' अनुपम के स्वर मे अजीब-सा कपन था। उसने अपना चेहरा उठाकर लीना की ओर प्रश्न भरी दृष्टि फेंकी। लीना उसके मन मे चल रहे मथन से अपरिचित नही थी। शायद अनुपम की जिन्दगी मे यह पहला हादसा हो, जिसने उसे विषाद की कालिमा से बुरी तरह ढक लिया है, विचलित कर दिया है। वह और बाबूजी तो इन सारी प्रक्रिया से अच्छी तरह गुजर चुके हैं, अत अनुपम की स्थिति से वह वाकिफ है, समझ सकती है।

अनुपम की बात सुन वह भीगे स्वर मे बोली—

'नही, यह बात नही है कि सुरेखा को आपके ऊपर भरोसा नही था। शायद भरोसा उसे अपनी किस्मत पर नही था। वह क्या करती ? कैसे कहती ? आप स्त्री के हृदय से कदाचित परिचित नहीं हैं। अपने सर्वस्व को खो देने का भय ..'

एक म्लान हसी हस दिया अनुपम। लीना का घुमडता हुआ मन, बूद-बूद बनकर आखो से बह चला। दूसरो के समक्ष रो पडने मे उसे हमेशा शर्म लगती थी, किन्तु आज उसे इसका भान ही नही था।

'तुम स्त्री हृदय की बात करती हो ? किन्तु तुम लोग पुरुष को समझने का दावा कैसे करती हो ? आज मेरी जगह अगर तुम होती तो

शायद समझ सकती कि मुझे कितना गहरा आघात लगा है। प्रेम के सिवा भी तो मान-अपमान, श्रद्धा, सम्बन्धों जैसी चीज़ भी तो दुनिया में होती है। उसका रत्तीमात्र आभास भी है तुम्हें ? मैं सुरेखा की जिन्दगी का एक-मात्र सहारा नहीं, आधार नहीं, किन्तु इस बात को जरा अलग रखकर सोचो। शादी के समय या शादी से पहले अगर तुम लोगों ने इन सब बातों का जिक्र किया होता, तो उसी समय मेरे प्रेम की कसौटी हो गयी होती। अगर मैं सुरेखा को सच्चे मन से प्यार करता होता तो मैं उन सारी बातों के बावजूद उससे शादी करता। और अगर नहीं, तो उसी समय मेरे कदम उसके विश्वास को तोड़ पीछे हट जाते। अब इन सारी जिम्मेदारियों को सिर्फ ढोने जाने की बात भी हो सकती है।...'

अनुपम कहते-कहते उत्तेजित हो उठा था। लीना समझ गयी थी उसके पुरुषत्व को चोट लगी थी। उसके विश्वास को धक्का लगा था। उसके स्वाभिमान को तुच्छ समझा गया था। जिस प्रेम को वह अपना गौरव समझ रहा था, उसी ने उसे धोखा दिया था। शायद सुरेखा को अपने प्रेम पर विश्वास नहीं था या वही अनुपम के प्रेम पर शंका थी। प्रेम में किसी भी दुराव-छिपाव के लिए कोई जगह नहीं होती, लेकिन अनुपम के साथ वही किया गया था। जीवन की शुरुआत में ही उसे छला गया था। सच ही है, सुरेखा ने कितनी बड़ी भूल की है ! अब अनुपम क्या करेगा ? अब शायद वह सुरेखा को...

'अनुपम !' लीना का गला रुंध गया था। भय, आशंका से वह विह्वल-सी हो उठी थी।

'सच कहता हू, लीना, इतने वर्षों पुरानी यह बात सुरेखा ने अगर मुझे बताने की हिम्मत न की, तो क्या कोई भी नहीं बता सकता था ? किसी ने इसे मुझे बताना मुनासिब नहीं समझा ?'

'मैं क्या करू, अनुपम ? मैं तुम्हें बता सकू, इस स्थिति में ही नहीं थी। मुझसे, नहीं, नहीं...मुझे तुम सब कुछ बताने के लिए यू मजबूर न करो। मैं कैसे तुम्हें समझाऊ ?'

और दोनों हाथों में मुह छिपा लीना फफक-फफककर रो पड़ी। काफी देर तक वह हिचकियां ले-लेकर रोती रही—हे प्रभो ! कैसी विचित्र

स्थिति मे तुमने मुझे लाकर खडा कर दिया है।' जो बात उसने अनुपम से हमेशा छिपाकर रखी, उसी को आज अनुपम के समक्ष खुद ही उधेडना पडेगा ? खुद ही बताना पडेगा ? सुख पर तो कभी कोई अधिकार उसका रहा ही नही है, किन्तु दुख पर भी ..

'मैं कुछ समझा नही, लीना ! प्लीज, तुम इस तरह रोओ मत, कुछ कहो तो आखिर।' लीना को इस कदर रोते देखकर वह विचलित हो उठा था।

'नही अनुपम, जिस बात को मैंने सबसे छिपाकर अपने अन्तर की गुहा मे कैद कर रखा है, उसे ही खोलकर रख दू ?...अकेले ही भोगते रहने का भी तो एक सुख है !'

'नही लीना, आज मुझसे सब कुछ कह दो, मैं सब कुछ जान लेना चाहता हू।'

लीना के आसू थम गये थे। एक उबाल के बाद की शान्ति उसके चेहरे पर उभर आयी थी—

'सत्य हमेशा मीठा नही होता, अनुपम। कभी-कभी सत्य को छिपाकर रखने मे ही सब की भलाई होती है। सुरेखा तथा मैं साथ-साथ खेले, बडे हुए। किन्तु सच तो यह है कि हम दोनो म कभी सगी बहन की तरह प्रेम रहा ही नही। हो सकता है मेरी बात तुम्हे उचित न लगे, स्वार्थपूर्ण महसूस हो। किन्तु क्या यह सच नही है, सुख पर सब का ही हक होता है। लोग कहते, मैं महान हू। किन्तु किसी ने भी तो नही पूछा कि लीना, इस महानता को ढोते ढोते कही तेरे कन्धे तो नही दुखने लगे ? मेरी भी इच्छा थी, एक सामान्य स्त्री की तरह जिऊ। त्याग, भोग, फर्ज...इन शब्दो का भारी बोझ मुझ पर रख दिया गया। और मैं दबती चली गयी...दबती.. किन्तु अनुपम, सच मानो, इस सबको मैंने अपना भाग्य समझकर नही कर्तव्य समझकर स्वीकार कर लिया। जिन्दगी मे सब को सब कुछ इच्छित प्राप्त नही होता।

'और...और तुम ऐसे समय मेरी जिन्दगी मे आये, हृदय आम के प्रथम बौर की तरह सुगन्धित हो उठा। नही...नही अनुपम, आज मैं तुमसे कुछ नही छिपाऊगी। तुमने मेरे अन्तर-पट से सकोच का पर्दा हटा दिया

अब मैं जो हू , जो थी, उसे बताने मे, दिखाने मे मुझे कोई लज्जा नही है।

'मैं तुमसे मिलती थी, बातें करती, देखती थी और मेरा मन एक अनजानी खुशी मे मुग्ध हो उठता। लगता था, जो दिन बीत गये हैं, वे कितने बुझे-बुझे-से थे, अब जो कुछ तुम्हारे सामीप्य मे व्यतीत हो रहा है, वह ही मेरी सास है, मेरा सब-कुछ। प्रकाश की एक ऐसी किरण, जिसने सारे अधेरे को अपनी उजास मे डुबो दिया है. अनुपम ! वे दिन आज भी याद करती हू, तो पागल-सी हो जाती हू। मैं और कुछ तो नही समझ पाती थी, लेकिन यह सच था—मैं तुम्हें अपनी सम्पूर्णता से समग्र अस्तित्व समेत *प्यार करने लगी थी . मुझे लगता, मेरा एक पति हो ..एक छोटा-सा,* प्यार-सा घर हो, एक प्यारा बच्चा .मेरा अपना ससार ! लीना नाम की एक लडकी का अपना घर।'

लीना बोलते-बोलते हाफ उठी। उसके होठ थर्रा रहे थे। एक लम्बी यात्रा के पश्चात की-सी थकन जैसे उसके अग-अग को शिथिल कर गयी हो। कुछ देर बाद वह थोडा अकडकर बैठा गयी जैसे पुन कही से कोई शक्ति मिल गयी हो। आज वह सब कुछ बताने बैठी है, फिर यह आखिरी आवरण क्यो ? उसने अनुपम को स्थिर दृष्टि से देखा।

'अनुपम, सुन रहे हो न ! और ऐसी ही एक अधेरी रात मे सुरेखा ने मुझ से अनुपम को मागा था। तुम शायद कल्पना नही कर सकोगे, मेरे हृदय ने कैसी वेदना झेली होगी उस समय ! उसका अनुभव शायद मैं शब्दो मे कभी व्यक्त न कर सकू। इतने वर्षों से मेरे पास मेरा कहने लायक कुछ भी तो नही है। अपनी आशाए, अपने सपने.. मैंने सब कुछ सुरेखा को दान कर दिया...

'सुरेखा ने मेरे सोये हुए अभिमान पर पैर रख दिया था। और पछाड खायी नागिन-सी मैं उसे डसने के लिए तैयार हो गयी थी...मैंने सुरेखा से कहा—'मैं अनुपम को बता दूगी कि तू एक बीमार लडकी है।'

'सुरेखा ने तुम्हे क्या जवाब दिया ?' अनुपम ने धीमे स्वर मे पूछा।

'मैंने सुरेखा को ऐसे धमकाया, इस पर मुझे जरा भी शर्म या सकोच नही है। जब कोई बात जान पर आ जाती है, तो कोई कुछ भी कर सकता

है। उसने भी जवाब दिया—मान लो अनुपम मुझसे शादी नही करेगा, किन्तु यह भी कटु सत्य है कि वह तुमसे भी शादी नही करेगा ! और तभी मुझे महसूस हुआ कि तुम दोनो बहुत आगे बढ चुके हो और मैं बहुत पीछे .. पीछे रह गयी हू । अब हवा मे हाथ-पैर मारने से कुछ भी नही बनेगा ।

'अनुपम, सुख हमेशा से मेरे लिए मृग-मरीचिका बना रहा है । वह मुझ से दूर-दूर भागता रहा. मैं पीछे-पीछे दौडती रही। अत मे मैं थक गयी.. हार गयी...मेरे पैरो मे अब उतनी भी शक्ति नही रह गयी थी कि मैं ठीक से खडी रह सकू...जिन्दा रह सकू और मैंने इस हारी हुई जिन्दगी से समझौता कर लिया ।'

अनुपम लीना के समीप खिसक आया। उसने धीरे से उसका चेहरा ऊचा किया। अपनी उगलियो से उसके आसू पोछ डाले । लीना का हाथ अपने हाथो मे ले उसने स्नेहसिक्त स्वर मे पुकारा—'लीना !'

अनुपम के हाथो से लीना ने तुरन्त अपना हाथ खीचकर अनुपम की आखो मे देखा।

'नही, अनुपम, नही ! मुझे इस तरह से मत देखो । मैं डगमगा जाऊगी, सहेज न सकूगी। ईश्वर के लिए मुझे कसौटी पर मत कसो। मैं बहुत कमजोर हू । एकदम खोखली ।'

लीना अनुपम की बगल से उठ खडी हुई ।

'नही लीना, तुम्हे कसौटी पर कसने की हिम्मत मुझ मे कहा है, यह तो मेरी कसौटी का वक्त है। तुम्हारी बातो का मेरे पास कोई जवाब नही है। हो सकता है, मैं अगर सुरेखा से न मिला होता, तो हम दोनो इस समय एक होते । तुम मुझे अच्छी लगती थी, तुम्हारे आत्म विश्वास ने मुझे आकर्षित किया था। कुटुम्ब के लिए नौकरी, सारी परेशानियो को हसते-हसत झेलना—यह सब मैं जानता था । इन सब पर मैंने कई बार विचार किया था...तुम्हारे विषय मे सोचता भी था, किन्तु उसी समय सुरेखा से भेंट हो गयी। तुमसे एकदम अलग—कोमल, दुबली, कमजोर-सी, किन्तु अत्यन्त सुन्दर, किसी भी पुरुष को जीत ले ऐसी। और...नही, नही । तुम ठीक कह रही हो, अब इन बातो का कुछ भी अर्थ नही है। मनुष्य को सब कुछ समझ-बूझ लेने के लिए जिन्दगी मे पूरा समय नही मिलता । उसमें से बस

कुछ क्षण उसके हिस्से मे ग्राते हैं। कुछ मिनटो के लिए।...और उन क्षणो से बधा हुग्रा पूरा जीवन। लीना!'

'ग्रनुपम!' लीना ग्रनुपम के कन्धे पर सिर रखकर सिसक पडी। ग्रनुपम बिना कुछ बोले उसकी पीठ सहलाता रहा। वह रोती रही। हिचकियां ले-लेकर रोती रही।

उस रात को लीना ने हमेशा की तरह सुरेखा को बस ग्राराम करने दिया। किन्तु सुबह तक भी सुरेखा सामान्य नही हो पायी थी। पिछली रात की स्थिति ग्रभी तक उसमे विद्यमान थी। ग्रपूर्व तथा ग्रनुपम को देखते ही वह चीखें मारना शुरू कर देती। हारकर उसे कमरे मे बन्द कर देना पडता।

लीना ने देखभाल मे कोई कसर नही उठा रखी थी। ग्रपूर्व को तो हर वक्त उससे ग्रलग रखना पडता था। कई बार तो ग्रनुपम भी हिम्मत हार बैठता। वह उसे भी सात्वना देती।

सुरेखा तूफान बरपा कर रख देती। तोड-फोड कर डालती। पता नही कैसा ग्रमानुषी बल उसके भीतर समा गया था कि बन्द दरवाजा हिलाकर रख देती। सब भयभीत हो उठते।

एक बार लीना सुरेखा को कमरे मे बन्द कर कुछ खरीदारी करने के बाहर गयी हुई थी। उसने नौकरी छोड दी थी। ग्रनुपम ग्रब उसे नौकरी करने नही देना चाहता था। केसर ग्रपूर्व को लेकर कही घूमने गयी थी। घर पर ग्रनुपम भी नही था। ग्रौर ग्रचानक सुरेखा पर भयानक दौरा पडा। दरवाजा पीट पीटकर उसने भयकर चीखो से घर सिर पर उठा लिया। हरिदास बाहर वाले बराण्डे मे ह्वील चेयर पर बैठे थे, तभी सुरेखा ने दरवाजे को ऐसा पीटा कि एक पल्ला उखडकर धडाम से नीचे गिर गया। वह चीखें मारती हुई निकलकर रसोईघर मे घुस गयी तथा वहा पटका-पटकी करने लगी। हरिदास निरुपाय-से बैठे रहे। वे कर भी क्या सकते थे। सुरेखा ग्रगर उन पर ग्राक्रमण कर बैठे, तो भी वे कुछ नही कर सकते।

इत्तफाक से लीना उसी समय ग्रा गयी। सुरेखा की चीखो ने उसे सारी स्थिति का भान करा दिया। उसने दौडकर रसोई का दरवाजा बन्द कर

कुछ क्षण उसके हिस्से मे आते हैं। कुछ मिनटो के लिए।...और उन क्षणो से बधा हुआ पूरा जीवन। लीना !'

'अनुपम !' लीना अनुपम के कन्धे पर सिर रखकर सिसक पडी। अनुपम बिना कुछ बोले उसकी पीठ सहलाता रहा। वह रोती रही। हिचकियाँ ले लेकर रोती रही।

उस रात को लीना ने हमेशा की तरह सुरेखा को बस आराम करने दिया। किन्तु सुबह तब भी सुरेखा सामान्य नही हो पायी थी। पिछली रात की स्थिति अभी तक उसमे विद्यमान थी। अपूर्व तथा अनुपम को देखते ही वह चीखें मारना शुरू कर देती। हारकर उसे कमरे मे बन्द कर देना पडता।

लीना ने देखभाल मे कोई कसर नही उठा रखी थी। अपूर्व को तो हर वक्त उससे अलग रखना पडता था। कई बार तो अनुपम भी हिम्मत हार बैठता। वह उसे भी सात्वना देती।

सुरेखा तूफान बरपा कर रख देती। तोड-फोड कर डालती। पता नही कैसा अमानुषी बल उसके भीतर समा गया था कि बन्द दरवाज़ा हिलाकर रख देती। सब भयभीत हो उठते।

एक बार लीना सुरेखा को कमरे मे बन्द कर कुछ खरीदारी करने के बाहर गयी हुई थी। उसने नौकरी छोड दी थी। अनुपम अब उसे नौकरी करने नही देना चाहता था। केसर अपूर्व को लेकर कही घूमने गयी थी। घर पर अनुपम भी नही था। और अचानक सुरेखा पर भयानक दौरा पडा। दरवाज़ा पीट-पीटकर उसने भयकर चीखो से घर सिर पर उठा लिया। हरिदास बाहर वाले बराण्डे मे ह्वील चेयर पर बैठे थे, तभी सुरेखा ने दरवाज़े को ऐसा पीटा कि एक पल्ला उखडकर धडाम से नीचे गिर गया। वह चीखें मारती हुई निकलकर रसोईघर मे घुस गयी तथा वहा पटका-पटकी करने लगी। हरिदास निरुपाय-से बैठे रहे। वे कर भी क्या सकते थे। सुरेखा अगर उन पर आक्रमण कर बैठे, तो भी वे कुछ नही कर सकते।

इत्तफाक से लीना उसी समय आ गयी। सुरेखा की चीखो ने उसे सारी स्थिति का भान करा दिया। उसने दौडकर रसोई का दरवाज़ा बन्द कर

दिया।

बस उसी रात बाबूजी के लाख समझाने, तर्क-वितर्क देने के बावजूद लीना ने सुरेखा को 'मेन्टल हास्पिटल' मे दाखिल कर देने का निर्णय ले लिया। अनुपम के कहने के लिए तो कुछ था भी नही।

'तुम ठीक ही कहती हो लीना, सिर्फ सुरेखा का ही खयाल रखकर कोई निर्णय लिया जाये, यह तो मैं नही चाहूगा। सुरेखा के अलावा इस घर मे अपूर्व है, केसर है, बाबूजी हैं तुम हो, मैं हू। सभी का ध्यान रखना होगा। फिर सुरेखा को मेन्टल हास्पिटल मे रखना जितना हम लोगो के हित मे होगा, उसमे कही अधिक उसके हित मे है, जो उसके स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक जरूरी है।'

सुरेखा को जिस रात मेन्टल हास्पिटल मे दाखिल किया गया, उस रात पूरे घर मे एक अजीब-सी गमगीनी छायी रही। किसी ने मुह मे 'कौर' भी नहीं दिया।

अपूर्व को गोदी मे सुलाकर लीना थकी-थकी-सी पोर्च की सीढियो पर आकर बैठ गयी। रात काफी हो रही थी।

'लीना।'

अनुपम का स्वर सुनकर लीना चौंक गयी।

'आप अभी तक जाग रहे हैं?'

'तुम किसलिए जग रही हो अभी तक?' अनुपम ने लीना की गोदी मे दुबके हुए अपूर्व को स्नेह से थपथपाते हुए पूछा।

'मेरी एक प्रार्थना है लीना, कहने का अधिकार तो मुझे नही है, फिर भी कह रहा हू...' अनुपम का स्वर विषाद से ओत-प्रोत हो रहा था।

'कहो अनुपम, मुझमे कुछ भी कह सकने का अधिकार तो मैंने तुम्हें पहले मे ही दे रखा है।' फीकी हसी हसकर लीना ने कहा।

'तुम्हारे कन्धो का बोझ उठाने की शक्ति ईश्वर मुझे कब तक देगा, यह तो मैं नहीं जानता किन्तु मैं अपना बोझ तुम्हे सौंपने आया हू।'

'अनुपम!'

'हां, लीना, मैं आज तुम्हें अपूर्व को सौंपने आया हू। हम पिता-पुत्र को तुम अपने साथ ही रहने दो। अकेले जीने की मुझमे हिम्मत नही है।

सुरेखा कब तक आयेगी, उसकी मुझे प्रतीक्षा रहेगी। किन्तु तुमने एक बार कहा था न, याद है तुम्हे ? सब को सब कुछ नही मिल जाता। और हमें जो कुछ मिला है, उसे हमको नत-मस्तक हो स्वीकार करना चाहिए और शायद . हम सब इसी प्रकार एक-दूसरे के सहारे जी सकेंगे, जी लेंगे।'

अन्धकार मे अपने करीब—बहुत करीब लीना अनुपम की आवाज सुनती रही। उसने क्या मागा था ? अनुपम उसका पति हो, मेरा भी एक घर हो, एक बच्चा हो ! और आज यह सब उसे अनायास ही प्राप्त हो गया था। फिर भी ..फिर भी यह उसका घर नही था। अनुपम उसका पति नही था। अपूर्व उसका पुत्र नही था। फिर भी यह सब उसी ईश्वर की करुणा थी।

और लीना ने झुककर अपनी गोद मे सोये हुए अपूर्व का मुह चूम लिया।

९

मुझे पता नहीं, फिर क्या हुआ ?

मैं वर्तमान हूं, भूतकाल हूं, शरीरी-अशरीरी रूह हूं.. मुझे मेरे सुख की घडी में मर जाना है...ऐसा हुआ था। मुझे स्वेच्छा से मरना ही है तो... मुझे सुख की या दुःख की घडी.. कुछ याद नहीं...फिर क्या हुआ ? हां, सुख की घडी से पूर्व की स्थिति मुझे अभी तक बराबर याद है।

पहले क्या-क्या हुआ, इस सम्बन्ध में एक बार मुझे गोता तो लगाने दो। हां, सर्वप्रथम था समानता के स्तर पर प्रेम की दौड में रस चखा...फिल्म की भांति पहले, अभी, फिर, पहले, अभी, फिर। इसी भांति अनुभव को सहलाया है, व्यंग्य-बाण मारे हैं, उसे अलापा है, जुगाली की है, तितर-बितर कर डाला है !

यह प्रेम की दिशा में एक दौड...जो बहुत परिचित-सी लगती है... आज मैं पचास के आसपास की प्रौढ़ा होते हुए भी सोलह-सत्रह या बीस-पचीस की उम्र का समझकर उसे अलाप सकती हूं...याद कर सकती हूं।

अगर मैं उन यादों को स्मरण कर सकती हूं, तो किसी फिल्म के दृश्य की भांति देख भी सकती हूं। जीवन के बीते हुए क्षणों को पृष्ठ की भांति पलट सकती हूं और इसी तरह पढ़-लिख सकती हूं...जो कि मेरे हैं। और जिसे कोई 'बुढ़िया' कहता है, कोई 'मम्मी' कहता है, कोई 'शारदा' तो कोई 'शारदी' कहता है, उसका मुझे केवल स्त्री होने के नाते अनुभव है।

मैं मरं...मरं...शरीर को चीरकर बाहर आकर गयी हूं और

तुम्हें उसकी चिदिया बताऊ...तो समझ लीजिए, यही मेरा अनुभव है। उसकी.. बेचारी एक शारदा थी, फिर वह दुलहन बनी और उसके पश्चात किसी तरह प्रौढता की देहरी पर दो बच्चो की मा बनी...कुछ करूगी... करूगी...[1] बस यही उसके भीतर कुछ करने की आकाक्षा थी।

बात तो बिलकुल सामान्य ही थी। मैं भीड की तरह बह रही थी और प्राणी की भांति अकेली-अकेली हाफ्ती थी। घटनाए बिना किसी रोक-टोक के घटती रही।

—तू जवान हो गयी ?

धुत नशा, जैसे धतूरा पिया हो। बस मे बैठकर खिडकी के काच पर गाल टिकाना जाने क्यो भाता है। 'मुझे लगा सोलहवा साल' मनोज भले ही गाये, रमेश भले ही...हाथ पकडकर भविष्य देखने का तकल्लुफ करे...पर उस शैतान के हाथ का स्पर्श अच्छा लगता है।

तुम्हे क्या पता ? तुम्हे क्या खबर ? मुझे लगा कि यह कोई रेगिस्तान है या दहकते अगारे को हाथ मे पकड लेती हू। मुझे कोई ऊचे शिखर से धक्का दे, मुझे खूब गहरी चोट आये, लहू निकले। कोई ताकतवर हाथ मेरे गाल पर चटाचट तमाचे मारे। कोई ऐसी चुटकी भरे कि गाल पर लहू निकल आये। नाखून गडा दे कि मेरी चमडी को नोच डाले या बालो को ऐसा खीचे कि मेरे मुह से चीख निकल जाये।

कुछ न कुछ कर डालने के लिए खूब उछलू, कुछ पछाड खाऊ...ऐसी ही कुछ उत्तेजना आ जाती है। अपने खुद के ही बालो को झझोड डालू। जूडा भारी लगने लगता है। इनसे निकले हुए तेल के पसीने मे जैसे किसी पुरुष की महक आने लगती है। जैसे कोई बाए हाथ को लेकर उल्टा गाल पर फिरा रहा हो...ऐसा समझकर मैं अपना ही हाथ गाल पर फेर लेती हू।...मैं कहीं ..किसी की...कोई...मेरा हो। दूध उफनता हुआ झाग-झाग होकर नीचे गिरता ही जा रहा है। समदर की उछलती हुई लहरें अग-अग को स्पर्श करती हुई भिगोती जा रही हैं ..

तेरी टिपकीदार ओढनी छाती पर से सरक गयी है...कौन है ये ? मेरे सबके हाथ लालायित हो रहे हैं, आसमान रग-बिरगी पतगो से आच्छादित हो गया है। यह हरी पतग का पेंच...गिरा...गिरा...गिरा न...वह

...वह काटा...और एक फड़फड़ाहट के साथ कहा है कटी पतंग?...
...कहीं...भीड़ में...किसी की छत पर या सात समदर पार के किसी स्वर्ग में...!

गर्म-गर्म आगोश। नरम-नरम स्पर्श...मैं...मैं...मर जाना चाहती हू...मैं मऽऽर जाना चाहती हू...मऽऽर जाना चाऽऽहऽऽती हू...

२

प्रेम मे पडना किसी तेज गति वाले ज्वार जैसी ही कुछ स्थिति होती है। उसी भाति ही उतरते हुए भाटा जैसी ही निराशा...भी इतनी ही प्रचड गति से बेधती है।

—प्रेम हुआ।

—आकर्षण हुआ।

—मोह हुआ।

शका-दुविधा मे आधे रास्ते तक साथ चले।

—कुछ ऐसा...कुछ टेढा...कुछ...नहीं।

कुछ सजोग भी ऐसे ही...ओह!

मैं ऐसे आघातो मे फिर थक-थक जाती हू, फिर [illegible] मुह फेर लेने के लिए लाचार-सी बातो मे धकेल दी जाती हू...

नहीं...मैं परम सुख के क्षणो मे ही मरना चाहती हू। प्रेम के पूर्वार्द्ध का और उत्तरार्द्ध का अधकार, इन दोनो का मैं एक साथ वर्णन कर सकती हू। कभी कोई अगली, कभी कोई अतीत की वेदना, उसका आनद और पहले के सुख के उत्तम क्षणो को फिल्म के दृश्य की भाति बता सकू, तो काफी है।

प्रेम की भूख को—लोग जिन्दगी की रफ्तार मे धकेल देने जैसी बात गिनते हैं। उसके बाद होड और फिर लोग निष्फल प्रणाम करते हैं। ऐसी पूर्ण अवस्था आने के पश्चात प्रौढ़ता की देहरी पर आते-आते पचास वर्ष

की उम्र मे किसी प्रेमी का सदेशा मिलता है—

—मैं रविवार को आ रहा हू ।

बस, यही इतने ही सुख के मीठे क्षण वह पूरी जिन्दगी जो कुछ दे नही सका, उसके अभाव मे बस पीडा के इतने ही कडवे क्षणो को घोलकर मर जाना है ।

—टाल देने है ये क्षण !

—बच जाना है !

घर ससार तितर-बितर हो गया तो ? जिसके लिए तनिक भी आशा नही थी, जो प्रेमी बेवफा ही निकला, तो सीधे रास्ते पर आना ही पडा और बाद मे दो-दो बच्चे घर मे विवाह-योग्य फिरते हैं—स्वस्थ, प्रतिष्ठित, हैपी-गो-लकी, पति का सहारा पीठ पर हो, तो भी समय के जख्मो के टाके तोड-ताडकर भीतर मे गर्म-गर्म लहू बाहर निकलने को आतुर रहता है... जैसे दीवार भेदकर एक-दो कोपल नये सिरे से निकल जाती हो...'मैं पीपल हू...पहचानते हो ?' ऐसे ही वह भाककर कह उठती है ।

'मैं रविवार को आता हू । पहचान तो सकोगी ना ?'

एकदम घडी के काटे जैसे उल्टी दिशा मे दौड जाते हैं...अरे . अरे रे ...अरे रे !

निष्फल प्रणय का कितना कटु स्वाद, कितना प्राणघातक, कितना कडवा अनुभव है ? कितनी खराब घूट मैं गले के नीचे उतार गयी थी ।

एक कदम...और गीले फिसलन जैसे रास्ते पर ऊचाई पर चढकर सतुलन बनाना कितना कठिन होता है ? मैं लगडाते पाव, रसहीन, शून्य बनी आखो मे ऐसे ही कुछ आघात झेल लेने के लिए लालायित थी... हृदय से बेचैन थी ।

—कई बार जीवन की दौड मे गिरना भी पडता है ।

—यह कोई नयी बात नही है ।

—ऐसा तो कई बार हुआ है ।

—कभी कुछ अधिक टकराहट, कभी कम ।

—चलो, धूल भाडकर खडे हो जाओ ।

मैं इसी तरह आदी हो गयी थी । गिरने के पश्चात भी लंगडाते पावो

से जीवन की सामान्य चाल भी दौड लगाने को आतुर थी। 'नही...नही ...चोट नही लगी है।' ऐसे ही मन को उस खुमारी से झूठ मूठ बहलाती थी।

अग-अंग दर्द करने लगता है।

फिर सारा अस्तित्व ही पराया लगने लगता है। मैं 'स्व' के भीतर से कुछ समय के लिए बाहर निकलकर जैसे दूर-दराज कही विदेश चली जाती हू। फिर सामान्य स्थिति मे लौट सकना असभव है। पुराने स्थल, व्यक्ति, सजोग, आवाजें, घर, सगे-सम्बन्धी जैसे इन सभी को नये सिरे से पहचानने की कोशिश मे होऊ। जीभ का स्वाद कडवा लगने लगता है, आखें बन्द हो जाती हैं। धडकनें रुकने लगती हैं, फिर भी जीवन का धूप-भरा रास्ता कहा जाता है...कहा जाता है। कोई ठूठ...कोई वृक्ष...अनायास अपने को हटाकर, पाव ले जाये, वहा तक चले जाते हैं...चलते ही जाते हैं...चलते ही जाते हैं। ऐसे प्रकाश मे ही कोई एक स्थान...फिर से...

फिर से...

फिर से...

एकाएक फिर से पाव ढीले पडते हैं।

कोई स्थान कुछ ऐसा ही था।

ऐसा ही...

इसी...तरह

इसी...प्रकार...

मुडना...रुकना...हाल्ट!

कदम ढीले पडते हैं...निरन्तर...

नि श्वास आदतन इसी तरह निकल पडना है...निरन्तर—निराश सदा हो . ढीली चाल...बराबर...बराबर। इसी तरह, ऐसा ही होता रहा है। इसी तरह प्यार, उसके बाद पुरुष स्पर्श...बाहों के बीच भीच ही ले!

और फिर से किसी की बाह मिलेगी!

ग्रौर इसी तरह. 'थैंक्यू'

इसी तरह . 'चोट तो नहीं ग्रायी न ?'

इसी तरह ग्राखों म ग्राभार (करुण रसिक ग्राखें)

ग्रब कैसा लगता है ? (सहानुभूति)

ग्रौर इसी तरह स्त्रीत्व में से दूर बिखरा पडा 'स्व' सिमटकर समीप ग्राने लगता है।

पदचाप की ध्वनि सीधी जैसे मुझे ही सुनाई पड रही हो।

लेकिन क्यो ? क्या किसी खास कारण के बिना, रस के बिना, केवल ग्रादत से थककर साथी को साथ देने के लिए बस ? ग्रकेले भटकने से थक-कर पहले प्रेमालु पुम्प स्वर की ग्रोर 'स्व' हाथ पसारने लगा था।

तब कहा पता था ? कहा खबर थी कि यह हमेशा की तरह ग्रजर रहने वाला है ? यह ग्राकर्पण, यह खिचाव ग्रलाप करते हुए गले. फेफडो मे ऐसे प्रतिध्वनित होगा कि सारी उम्र कान ही बहरे हो जायेंगे, पेट की ग्रातें सूत डालेगा ग्राखो से ग्रधा कर डालेगा।

उस वक्त तो थकान के कारण ही किसी की कठोर छाती की जमीन पर सिर टिकाकर पडे रहना ही उचित लगा था। यही प्रेमी के ग्रनुकूल कोई चेष्टा कोई भीतर खयाल होता है। कुछ समय बाद ही किसी के जगने, होश म ग्राने का मन नही होता था। ग्रौर इसी तरह मैंने भी उठने की कोई चेष्टा नही की। जो हो रहा था—वह भले हुग्रा करे। मैं लेटी हुई रही हू—कुछ निश्चित प्रतिमान दिखाये बिना। इनमे द्विग्रर्थ मैंने सभालकर रखा था।

कि खुद को ग्रपनी इच्छा मे नही खेलना हो, तो न सही। मात्र मित्रता म चला जाये, वापस लौटा जा सकता है।

मैंने कोई पहल नही की। मैंने किसी को बुलाया नही। यह परिचय केवल एक ग्रकस्मात है एक सजोग है। ग्रालिगन, स्पर्श, सामीप्य, कोमलता—सभी कुछ ग्रनायास ही सहज लगता है, उसी भाति. .बार-बार मैंने ग्राफत सह सहकर ऐसा ही सब ग्रनुभव कर लिया था।

इसलिए इस प्राणघातक स्थान पर 'फिर से' निकल पडने का मन हुग्रा, तब ऐसे ही. निश्चेष्ट पडे रहना ही मैंने उचित समझा था।

और फिर ?
इसी तरह...ऐमे ही।
इसी तरह...ऐसे ही।
मन मे...मन मे.. अपने आप ही खेल रच रहा था।
इस कोमलांगी मेहमान को क्या-क्या रचेगा ?
तब उसका बुरा हाल हो जाता...इसी तरह.. ऐसे ही...
.. फिर पसार दिया।
.. मुलायम स्पर्श गाल तक उतर आया।
. पुरुष की कठोर छाती के भीतर धड़कनें...
...हांफता हुआ श्वास।
और समक्ष अर्धवर्तुलाकार भुजाओं की समीपता।
...अधरों की अस्पष्ट छटपटाहट।
...दाढ़ी का स्पर्श।
. हाथ उरोजों पर रखे हुए ही स्त्री के मुख को ऊपर उठाने का प्रयत्न
दूर से समीप और समीप सटकर सामीप्य देने वाले मेरे 'स्व' ने दूर से ही अंगुली को दबा दिया! निर्णय डिग उठा।

—ठीक है!—स्वीकारिए।

आइए!—स्वागत है।

उसके पश्चात तो शीघ्रता मे मन के भीतर इस प्रवास की तैयारी चल रही थी. परिचित रास्ते पर शीघ्रता मे कदम उठ रहे थे, कहीं आगे को बढ़ रहे थे। कहीं कुछ डर नहीं लगता है? ऐसा ही कुछ विचार भीतर उठ रहा था। खेल खेलने मे यह शूरवीरता थी। 'स्व' दूर खड़ा होकर प्रेमी को परखा करता है। मैं एक स्त्री-प्रेमिका और वह एक पुरुष-प्रेमी।

पुन जीवन की दौड़ मे शामिल करने को तैयार हुई। उनके साथ ही हर बार प्रेम की अनुभूति मधुर, आकर्षक, रसप्रद, स्वागतयोग्य, ताजी-ताजी लगने लगती है।

तो क्या हुआ फिर ?

यानी कि किसी प्रकार के छल-प्रपच बिना ही...यानी कि किसी प्रकार के स्वागत के बिना ही।

किसी गदे दगदे के बिना।

किसी केवपाई के भाव बिना।

किसी पूर्व प्रेमी से वैर निकालने या नये प्रेमी को धोखा देने के लिए गुप्त तरीके में मेल के बिना.. मैंने स्वीकार किया कि इस तीर्थस्थल पर पवित्र सगम करने हो...करने हो। मुझे यही कुछ तो चाहिए था। यही मेरा पूर्व प्रेमी है। यही मेरा पहला अनुभव है। यही प्रेम मेरा विरामस्थल है। पहले जो हुआ, वह मूर्खता थी। यौवन का मोह था। पागलपन था। एक नादानी थी। सभी कुछ अकस्मात थे।

यह प्रेमी 'नेवर किशोर' है।

यह मेरा दर्पण...मेरा 'स्व' है।

मेरा 'स्व' इसमें घुल-मिल जाने, पंटकर समाप्त हो जाने के लिए झनझनाकर खिल उठता है। जिस तरह देवता को पूजा-अर्चना, वंदना, भेंट, मखल, पवित्रता...पता नहीं क्या-क्या दे देते हैं—उसी भांति ही अधीरता से उनकी आराधना में निमग्न हो उठी थी।

मैं प्रेम में डूबी थी...

नहीं, सच तो यह लगता है कि वह प्रेम में डूबा था।

यह अद्भुत स्वप्न था। जैसे कभी अर्धरात्रि को नींद टूट जाये, तो ऐसा ही स्वप्न देखने की तीव्र इच्छा करके बिछौने पर फिर से लुढ़क पड़ते हैं, तब वैसा ही मनप्रिय स्वप्न आता है...प्रमोद-भरा सहवास, इच्छाओं के पारिजात पुष्प, नदनवन के कल्पवृक्ष को अपने ही हाथ से झकझोरता और वांछित फल-प्राप्ति के लिए नीचे खड़े होकर स्वयं ही फड़फड़ा उठता।

ओह, प्रेमपत्र...वाला...नहीं.. प्रेमरस पी-पीकर मैं पगलायी-सी कपड़े पहन लेती हूं—'यह बैग मीना को चाहिए'—ऐसा झूठ बोलकर किसलिए मैं—मां-बाप का घर छोड़कर उसके साथ भाग निकली थी।

हम सीधे स्टेशन पहुंचे थे।

हम टिकट निकालकर गाड़ी में बैठ गये थे। मैंने स्वीकार किया था कि—'अब क्या?' माता-पिता के घर की देहरी लांघकर अग्निपरीक्षा भी पार कर डाली है। अब मेरे सामीप्य का सूत्र माता-पिता से टूट चुका है। ब्याह कर लेंगे यानी कि मिसेज आसव बनने के पश्चात मेरा नाम

शारदा नही, शाश्वती हो जायेगा ! फिर मेरी जाति बदल जायेगी। मैं शाह नहीं, व्यास बन जाऊगी।

मैं उसे ग्रासव कहती थी।

वह मुझे शाश्वती कहता था।

उन्नीस वर्षीया मुग्धा कन्या, जो रगीन स्वप्नो मे खोयी, भविष्य की योजना में डूबी, अपने नये नाम, नये घर, नये स्थल के लिए विचार कर रही थी—वह शारदा थी।

लेकिन घर की देहरी लाघने से पूर्व ही ग्रासव बीमार पड गया था। उसके पत्र निराशावाद मे बदल गये थे। उसकी बातो मे चिडचिडापन घुल ग्राया था। मैंने कुछ विरोध नही किया था। यह तो मेरे गर्वीले पिता को नीचा दिखाने वाली हमेशा की उसकी ग्रादत थी—'तेरा बाप · तेरा बाप तो धोखेबाज है। मजदूरों के पास से झूठे दस्तखत करवाता है। उन्हे लूटता है। वह तो काले धन से ग्रमीर बना है !'

जब शारदा घर-बार छोडकर ग्रकेली नि सहाय हो चली ग्रायी ग्रौर ग्रब माता-पिता के स्नेह को विस्मृत करके मौन साधकर भीतर-ही-भीतर रोती है, तब भी प्रेमी-पुरुष इसी प्रकार चिढाने लगता है—'ग्रगर रोना है, तो चली जा'...'ग्रभी तक भी समझती है...तुझे जाना है !' ऐसे व्यग्य-भरे शब्दो को सुनकर रोना ग्राता है ग्रौर शका-द्विधा होने लगती है।

—ग्ररे...रे...रे...जैसा प्रेम है...वैसा ही तो मैं तुझे दर्शा रही हू...तुझे चाह रही हू। ग्रौर ग्रब तो मैं घर की देहरी छोड चुकी हू—शारदा भीतर ही भीतर विचार करती है। बेचारी नासमझ स्त्री ग्रपने चिडचिडे पुरुष के साथ पीछे-पीछे रोती हुई सिर पर खेप ग्रौर गोद मे दूध पीता बच्चा लेकर किसी ग्रामीण स्त्री की तरह पाव ठिठकते हुए चली जा रही थी। इसी तरह का कुछ दृश्य मुझे महसूस हुग्रा। लेकिन मैंने मन को समझा लिया...इस बेचारे को भी कितनी कठिनाई होनी होगी ! एक भय-सा लगता है...मेरे पिता के हाथ बहुत लबे हैं। कही पकडे गये, तो ग्राधे रास्ते मे ही बेहाल होगा।

लेकिन तब मुझे कहा खबर थी !

मैं ग्राधे रास्ते मे ही वापस लौटने वाली थी। नही, ग्रासव ने ही मुझे

रोक लिया था। मैं रो रही थी और उसने मुझे हाथ मे टिकट थमा दिया था...फिर से ट्रेन मे बैठा दिया—"तू कही भी भाग नही रही है।"

मेरे गाव से कितनी दूर तक मैंने उसके साथ ट्रेन मे सफर किया था? कितना लबा रास्ता उसके साथ तय किया था? कैसी-कैसी बातें उसने मुझे बतायी थी? और आखिर मे उसने किस चतुराई से मुझे अपने साथ कर लिया था।

"तेरा बाप चाहे कैसा भी तीसमारखा हो, वह मुझे इस तरह चोर की तरह पकड नही सकता है। उसके हाथ लबे हैं, उससे मैं डरता नही, लेकिन यह ठीक नही, इस तरह भाग जाना कायरता है...उचित बात नही है। तेरे बाप के सामने से मैं तुझे लेकर जाऊगा। सबके देखते-देखते मैं तुझे हरण करके ले जाऊगा। उसमे मुझे मर्दानगी लगती है। मुझ म विश्वास रखना, शाश्वती! मैं तुम्हे कितना चाहता हू। अभी मैं गडबडा गया हू...मुझे क्षमा कर ..तू वापस चली जा।"

उन्नीसवर्षीय रूपसी शारदा को वह उस समय हरण करके निकला था—वह आसव ही था।

उसके इस स्वरूप से अविवाहित रहकर मैंने सात वर्ष गुजार दिये। इन सात वर्षो मे एक ही उम्मीद लगाये बैठी रही कि 'वह फिर से हरण करके ले जायेगा'। हर वक्त बस यही खयाल...यही दृश्य घूमते रहते, कैसा सकट मैंने मोल लिया था।

४

आज पचास वर्ष की 'बुढिया'...मैं श्यामसुदर की पत्नी...हर दृष्टि से सुखी पत्नी। दो स्वस्थ...हट्टे-कट्टे जवान बच्चो वीरू और शातु की माता। मेरे घर मेरे पुराने प्रेमी का पत्र मुझे दिया है—

'रविवार को आता हू। पहचान तो सकोगी न?'

कौन-से स्वरूप को पहचानू?

स्मरण आ रहा है...उन्नीस वर्ष की इस शारदा को वह स्टेशन ले

गया था। प्लेटफार्म पर ट्रेन की प्रतीक्षा की थी। उसके बाद ट्रेन मे एक लबी दूरी तय करने के लिए डेढ दिन तक सफर किया था, तब के उसके स्वरूप की याद आते ही आज भी उबकाई आने लगती है।

मैं तब किस पर निछावर हो गई थी ? केवल वे काल्पनिक बातें ! आरामकुर्सी पर बैठकर लिखे हुए पत्रो को वह कविता की भाति उच्चारता था। वही क्षण, वही दिन अब एकान्त के समय दिवा स्वप्न की भाति स्मरण हो आते हैं। बाहु मे मुझे भर-भरकर मेरी तरफ फेंकी गयी प्यार-भरी तरगित नजरें !

वह कभी मुझे कहा करता था—"अभी भी पक्षपात करने के दिन लेकर बैठी है।" जैसे मुझ पर ही यह आक्षेप था, मुझे ही आश्चर्यचकित कर देने के लिए उसी ने मुझे पसद किया था—चल, अलौकिक मजा करवाता हू...आती है मेरे साथ ? और अब मेरी नजरो म तुम चढ गयी हो !

"मैं ससार के एक विषम-जाल से अपने प्रिय पुष्प को कैसे बचा पाऊगा ? दहकती वास्तविकता है ये...तेरे पिता के सुरक्षित गढ मे सोने के पिजरे में से तुझे किस प्रकार छुडाकर लाऊ ? हे प्रभु ! ऐसा सुन्दर खिला हुआ पुष्प किसलिए तुमने मेरी झोली म डालकर मुझे चिन्तित कर दिया है ? निश्चिन्तता...तल्लीनता से वचित होकर भी मैं ससार मे सबसे बडा मालदार व्यक्ति बन गया हू। यो चाहे कितना ही दरिद्र...रक होऊ . लेकिन हे प्रिय ! मैं तुझे अपने कन्धो पर बैठाकर भाग जाना चाहता हू। तेरा हरण कर लेना चाहता हू...!"

ऐसा ही...इसी तरह से बहुत कुछ बोलने वाला आसव ..उस दिन स्टेशन से ट्रेन के सपूर्ण प्रवास मे भोली...निर्दोष शारदा जैसी.. अन्धे विश्वास के साथ घर बार छोडकर पहली बार खुले आकाश के नीचे आ खडी हुई थी। तब प्रेमालाप, असहाय, भय से रोती...डरती हुई.. कैसे आकर्षित हो गयी थी ? वह आसव का ही स्वरूप था। धनवानो का तिरस्कार करना, यही तुम्हारी आदत थी ! जैसे मेरी चोटी उसके हाथ मे आ गयी हो और मुझे ही जैसे निशाना बनाकर वार किये जा रहा था।

उस वक्त मैं नीचा सिर करके मौन ही मौन रो रही थी, लेकिन बाद

में विचार ग्राया कि यह ग्रासव प्रेमी हो सकता है ? ग्रासव जवान था ? वह कैसा लगता था ? चिडचिडा-सा, जैसे कोई दस-बारह बच्चों का बाप लगता है। जैसे किसी ग्रनपढ़-गवार की बेटी को छल गया हो। गरीबी ग्रौर शकाग्रो से तग ग्राया हुग्रा, सताया हुग्रा, जैसे पीछा छुडाना चाहता हो...ऐसा वह पुरुष था। सुख कभी भाग्य मे नही था। ऐसा ग्रधीर, वह मेरा प्रेमी दो पैसा का लोभी...लेकिन श्रद्धा-विश्वास...यानी मानवीय सस्कार, स्नेह कभी जा सकते हैं ? यह मुझे ऐसे मोह गया, जैसे मैं उसके पीछे पडी होऊ ग्रौर वह नकल निकालता मुझे उपहास की नजर से देखा करता था।

...'नही,...तो.. तुझसे कौन ब्याह करता ? तेरा बाप किसी खर्चीले, शौकीन, मूर्ख-बेवकूफ को ढढ निकालता ग्रौर तू घर मे साडिया, उसके फर्नीचर की भाति उसके ग्रन्त स्तल को शोभायमान करती !

मैं ग्राज श्यामसुन्दर की पत्नी हू।

नोट पैड पर पडे पत्र मे—रविवार को मैं ग्रा रहा हू। मुझे पहचान तो लोगी ना ? ऐसा प्रेमी ने लिखा है।

यह ग्रासव मुझे उसके स्वरूप को पहचानने के लिए ग्रा रहा है ? कितने ही समय तक मैंने उसके घमडी स्वभाव, मिजाज ग्रौर ग्रह-भरे स्वरूप को स्मरण किया है। नये सिरे मे सारा दृश्य मन के भीतर याद करती रही हू। उसके स्वरूप के साये को ध्यान मे रखने के लिए मैंने ऐसा किया, तब मैं जो नही थी, वह तडप सकती थी ..बोल सकती थी, तब उसके सारे सम्वादो को बार-बार मन के भीतर स्मरण करके बोला करती थी। उसके स्वरूप से तग ग्राकर उसे बदगोई करते हुए ग्रपने नाखून नोचती रही हू। कभी भी मुझे पीछे लौट जाने के लिए पश्चाताप नही हुग्रा है। हाय, मैं कैसी बेवकूफ थी ?

ऐसे व्यक्ति पर मैं न्योछावर हो गयी ?

ग्रच्छा हुग्रा वापस लौट पडी।

मैं कितनी बाल-बाल बच गयी ?

उन्नीस वर्ष की शारदा...ऐसे उजड्ड, बेवकूफ, चिडचिडे, धुनी ग्रशिक्षित पुरुष के लिए मैं कैसे छब्बीस वर्ष तक कुवारी रही...उसकी

प्रतीक्षा की ?

फिर से छब्बीस वर्ष की उम्र मे उसके पास एक बार फिर भाग जाने के लिए कोशिश करके देखी।

सात वर्ष बाद फिर से एक नये चतुर पुरुष का नाटक...आसव का नया स्वरूप देखकर वापस लौट गयी। शकर भगवान के उस खडित मन्दिर मे एकात मे आसव का दूसरी बार स्वरूप देखा था।

काश! आज मैं श्यामसुन्दर की पत्नी हू। मैं मिसेज आसव नही हू। मैं आसव के पास अब कभी नही जाऊगी.. एक दिन उसको मेरे पास आना होगा। तब मैं ऐसे स्थान पर होऊगी कि वह मेरे सम्मुख देख नही सकेगा और मैं आश्रित होकर भी अनाथ की तरह नही होऊगी। मेरे अपने घर मे ..मेरे ससार मे, मेरे सुख मे डूबी हुई होऊगी।

देख . देख ..मूर्ख.. ! मैं तेरी शारदा या शाश्वती अब नही हू, फिर भी मैं सुखी हू। तेरे बिना आत्मघात करके मर नही गयी हू ! देख बेवकूफ ! मेरा मस्तिष्क चक्करा चक्राकर कह रहा है कि मैं मूर्ख हू गवार हू। तेरा कटु व्यवहार, तेरा घमड मेरी नस-नस मे प्रवाहित होकर अकुला रहा है। मुझे तेरे वाक्यो का आरोह अवरोह अच्छी तरह से याद है। मैंने अपने सवादो को भी दोहराया है। घुट-घुटकर हृदय भर आया है।

नोट पैड के पत्र मे तुमने लिखा था—

'रविवार को मैं आ रहा हू। पहचान तो सकोगी ना ?'

वह पहल करके मेरे समीप आया था,...और उसे आना ही पडेगा। मैं निराश हताश होकर कभी नही मर सकती हू ! अब मैं नही, उसे ही फिर आना पडेगा। उसे मेरे पास आना ही होगा। यही सुख के उत्तम क्षण ...पचास वर्ष की मिसेज श्यामसुन्दर दिखने मे कैसी है? कैसे रही है ? यही देखने के लिए तुम आ रहे हो ? प्रबल मनोवेग के रोग की वजह से मुझे ब्लडप्रेशर की पीडा दी है। डॉक्टर ने आराम करने को कहा है। तुम बहुत तकलीफ मत लेना। उत्तेजना हो, ऐसी चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। यह तो आराम करने की सबसे अच्छी बीमारी है। घर मे शान्ति से तुमसे मिला जा सकता है। मेरा वैभव और सुख दिखलाकर मैं ईर्ष्यावश तुझे जला भी सकती हू। अरे, जब भी चाह लिया जाये तो अच्छे क्षणो मे

मरा भी जा सकता है...तुम्हे रखा भी जा सकता है।

तुमने. .तुमने . मुझे दो-दो बार लौटा दिया था, उसी तरह मैं भी तुम्हें क्षोभ मे डाल सकती हू, तदुपरान्त तुम्हे किसी अपरिचित की भांति निहारने लग जाऊ या बातचीत करू अथवा बैठाये रखू। कदापि मैं अपने कमरे से बाहर भी नही निकलू अथवा तेरे द्वारा दिये गए ग्राम चिह्नो मे मैं वाक्यो को मैं नये सिरे से अपनी ग्रावाज मे, अपने कठ से सुना भी सकती हू।

५

मेरे माता-पिता ने जिसे नालायक समझा था। हाय, यह मूर्ख शारदा! अपमान की क्रूर घूटें पीकर भी उसके पीछे-पीछे चुपचाप चली जा रही थी। वर्षों म जिसे मा-बाप ने अपने हाथो मे उठाय रखा, हृदय से लगाये रखा। कुछ मागने स पहल ही उन्होने सब कुछ लाकर दिया। ऐसे माता पिता को सोता छोडकर मैं तुम्हारे पीछे-पीछे डग भरती हुई, रोती हुई चली आयी थी। क्या तुम इसके काबिल थे? जिसे माता-पिता को स्मरण करत ही रोना आये, उसने आखिर ऐसा क्या अपराध किया था? *उस वक्त तुमने और ज्यादा-से-ज्यादा प्रहार किये थे, जैसे किसी* नौकर की गुस्ताखी पर उसे धक्का दिया जाता हो या किसी लगडाते हुए, भीख मागते हुए भिखारी को ठोकर मार दी हो—ऐसी कठोर दुत्कार-फटकार देने मे *तुमने अपनी मर्दानगी बतायी थी। क्या यही था मेरा प्रेम?* उस समय रास्ते म एक के बाद एक कई स्टेशन आये थे। छोटी-बडी बात सहन करना या मौन रहने मे उसके समक्ष बेवकूफ की तरह खुशी-खुशी तैयार थी। तुमने मेरे पिताश्री से वैर निकालने के लिए मुझे साधन गिना था?

गाडी खटाक्-खटाक् आगे बढती जा रही थी और मेरे 'नेवर-प्रिफोर' प्रेमी—प्रेम देवता के बोले हुए बोल और नही बोलने योग्य शब्द खटाक्-खटाक् करते हुए मेरे कानो मे कर्कश ध्वनि के साथ गूजते ही जा रहे थे।

उस समय तो मेरे कान अर्थ समझने के लिए बहरे हो गये थे।

लेकिन उसके पश्चात लहू मे समाया हुआ वह करण और रायें खडे कर देने वाला दृश्य मैं हमेशा नये सिरे से पलक खोलकर निहार सकती थी। मुझे लगा कि उस वक्त तो मैं उन शब्दो के प्रति कोडे मार-मारकर प्रत्येक बात का ज्वाब देना चाहती थी। और व शब्द जैसे इस तरह से मुह से निकलने को आतुर थे—

'तू, तेरा बाप, तेरा चाचा, तेरा दादा—तेरा सारा खानदान ही नालायक है।' और मैं मौन रहकर सब कुछ स्वीकार करती रहू, तभी उसे अच्छा लगता है।

—जी हुजूर, आप फरमाइये न ?

थोडी-थोडी देर मे वह खिडकी के बाहर देखता था और मैं अपने घुटनो पर रखे हाथो की ओर एकटक देखती रही थी। कभी लबा नि श्वास निकल जाता। मैं भीगी पलको से बावरेपन से कभी-कभार आस-पास देख लेती हू कि 'कोई परिचित तो नही बैठा है ना ?' या कभी भय के मारे उसके पास सरककर उसे पकडकर बैठने के लिए हाथ पसार देती हू।

'अपना यह लाल सुर्ख मुह तो देख ! कोई क्या समझेगा ? जैसे मैं तुझे जबरन मरजी के खिलाफ भगाकर ले जा रहा हू। अपने कपडो का ढग तो देख ! कम-से-कम मेरा तो खयाल कर...मुझ पर कितनी जवाबदारी है ? कितनी अनिश्चितता है, फिर भी कोई मेरे चेहरे को देखकर भाप सकता है ? और रोज़ मुह मसोस कर नाराज़ होऊ, तो भी तुझ जैसा तो खराब नही लगता हू।'

आज मुझे ऐसा लगता है, कि वह ऐसे ही सवाद बोला होगा।

'अपना रोता हुआ थोबडा तो देख ! अपने कपडो का ढग देख। तुझे गणित आती है ? मैथ्य मे तू ठोस होनी चाहिए।'

अब थोबडे और गणित मैथ्स का क्या सम्बन्ध ? लेकिन मुझे ऐसे ही सुनाते हैं, समझाते हैं। वह उस समय इसी तरह बेढगी बातें कह गया था, जिसका कोई सम्बन्ध ही नही होता था। मैं गूगी बनकर बैठी रही थी।

'देख मेरा मुह—मुह खोल, मेरी भीगी पलकें, मेरे फूले हुए नथुन देख। देख मैं कितना सुन्दर हू।'

'देख भोजन करते वक्त, पानी पीते हुए मेरे गले का टेंटुआ हिचकी

में ऊचा-नीचा होते हुए कितना अच्छा लग रहा है ?

थोवडा चढाकर क्या बैठी है ? कुछ बात कर ना ? हसकर कुछ तो बडबडा ? ये आस पास बैठ हुए लोग मानेंगे कि अपने दोनों मे बीच कोई सम्बन्ध नही है। अथवा अगर है भी तो कुछ-न-कुछ बात अवश्य है जिसे य छिपा रह हैं। लोगो को वहम हो एसा थोवडा क्यो बना रखा है ? तू जरूर मुझे बिना मौत मार डालगी। कुछ होश है या नही ? अब मुझे देख मैं कब से बोल रहा हू। पढ़ रहा हू। गाडी से बाहर देखकर चेहरे पर मुसकराहट ला रहा हू अब एसा गुस्सा आ रहा है कि अभी का अभी चलती गाडी से उतर जाऊ नही कूद पडू अथवा तुझे ही धक्का मार कर नीचे फेक दू। तेरा बाप पीछा करते हुए आये तो

गिर पड तेरी मा वहा तेरे और मेरे नाम पर छाती पीटकर रो रही होगी घर से क्या सोचकर निकली थी ? मीना को बेग देने के लिए ऐसे शाम को निकला जाता है ? तुरन्त खबर पड गयी होगी क्यो ? नौकर चाकर बेग देने नही जा सकते थे ? यो बेग उठाकर तेरा मीना के यहा कैसे जाना हो सकता है ? तेरा अपना ज्ञान नहो होता तो तू कोई मीना को बेग देने जा सकती थी ? मीना और बेग के प्रति तेरा सम्बन्ध नहीं जोड द कोई ? मीना के यहा कोई खबर करेगा तो ? कम अक्ल ! दूसरा कोई बहाना नही मिला तुझे ? मीना के घर जाने की तुझे सूझी किसलिए ? उपयुक्त बहाना करने को तुझे कहा से उपाय सूझ सकता है ?

हा हा मुझे उपयुक्त बहाना नही मिला बस !

तेरे भेजे मे सिर्फ गोबर भरा है।

हा-हा जी सच कहा आपने मेरे हुजूर !

मेरे साथ इतने समय तक रहकर इतना भी कुछ नही सीख सकी ? मा ने लाड-प्यार कर-करके तुझे !

जी ? आप तो वाकई महान हैं सत्यवादी हैं।

देख-देख अरे ओ मूर्ख ! तेरे कान का मेल कितना सुन्दर है ? तेरे कान की बाली निकल पडी है फिर भी बाल कितने सुन्दर हैं ? खबर है कुछ तुझे ? बोल न जवाब तो दे !

'जी...जी...आप तो नमन करने योग्य महान विभूति हो।'

'तू हर तरह से गवार, नासमझ, नालायक है। तू किसी भी तरह से मेरे योग्य नही है।'

'हा-हा...बिल्कुल सच है। मैं किसी काबिल नही हू आपके।'

'क्या? सन्तरा खाना भी नही आता है? तू मुह फाड रही है? अरे, तेरे से तो मैं कितने सुन्दर तरीके से मुह खोलकर खा रहा हू।'

'जी.. हा...मालिक!'

'मैं बातचीत करता हू, उस वक्त मेरे गले की नमें फूल जाती है, उसकी तुझे कुछ खबर है? इतने वक्त तू मेरे साथ रही। वह कुछ नोट किया? खबर है तुझे? क्यो नही खबर है? तू निरी बेवकूफ है।'

'हा ..हा...जी...!'

सामान्य बातचीत मे मेरा 'आई-क्यू' कम है, यही सब कुछ दर्शाने के लिए ही वह बढ-चढकर चर्चा किया करता। वह अक्सर अकेला ही बोलता, मैं तो चुप ही रहती थी। ऐसे ही उसके सवाद अलग अलग प्रसग के होते थे और वे मुझे व्यग्य की तरह चुभकर मेरे मन मे फफोले की जलन पैदा किया करते थे। उस समय तो मुझे कुछ भी समझ नही थी, लेकिन उसके बाद के वर्षों मे उसके सवाद, उसकी ऍठ-घमड सभी कुछ जैसे एक ही स्थान पर जमा होकर ढेर बन गया हो। कुछ जी हल्का होता, तब मैं उसके कडवे बोल के ढेर को कचरे की तरह फेंक दिया करती। उस ढेर के कचरे को उठाकर फेंक देने पर ही एक तरह से मुझे सन्तोष हुआ करता था।

'खबर है तुझे, बगाली लोगों को खाने मे मछलियों से भी अधिक केकडे प्रिय होते हैं? तुझे तो अपनी जाति के अलावा दुनिया की खबर ही कहा होती है? मुझे सारे विश्व की खबर है। तू तो निपट गवार है।'

'हा-हा...ऐसा ही है, हुजूर!'

'खाद्य-पदार्थों मे बगाली, पजाबी, मोगलाई, सिंधी जैसी अनेक तरह की खाने की चीजें होटलो मे मिलती हैं। ये सब तुम जैसी को खबर होनी ही चाहिए, फिर भी तुझे कुछ भी पता नही है। शर्त लगाता हू। और मुझे तो इन चीजो की कीमत तक खबर है। तुझे तो इनका स्वाद भी पता नही होगा और मैं तो कल्पना करके ही स्वाद का वर्णन कर सकता

हू। बोल ?'

'जानती हूँ मैं कौन और तू कौन है ? कहा तू और कहा मैं ? तू किसकी प्रशसा वगैरह कर रही है ? शायद तू धरती पर की घास है घास ! मै तो आकाश का सितारा हू । सितारो मे मैं यह हू और तू वह है . मुझे पहचानती है ? कभी विचारा है आसव कौन है ? उसका स्वरूप पहचान सकती है ?'

'जी जी एक मक्खी राजा के मुकुट पर बैठने की धृष्टता कर रही है। क्षमा महाराज क्षमा !' आ मूर्ख ! आज इतने वर्षो बाद तू मुझे मिलने क लिए पत्र लिखता है कि 'मुझे पहचान तो सकोगी ना ?' अब और तब वह समझता होगा—उसके विराट स्वरूप को देखकर मरी आखें फटी की फटी रह जाएगी। अब मैं उसके स्वरूप को देखकर पगला उठूगी जैस उसकी प्रतीक्षा म मैं आखें बिछाये ही बैठी हू !'

मूर्ख प्रेमी ! मरी आखें तब भी फटी नहीं थी। लेकिन मैंने बेवकूफ ही रहने का निणय किया था। इसका कारण था कि मैं तुझे चाहती थी ना ! और तरे सग सारी उम्र गुजार देन के लिए तेरे व्यग्य, तेरा घमण्ड सहने ही पड़ेंगे म और तरा तो पीडा देने का धम ही था ना जैसे। यह ता तरी खुराक थी और उसके लिए तू जैसे ये व्यग्य या ताने मारन के लिए प्रयत्न ही किया करता था न ? तुम मुझम लघुता ग्रथी प्रदश, मैं तुमसे अन्जान ही रहू तो अच्छा है। मैं अपने पैसा का घमण्ड नही करती हू। मैं दुखी होऊ तो तुझे दाप नही दे सकती। मैं अपने पिता की सुख-सम्पन्नता स व्यथित नही करना चाहती। इस व्यथितपन स बचने क लिए तो तुम पहल स ही पाल बाध रहे थ।

तुम जो थ वो थे अब मुझ क्या है ? अब तो मैं जो हू वह हू इस देखना है तुम्ह ? तुम आ रहे हो मरे घर ! मैं कही तुम्हार पास आ नही रही हू कि तुम कह रहे हो मुझ पहचानती हो या नही ? अब यह भी कष्ट क्या मोल लू ? तुम जैस हो वैस हो आगे मुझे क्या ? यहा तो तुम्हारे स भी सुन्दर रूपहला अधिक प्रतिष्ठित हर तरह से बढ़कर मेरा पति श्यामसुन्दर को देखोगे ?

तब यही कहोगे ना—थका हुआ, गवार, मूख। ऐसा ही नासमझ

लडका, तेरे माता-पिता ने यही वर ढूढा ? सच बात है ना ! तो आकर देख...और अपने से समानता करके देख ले !

केवल पति ही क्यो ? मेरे घर मे बडा लडका है—वीरू। सुन्दर... गबरू जवान ..बिलकुल मेरे पति जैसा ही दिखता है और दूसरा छोटा पुत्र दातु है !

तब तो तुम्हारा हृदय धक से रह जायेगा। तुम्हे फिर पहचानना क्या जरूरी है ? लो, लिख रहे हैं कि भाई साहब, मुझे पहचान सकेंगे या नही ? स्टेशन पर उसे लेने के लिए मैं अपने चपरासी को ही भेजने वाली हू... और उसके साथ ड्राइवर होगा ..बस ! वरना तो वह मूर्ख गाडी मे से उतरते ही चिल्लाने लगेगा और बात दोहरायेगा कि . मैं .यह ..यह हू .. और तुम.. वह नही हो। वे दिन गये अब, मिस्टर व्यास ! अब आपको तकलीफ उठाने की जरूरत नही है। सदर्भ टूट गये हैं.. सम्बन्धो को भूल चुकी हू। नये सदर्भ...नये सम्बन्ध मेरे लिए अधिक सुन्दर बनकर मुझे मिले हैं...मैं वापस लौट आयी, उसके लिए ही मैं तुम्हारी आभारी हू।

इस मूर्ख का 'आई-क्यू' मुझे उस समय तो समझ नहीं पडा, लेकिन अब तो कह सकती हू कि वह तेरा 'आई-क्यू' केवल रटा हुआ था. .उधार लिया हुआ था। किसी रेस्तरा के 'मेनू कार्ड' मे चीजो की सूची तो लिखी हुई होती है—चखी हुई नही। उसके नामी 'डिश' के नामो का वर्णन तो भिखारी की भाति रट लिये थे। बडे-बडे होटलो के साइनबोर्ड या धनवान मित्र की बातो मे से तुमने यह इकट्ठा किया था।

—ऐसी बातें...ऐसा ज्ञान मेरे लिए बिलकुल गलत हो चुका है... एकदम झूठा। ऐसी मूर्खतापूर्ण बातो के लिए मुझे तब मन ही-मन हसी आती थी। तुम जो बेवकूफी का खिलअत मुझे देते थे, मैं बिना कुछ कहे उसे तुम्हे वैसे का वैसा ही लौटा देती थी।

६

आह...! मैं इस प्रेमी को कितने सामीप्य से मिली थी ! लेकिन मुझे

उसकी एक भी बात उस वक्त खराब नही लगती थी। वह अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, हिन्दी अखबारो की 'हेड-लाइन' और समाचार पढकर अपने मित्रो के साथ मेरी ही उपस्थिति मे राजनीतिक चर्चा किया करता था, मुझ पर रोब डालने के लिए!

राजनीतिक चर्चा यह मेरा जीवन मेरा सर्वस्व है! अप-टू-डेट प्रश्नो के ज्ञाता-विद्वान कोरी डीग हाकने वाले, तेरी मिथ्या बातें देख अछूती ना रह। जब तू अंग्रेजी के कोटेशन देकर चर्चा को आगे बढाता, तो कैसा लगता था।

अरे मूर्ख! यह तो सिखाऊ नाटक जैसे रटकर तैयार करने वाले विद्यार्थी की तरह मात्र नकल करना है।

इसी आसव ने सात वर्ष तक मुझे कुवारी रखकर हरण करके ले जाने वाली बात के सहारे मेरी इच्छाए और उम्मीदें बनाये रखी थी। वह मुझे अपने शब्दो मे जिन्दा रख रहा था।

इतने वर्षो तक मैं उसके पत्रो के शब्दो का मनन कर-करके दूर के सहवास को समीप बनाने लगी थी। जैसे उसका प्रत्येक उच्छ्वास मेरे निकट और निकट आता जा रहा है। मैं उसके पदचाप सुन सकती थी। अपने माता-पिता की मनुहारें, आसुओ और बधनो के साथ घर मे बैठकर डाट खा सकती थी। मैं अपने पति की ही हू . विवाहिता हो गयी हू। अब मेरा कोई दूसरा ससार नही है। मैं तो तुम्हारे यहा उसकी अमानत हू। उसकी धरोहर हू। सात वर्ष तक कुवारी रहकर माता-पिता के यहा जीवन बिताया, यह क्या कम है?

उसने मुझे पवित्र-कुवारी ..शुद्ध रखकर वापस पीहर लौटा दिया था। यह उसकी सज्जनता—महानता थी। माता-पिता को चिन्ता नही होगी? *भाग-दौड नही करनी पडेगी?* नीचा नही देखना पडेगा इससे? उनकी इज्जत को कलक नही लगेगा? ऐसी परवाह मेरे प्रेमी ने की... और मेरे माता पिता पर उपकार ही किया है। मैं सात वर्ष क्या—सात सौ वर्ष तक ऐसे ही कुवारी रह सकती हू। उसके पत्रो मे ऐसी जिन्दादिली थी, ऐसा अहसास था कि मुझे वह अपना ही लग रहा था। मुझे ऐसा ही सब कुछ महसूस नही होता था। मैं अपने घट-घट मे उसके शब्दो को अकित

मर चुकी थी। गौरव होना था कि मेरे 'नेवर-बिफोर' प्रेमी के विचार, अभिव्यक्ति...शब्दो की सच्चाई,.. जीवटता...निकटता, दुनिया की किसी भी प्रेमिका को हासिल नही हो सकती है।

आसव के ये शब्द मुझे टूट जाने से उबार लेते हैं। मुझे कब्र मे से उठाकर कहेगा—'चल, अब मैं तुझे लेने आया हू। आज ले जाने के लिए आया हू। मैं अपने कन्धों पर तुझे बैठाकर हरण करने आया हू। देख... मैं सचमुच आ पहुचा हू...तेरे पास।' अगर वह ऐसा कहे, तो एक बार फिर मैं उसके साथ जा सकती हू...जैसे यह बात मेरे ही हाथ मे हो और जैसे यह सब मुझे सभावित लग रहा था।

"तुम...तुम...मेरी शाश्वती!"

थैक्यू, फॉर दैट यू आर! लव-ब्यूटी एण्ड डिलाइट सिम्बोलाइज्ड वॉय मून देट दाऊ आर्ट। तुम मेरा 'स्व' हो। हम दो शरीर एक प्राण हैं।

तुम मेरे ईश्वर 'दाऊ' हो!

तुम विधिवत वरदान हो!

तुम चक्रवृद्धि ब्याज मे रखी हुई पूजी हो। यह पूजी सोने के...मजर, हीरे की खान की भाति अपने समक्ष तुम्हे स्निग्ध झिलमिलाते हुए देखता हू।

तुम मुझमे दूर नही हो...तुम्हे पाकर मैं समर्थ बना हू। तुम्हे समीप खीचकर फिर से दूर तेरी उस अलकानगरी को छोड दिया। फिर भी पहली बार मुझमे इतनी तीव्रता के साथ आश्चर्यजनक अथक पीडा है...मैं निरर्थक हू।

तुम ..तुम...मेरे पूर्व संसार की स्मृति हो। कथा...उपन्यास...फिल्म जगत की नये खून के युवाओ की सृष्टि जैसी यह नादान...गैर-जिम्मेदार बात नही है। 'आकाक्षा है, चाहता हू'...इतने शब्द भी क्या समर्थ नही है? मैंने जो हृदय से पाया है...निरन्तर महसूस करता हू...उनका अहसास है।

विश्वास रख शाश्वती...मैं तेरा हू।

तुम वहा अलग दुनिया मे रहते हुए भी मेरी धरोहर हो,..अमानत हो।

सात समदर पार कर राक्षस की पहरेदारी में रहती हो, तब पराक्रमी राजकुमार बनकर मैं राक्षस को पराजित कर उसी के हाथों से वरमाला स्वीकार करू . ऐसे पराक्रमी श्वास मैं लेता हू । टूट मत जाना...निराश न होना...जिन्दा रहना। मेरी प्रतीक्षा करना ।...मैं आ रहा हू...आने के रास्ते से फिर एक बार भटक गया हू । केवल पाव ही आगे बढते हैं। ऐसी बात नही है। मैं मानसिक तौर पर भी तेरी ओर दौडता आ रहा हू। विश्वास रख.. अपनी मजिल पास आती जा रही है, मैं धीमे-धीमे... बिलकुल समीप पहुच चुका हू। धैर्य रखना ..मैं आ रहा हू, प्रिये !"

और यह प्रथम भगोडे प्रेमी की प्रेमिका शारदा है, जो छब्बीस वर्ष तक उसके इन शब्दो में डूबी रही। उसे पाने की अधीरता में लालायित रही, रोती रही।

'ले...ले लो ना मुझे ! हट जा !...मेरे सर्वस्व की कसौटी कहा तक होती रहेगी ? मैं आख मूदकर कहा तक ऐसे दिवास्वप्नो को देखती रहू ? उसके शब्द मुझमे एक नशा—एक खुमारी चढाया करते। मैं उन्माद के क्षणो में अन्धी हो जाती। एकान्त मे फूल सूघती रहू—उसके साथ तारतम्य स्थापित करने के लिए यह सब कुछ कभी महसूस करने लगी।

मुझे दिख रहा है ? उछलते यौवन की सुगन्ध म उभरते शरीर के अग मिथ्या दिखने लगते। यह यौवन के उद्यान की चौकीदारी कहा तक कर सकेगा ? मात्र शब्दो का मिलन...बाहुपाश मे बध उन्मादी क्षणों का नशा...प्राण ले सकते थे...अब !

—मुझे बचाओ...

—मुझे बुला लो...

—मुझे अब मर जाना है।

अपने इन दो हाथो में मेरे उफनते यौवन को कस ले। मैं मूर्च्छित हो जाऊ। मैं स्वप्नमग्न होकर होश गवा दू ! इससे पहले...एक बार...एक बार मुझे बस बुला ले...

—तू कहा है ?

'मैं आ रहा हू, शाश्वती !' ऐसा तुम नहीं कह सकते हो। तुम्हारे ही शब्द तुम्हारे समक्ष मेरे मुह से कह लेने दे...'मैं आ रहा हू !' तुम आ

रहे हो या मैं आऊ ? रास्ता एक है अपना। मजिल एक है। छटपटाहट एक है। तडप एक है। हृदय की पीडा ...वेदना...दु ख...आनन्द ..त्रास... उन्माद...जहा सब कुछ स्वीकार बन गया है। वहा मेरा 'स्व', तेरा 'दाऊ' अपने एक ही हैं...एक ही हैं हम !

'मैं आ रहा हू, मुझे स्टेशन पर लेने के लिए आना।'

सात वर्ष तक ऐसी सुकुमार नवयौवन भावना को लालन-पालन करके अपने आचल में सजोये रखा और मैं उसके गाव दौडी चली गयी थी। उसकी 'ना' की उपेक्षा करके...उसके पत्रो के प्रवाह मे ..उसके शब्दो के ढाढस से...उसके नही आने की महिमा के कारणो की अवगणना करके फिर एक बार केवल तुमसे मिलने के लिए...तुम्हे देखने के लिए... तुम्हे नजरो मे कुशल-स्वस्थ देखने, फिर से एकान्त जीवन जीने के बल की प्राप्ति करने मैं उसके पते पर दौडी चली गयी।

मुझे आते हुए रोकने के लिए उसने मुझे खूब दर्द-भरा पत्र लिखा— 'प्रम एक अलौकिक बात है और आज आसव यहा जीवन की किलकिलाहट मे...इस हकीकत मे एक गाव का मामूली अध्यापक बनकर तडप रहा है। और तुम जिसके पास सचमुच मे आना चाहती हो...उसे तुम नही पहचान सकती।

'वास्तविकता, समाज, रोजी-रोटी, बधन, मजबूरी, लाचारी, नीति, ईमानदारी, प्रेम-ससार...स्त्री...इन सब परिस्थितियो के बीच फस चुका हू। अभी मत आना ! मुझे अधिक परेशान मत कर !

' 'प्रेम' शब्द से मैं दूर...बहुत दूर फिक गया हू। अपने पावो के नीचे की धरती को भी मैं पहचान नही सकता हू। मुझ पर मेरा अपना व्यक्तित्व नही रहा है...मैं 'वह' नही हू, जिसे तुम पहचानती हो...तुम अभी भी वही हो . मुझमे श्रद्धा रखती हो, मुझे चाहती हो। 'मैं जैसा भी हू... वैसा ही हमेशा मैं तेरा ही रहूगा.. तेरा ही हू' .. यह वाक्य हकीकत बना रहेगा। तुम अचानक यहा आ धमकोगी, तो मेरा सब कुछ बिखर जायेगा। तुम चौंक उठोगी...मैं तुम्हे कहना चाहता हू कि—मैं तेरा ही आसव हू। शाश्वती ! मैं यहा तेरे ही नाम की सासें ले रहा हू...लेकिन वास्तव में... हकीकत मे इस भौतिक शरीर से मैंने एक सीधी-सादी चदा नाम की स्त्री

मुखरा तानकर दुनिया के समक्ष अपनी वास्तविकता प्रकट कर दो। तुम पुरुष हो, हकीकत प्रकट कर सकते हो।

ऐसे प्रयत्न कर-करके मैं आसव को फिर से आसव बना दूगी" तब कैसा लगेगा वह ?

मैं दिमाग मे आसव को खराब लगने वाले कडवे-कडवे शब्द कहने के लिए विचार कर रखूगी ..और वे शब्द कैसे होंगे ? जरा पहले से ही दोहरा लू-क्या-क्या कहूगी ?

'देख आसव ! तुमने तो मान लिया है कि मेरे मा-बाप किसी अच्छे मनचले लडके के साथ मेरा ब्याह कर देंगे। लेकिन मैं अभी वैसी की वैसी ही हू ..जब तुमने स्टेशन के प्लेटफार्म पर मुझे विदा दी थी। मैं केवल तुम्हारी ही शाश्वती रही हू। सात वर्ष तक मैंने ..मगर तुम कैसे पुरुष थे, कैसी लाचारी थी तुम्हारे समक्ष कि तुमने चन्दा के साथ ब्याह कर लिया ?'

और तब तुम कहोगे--'हा, शाश्वती ! तेरी बात सच थी। तेरा प्रेम मुझे बहुत महगा पडा है।'

देख अगर तुम्हारी आर्थिक स्थिति इतने हद तक खराब नही होती, तो मैं अपने पिता को. .वैसे तो मेरे घर मे पूरी छूट है, फिर भी तुम अनुभव कर सकते हो...केवल आज के दिन तुम अपनी शाश्वती को देख कर मेरे माता पिता का आभार नही स्वीकार कर सकते हो ? सात वर्ष तक माता-पिता ने मुझे पहले जैसे ही मान सम्मान और स्नेह मे रखा है। ...और आज फिर भी अगर हम निश्चय कर लें, तो एक बार और.. क्या चन्दा को त्याग कर . तुम्हे उस पर दया आती है ? लेकिन अपने सम्बन्ध... क्या तुम उसके साथ मेरी तुलना कर रहे हो ?

—चल ! मैं तेरा हाथ पकडकर अपने पिता के समक्ष ले जाती हू। एक बार तुम अपना ग्रह त्यागकर 'हा' कर दो ! अपने सारे प्रश्न हल हो जायेंगे। अब तो मेरे माता पिता थक गये हैं। इसलिए मैं तुम्हारे पास ये कारण लेकर आयी हू। तुमने ब्याह कर लिया है, यह भूल सुधर सकती है।

चन्दा का विचार मत करो, मैं आज तुम्हारा निर्णय जानना चाहती

हू—'हां' या 'ना'। स्पष्ट तौर से उत्तर चाहिए।

ऐसा मैं एक ही श्वास मे फटाफट प्रेम से आसव को कह गयी हू या कि कहती होऊंगी—बोल 'हां' या 'नहीं'! ...यह सब इतना नगण्य बन गया था कि जब वह स्टेशन पर मुझे लेने के लिए आया, तब मैंने सात वर्ष के बाद अपने प्रेमी आसव को देखा।

उसकी बात सुनी।

मैं उसके पत्रों की बातें ही दोहरा रही थी...उसे याद दिला रही थी—

"मैं तुममे एक विन्डरल सोल देख रहा हू—ये ब्रदरसोल, ये सिस्टर सोल...मैं 'दाऊ' की इमेज..."

'मैं अपने भीतर मे बाहर निकल आया हू। मेरे 'कुछ' को आउटलेट मिला है। अब मैं तुम्हारे समक्ष अपने आपको पहचानता हू। निर्झर सगीत कठोर चट्टानो को तोडकर कैसा बह रहा है।" लेकिन मैं ट्रेन मे से जब उतरी, तब मेरे सामने एक सामान्य पुरुष—तीखी दृष्टि, चमकती हुई आंखें, धोया हुआ पाजामा पहने, गले मे मैला-फटा सा मफलर टागे खडा था। यह था—चन्दा का पतिदेव...दूसरो का मोहताज...दरिद्र।

'कहां जायेंगे?' उसने मुझे पूछा था।

'अरे, यह भी कोई मुझसे पूछने की बात है तुम्हारे यहा पर?'

'यहा तो ऐसा कोई ठिकाना नही है...इसीलिए वह कह रहा था कि अभी मत आना!'

—रुक जा! मुझे जरा विचार करने दे।

—अच्छा यह बैग तो उठाओ।

—क्या सारा सामान भर कर ले आयी हो? मैं तो समझ रहा था कि...

तो क्या तुम मुझे यहा मे जल्दी-से-जल्दी फुटाना चाहते हो? ठीक है, तो अभी कोई ट्रेन हो, तो लौट जाऊ?

—यहा स्टेशन पर ही क्लाक-रूम मे सामान रख देना पडेगा।

—फिर? क्या हमें प्लेटफार्म की बेंच पर ही बैठना होगा...सच?

—शारदा, नादान मत बन, अभी तो तुम गाडी मे से उतरी हो, यह

झगडा शुरू करोगी, तो अपनी बातें बन्द होंगी ?

मैं नरम पड गयी...लेकिन उसने मुझे 'शारदा' कहकर पुकारा है... इस बात को मैंने नोट किया है। शाश्वती के बदले शारदा ! 'ऐ ऽ ऽ मा!' मैंने दांत भीचकर कहा,'चल, स्टेशन के उस तरफ शकर भगवान का मन्दिर है। कुछ अधेरा होगा, तब वहा एकान्त ही होता है। वहा अपन देर तक बैठकर बातें कर सकेंगे। बाद मे जाने के लिए ट्रेन का आधी रात का समय है।'

—ऐसा ? तो क्या वह आधी रात को मुझ अकेली को ट्रेन मे बैठा देगा ?

—मैं जरा घर देर से आने का सदेशा कहलवा दू...तुम ट्रेन में बैठ जाना और सुबह मछापुर स्टेशन पर उतर जाना। मैं वहा तुम्हें मिल जाऊगा। वहा का यह पता है—दिनेश रावल का घर...!'

—नही, मुझे आज ही इसी वक्त सारी बातें कर लेनी हैं। मैंने एकदम सीधा प्रश्न किया। मैं अब रो नहीं रही थी। मैं अपने भीतर से बाहर आ गयी थी। वह क्या-क्या बोलता है, मुझे केवल सुनना है। उसका वही गुस्सा, वही अभिमान...कि मेरे माता-पिता को गालिया देने वाला उसका परिचित व्यक्तित्व अब मुझे दिख रहा था, लेकिन अब उसके शब्दों का अर्थ समझने की मुझे पूरी तरह समझ आ गयी थी। अब मैं कोई केवल मुग्धा-प्रेमिका नहीं थी। पूर्ण युवती बन चुकी थी।

—शारदा ! इतने प्रकाश मे मैं तेरे कन्धो पर हाथ नही रख सकता... लेकिन तुम तो और भी ज्यादा खूबसूरत हो गयी हो। समझदार, सयानी, होशियार...अब तो तुम रोती, कापती बिलखने वाली लडकी नहीं दिखती हो।

यानी कि यह सब मुझमे उसे महसूस हो गया है—ऐसा !

—कहो, तुम्हें ऐसा क्यो लगा कि मैं तुम्हारी चन्दा से झगडा करने के लिए आयी हू ? तुम्हारे गाव मे क्या मैं ऐसा 'सीन' करूगी ?

—तू शान्त हो...कुछ मिजाज को ठडा कर ! हम अपनी बातों का स्पष्टीकरण यहा वेटिंग रूम मे बैठकर कर लेते है। अभी दो मिनट मे आता हू।

वह लौट पडा।

हम दोनों मौन शकर भगवान के मन्दिर के पिछले भाग मे जाकर एक तग जगह पर बैठ गये। किसी की नजर पड जाये, तो कही खराब लगेगा—इसकी चिन्ता मे वह बार-बार उठ-बैठ रहा था। फिर बात को दोहराता—जरा अधेरा हो, तो इस एकान्त स्थान पर जरा शान्ति मिले। वैसे यहा कोई इस तरफ आता नही है, फिर भी अगर किसी ने इस गाव मे एक मास्टर को किसी जवान लडकी के साथ इस हालत मे देख लिया तो...।'

—मार-मारकर गाव से बाहर निकाल देंगे.. तब तो अच्छा ही होगा न ? तुम भी फिर मेरे साथ ट्रेन मे बैठकर...एक साथ प्रवास कर सकोगे... तुम चाहो तो सारा जीवन...

—कितनी कमअक्ल हो ? सारा घर...और घर मे रहने वाले सभी लोग नाराज है तथा फजीहत करना ही उनका लक्ष्य रह गया है।

—यह तो और भी अच्छा है ना ? यानी सदा ही उसे छोडकर मायके चली जाये – तुझे कहना ही न पडे कि मुझे नाराजगी है। उसे किसी तरह से इस जजाल से छुडाऊ.. मुझे कोई रास्ता ही नही सूझ रहा है।

—शारदा, तू कैसी बातें कर रही है ? तू क्या कहने आयी है ? तू मेरे लिए क्या सोचती है ? तू अभी भी इस आसव पर श्रद्धा रखे बैठी है, सच ? तुझे लगता है कि कायर...लाचार...दरिद्रनारायण आसव तेरा पति बनने योग्य है ? और तू.. तू.. तो पहले से भी ज्यादा सुन्दर, ताजी...जवान...और काफी सुखी लगती है। तू यही देखने और यही सब कुछ मुझसे कबूल कराने के लिए आयी है ? तू मेरी दुर्दशा देखने आयी है ?

मैं एकदम नरम पड गयी।

टप-टप आसू निकल पडे। उसे रोने वाला व्यक्ति सुहाता नही है। अभी वह कुछ कहने लग जायेगा, लेकिन वह ऐसा कुछ नही बोला। वह मुझे समझदार—सयानी कहकर बातें समझा रहा था। लेकिन वह गुस्सा, घमड और खीझ को दबाकर बोलता हुआ लग रहा था, मैं नही सुनने वाली बातो को जो सोच रही थी, वही सुना रहा था वह।

—शारदा ! मुझे ऐसा महसूस होता है कि जैसे मैंने तुझे 'कजीव'

कर लिया है.. मैं...मैं तुझे पहले से भी ज्यादा चाहता हू। तू मेरा अलौकिक स्वरूप ही रहेगी। इस एकान्त मे तुझे स्पर्श करके...हम सन्तुष्ट हो सकते हैं, लेकिन मैं अब ऐसी मूर्खता नहीं कर सकता। कारण कि मैं तुझे तुझे एक से अधिक चाहता हू। पहले कदापि नही चाहता होऊ, क्योकि तेरे पिता से वैर निकालने के लिए तुझे भगाकर ले गया था, लेकिन अब तो तुझे दिल से चाहता हू।

—मैं तेरा गैर-फायदा लू, थोडा स्पर्श...या दो-चार चुबन लू... इससे क्या अर्थ है? तू कहे, तो मैं पहल करके तुझे कह रहा हू कि तेरे साथ किसी अनजान शहर म चल पडूँ, यह नौकरी, प्रतिष्ठा...अगाध सम्बन्धों को एक ओर फेंक कर..

कुछ खलबली होगी...लेकिन फिर क्या होगा? आखिर मैं तुझे क्या दे सकता हू?

तो ..मैं यहा चदा का पति ही सही। तुम भी वही...

—मेरे पिता जिस बतायें...उस लडके के साथ ब्याह कर लू ना?

—क्या फर्क पडता है? मैं स्वामी हू या कि दास, मुझे कुछ समझ मे नहीं आता है। लेकिन अब लगता है कि मैं तुझे कितना अधिक चाहने लगा हू। उसकी अनुभूति होनी है। तुम अगर मुझे नही भी चाहो, तो भी मैं तुम्हें तो बहुत चाहता हू और चाहता रहूगा। तुम जहा भी होओगी, वहा जाऊगा। मैं वफादार कुत्ते की तरह तेरे पीछे-पीछे ढूढता हुआ पहुच जाऊगा।

वह मेरे समक्ष बैठा था।

मैं उसे अपनी उदास नजरो से देख रही थी। कानो से सुनकर उसका अर्थ लगाती जा रही थी। मेरी दृष्टि मन कुछ नोट कर रही थी। उसके कमीज का कॉलर फटा हुआ था। गन्दा-मैला मफलर हाथ म लेकर उसे इधर-उधर उछाल रहा था। मेरे सामने जैसे कोई वयोवृद्ध बूढा, पोगा पडित, मुनी बैठा हो। कोई धर्मोपदेश देता हुआ चारण भाट की शैली मे बातें कर रहा हो।

जैसे उपदेश पूरे हुए और आशीर्वाद देते हुए बात समाप्त कर रहा हो...जैसे उसकी सभी बातें मेरे गले उतर गयी हो। जैसे उसने मुझे पटा

लिया हो, ऐसे सन्तोष से वह बैठा था।

''नाऊ यू आर स्टार इन माय सोल...डोंट वरी। तू जा...कुवारी रह...ब्याह कर ले...जैसे भी.. हम अब फिर कभी न मिलें बस! मैं इस ससार मे होऊ या नहीं, तू मुझे बुलाये ना बुलाये...मैं किसी तरह की फरियाद नही करूगा। आई फील सो मच वननेस विद यू। सो मच फियर लैस, सो मच प्रोटेक्टेड...आई एम एट होम। मुझे सन्तोष हो गया है।

'' शारदा, तुम मुझमे हो...आई हैव कसीव्ड हियर विद इन मी यू आर!

'' शाश्वती! हम हारे नही हैं! मीटिंग ऑफ सोल्स इन दी लैंड वेयर दीज सन ऑफ दी अर्थ साइन नोट!

तुम जाओ...अब, यह मेरे गाव की गली है.. यह मेरा घर है...मैं चदा के घर में अब जाऊगा और यह रास्ता सीधे स्टेशन पर जाता है। तू सामान्य है...लेकिन मैं असामान्य होऊ, उससे पहले चला जाना चाहता हू। तू जिस हिम्मत से यहा आयी है, उसी तरह जा सकती है...मुझे इसका पूरा विश्वास है।

८

मैंने प्रेम की असह्य वेदना मे चदा के पति को गाव जाने की स्वीकृति द दी थी। सात वर्ष तक क्या तूने ऐसे पोगा पडित के लिए तप किया था?

मैं कैसी मूर्ख थी? वह कैसी चतुराई से पाठ करके चला गया। आज मुझे उसकी यह चितवन...यह स्वरूप...यह कथन, उस समय के उसके मुखौटे के नाटकीय भावो की याद दिला देता है और मन करता है कि 'वस मोर', 'वस मोर' करू।

हर पत्र, हर मिलन मे यह मेरा मजनू कैसे नये-नये स्वाग दिखाता गया? मुझे चाहता था, फिर बेहद चाहने का शब्द दोहराने लगा और कुटिल ..शब्द बोलकर 'चाहने' शब्द को वजनदार बना दिया। आज तो झुझलाहट आ जाती है। वे भूली-बिसरी बातें याद आते ही बस, .बस...

अब तो मुह से एक चीख-सी निकालने के लिए मन बेचैन हो उठता है। उसने लम्बे अनमोल समय की, ताजी—हरी उम्र की बरबादी कैसे की ? मुझे छब्बीसवें वर्ष मे भगवान शकर के मदिर के पिछवाडे एकात मे सीढियों के नीचे एक नये प्रकार का नाटक दिखाया, जिसमे मूर्ख विदूषक की भूमिका अभिनीत करते हुए एकाएक कभी भी हस पडने, रो पडने या जा जी मे आये बोलने,हाथ मुह और आख से हरकतें करने का ही जैसेउसका काम रह गया हो और अन्तत अपनी मर्जी से मच छोडकर चला जाये।

उसने कहा था—'इस गाव मे गली के इस तरफ मेरा घर है और यह रास्ता स्टेशन की तरफ सीधा जाता है। अब कभी न मिलें तो ठीक रहेगा !'

और उसने पहले के पराक्रम के बारे मे बताया था—भागकर ब्याह करने में मुझे कायरता लगती है। मैं तुझे तेरे पिता के सामने से तेरा हरण करूगा। उसम मुझे मर्दानगी लगती है।

चदा के पति का दूसरा स्वरूप...! मेरे सामने जैसे पिटा हुआ। दौडते भागते कुत्ते की तरह पूछ दबाकर भागा हो, बस वैसा ही दृश्य कई बार कपकपी दे गया है।

उसी समय मैंने अहसास कर लिया। मैंने शकर भगवान के मन्दिर के प्रागण मे ही निर्णय कर लिया था। होंठो की कपनता के साथ मैंने विचारा था—यह चतुर नर प्रेम-मूर्ति जैसा मेरा पति नही हो सकता है। उसे मैं अब ब्याह करके दिखा ही दू।

किसी सभ्य परिवार के सपूत बेटे के साथ ब्याह करके दिखा दू।

—नही, अब मैं कभी उसके पास नही जाऊगी। हा, कभी उसे ही मेरे पास आना पडेगा !

आज नोट-पैड के पत्र मे...मेरी पचास वर्ष की उम्र मे वह लिखता है—'मैं रविवार को आ रहा हू। वह आगे होकर चलकर आ रहा है और उसे अब सब कुछ बता देने का यही समय है। आज मैं घर मे पति-बच्चो से कैसी सपन्न हू। एक वक्त मैं विवश-बेबस बनकर उसके गाव दौडी चली गयी थी, तब इस चदा के पति ने अपनी दुनिया के फेर मे...

चिन्ता मे...यह गली ..यह मेरा घर...चदा का घर है—इतना कहकर मेरे होश ठिकाने लगा दिये थे। आज वह मेरे शहर मे—मेरे बगले पर आ रहा है। अब मैं अपनी दुनिया, अपनी सपन्नता दिखाकर उसके होश ठिकाने लगा दूगी।

'भले मा-बाप की लडकी को करोडपति खर्चीला मूर्ख लडका ही ब्याह सकता है...ऐसा ही है ना ? अच्छा ऽऽऽ ! लेकिन तुम तो लायक नही थे ना ?'

क्यो, इसमे झूठ कहते हुए मुझे क्या शर्म ? सुख से लाड-प्यार से पाल कर बडा करने वाले ऐसे मा-बाप की लडकी की क्या ऐसी ही पसदगी थी ? ऐसा कैसे हो सकता है ? उसे एक कायर, डरपोक, घमडी, घुनी, मूर्ख, पोगा-पडित ही पति के रूप मे नसीब होगा ?

खैर ! अब मेरे माता-पिता को सचमुच कोई भी शिकायत नही है। कोई तू तू, मैं-मैं नही। उनसे क्या छिपाकर रखना ? उसके विवाह का निमत्रण-पत्र तो मुझे नही मिला, लेकिन मेरे मा-बाप ने आशीर्वाद के साथ उसे निमत्रण पत्र भेजा। उसकी इस शोभा मे अभिवृद्धि का जवाब तो मैं दूगी ही।

मैंने निर्णय कर लिया था।

मुझे उसने जिस तरह से कहा—यह सडक स्टेशन को जाती है और यह गली ..मेरे घर का नुक्कड...

यही मेरा प्रेमी बनने का दावा करता है ? यही है क्या ? उसके भाग जाने के बाद अनायास ही हड्डिया चरमरायी थी और उसके साथ ही मुझे हसी छूट पडी थी। आखो मे पानी आ जाये, ऐसी हसी फूट पडी। अगर वह सुने, तो मुझे पगली ही कहे ! इस हास्य के बाद जैसे मेरा सर्वांग खाली हो गया हो।

भगवान शकर के मन्दिर के पिछवाडे हमारे उस मिलन को आखिरी मुलाकात कहकर जो कुछ कहना था—उसने कह डाला, जैसे मैंने किसी भी मॉडल की कार के मालिक को कह दिया हो—'उठो ! लाओ, मैं कार ड्राइव करता हू।'

बस, ऐसे ही किसी युवक के साथ परिचय कर सकती हू...मेल-

ड़ोल बढा सकती हू। मैं अपनी पसन्दगी के लिए मा-बाप की सम्मति से खुशी खुशी लम्बा प्रवास काट सकती हू। अरी, भलीमानस! तो फिर अब किसकी प्रतीक्षा करनी है? अब तो वाहन शीघ्रता स चलाकर मजिल पर पहुच जाना है। मेरे हाथ और मेरी ताकत दोनो आदी हैं। यह तो जरा बीच मे नाक से पानी निकल आया था . एक गड्ढे मे पाव पड गया था... इसलिए मैं बहक गयी थी.. कुछ आदत छूट गयी थी।

—लाओ, मैं ड्राइव करती हू। अब मैंने जैसे किसी कार का स्टीयरिंग अपने हाथ मे ले लिया हो। भगवान शकर का मन्दिर ..उनके दर्शन के पश्चात् मुझमे एक नयी स्त्री अवतरित हुई हो.. फिर से पैदा हुई हो। पहले की जैसे सारी थकान मिटाकर एक जमुहाई के साथ सजग हो गयी हो।

माता-पिता राजी थे, परिचित आनन्दित हो गये। पिता का हृदय-महल जैसे फिर से जवान हो गया हो। पार्टी, उत्सव मे युवा मेहमान, बुजुर्गों के आदेश से . सम्मति से इकट्ठे होने लगे।

शुरुआत मे तो जैसे स्टीयरिंग पर हाथ काप उठता था। आवाज मे भी डर लगने लगता था। नौसिखिए ड्राइवर की तरह गाडी की गति पहले से ही डगमगाती, टेढी-तिरछी होने लगी। फिर कुछ होश, साहस, धैर्य से काम लिया और ठीक से ड्राइव करने का प्रयत्न करने लगी। हर कहीं हॉर्न बजा उठती, हर कही ब्रेक लगा देती, हर कही मोड बिना ही हाथ दिखा देती। गति को कम किये बिना ही मैं गाडी मोड देती, राहगीर और चालक के गुस्से स मैं हस पडती कि दड भरना भी मुझे आता है!

मैं गाडी पूरी गति के साथ चला रही होऊ और.. ऐसी गति आडी-तिरछी थी। लोग, वाहन, स्थल आदि कभी गोल गोल लगते, कभी हाथ बधे हुए लगते, तो कभी तेज गति मे अजीब चौंकाने वाला दृश्य बन जाता। सुई को देखे बिना ही गाडी की गति को बढा रही थी, जैसे मैं चलाना सीख गयी होऊ। अपने हाथो ही मैंने निर्णय कर लिया था कि—'विवाह करके दिखा दू!'

बीस मील, पचीस मील, चालीस मील, अस्सी मील की गति से मेरी मौज, मेरे साहस स स्वेच्छया जीवन और स्वेच्छया मृत्यु के लिए मैं गाडी

हाक रही थी...उससे दूर...उसके घिसे हुए रेकार्ड जैसे...मुह पर प्रेम की वातो से मेरा पीछा छूट गया था। एक सन्त्रास...एक घुटन से...एक अलौकिक प्रेम और भौतिक प्रेम की व्यवहार-कुशल बातो से बहुत दूर... बहुत दूर...कुछ उससे दूर.. बहुत दूर...मैं गाडी चलाती गयी।

जैसे किसी ने मेरे रोग को असाध्य घोषित कर दिया हो, इसलिए किसी को दिखा दू कि जिन्दगी और उम्र—ये तो मेरे हाथ की बात है, लेकिन क्या रोग नही मिट सकता है ? मृत्यु ही अन्तिम चढाई है, तो फिर क्या चिन्ता ? मरना ही है, तो मैं अपने ढग से मरूगी और जीना ही होगा तो मैं अपने जुनून से जीऊगी।

बिस्तर पर तडपकर रोग से भयभीत होकर डॉक्टर, सगे-सम्बन्धियो या परिचितो की दया अथवा दुआ के सहारे मुझे जीना पसन्द नहीं है। मेरी नस नस मे, मेरे नन्हे मस्तिष्क मे, उसकी भूल-भुलैया म रक्त-सचार से फैले हुए रोग के कीटाणु और दवा...सहानुभूति, इलाज...कोर्स की जरूरत हो और इससे कुछ फर्क पडता हो, तो यह सब मैं अपने हाथ से करूगी। मुझे किसी की मेहरबानी की जरूरत नही है।

उसने मुझे बहुत कमनीय तरीके से, मीठी और दर्द-भरी लाचार आवाज से, लेकिन कुटिलता के साथ कहा था—"यह स्टेशन का रास्ता।" यानी कि उसने मुझे धक्का मारकर अपने साथ हर तरह के सम्बन्ध से दूर फेंक दिया था। एक क्षण के लिए मेरी आखो के आगे अधेरा छा गया था।

लेकिन उस वक्त मैं छब्बीस वर्ष की युवती थी। उससे मिलने से पूर्व मेरा निर्णय शायद यह रहा हो कि—"मुझे उत्तर चाहिए, .फैसला चाहिए...'हा' या 'ना' अथवा चलो मेरे साथ ! मैं तुम्हे लेने आयी हू !"

और वह मुझे स्टेशन पर लेने आया होगा, तब उसका स्वरूप देखकर मैंने यही सोचा होगा—'यह है मेरा प्रेमी ?' मुझे भारी आघात लगा होगा। दूसरे ही क्षण उसके द्वारा एक भी शब्द बोलने से पहले मेरे अवचेतन मे यह बात बैठ गयी होगी कि यह दरिद्रनारायण...गरीब.. धुनी... लाचार...भले ही चन्दा या पति बन गया हो, .मुझे इसकी जरूरत नहीं है। शायद मुझे पूर्वाभास हुआ होगा कि अब आसव मुझे कहीं ना कर देगा,

तो सोचा हुआ आघात मुझे नही लगेगा।

वह मेरा किस तरह स्वागत करेगा ?

वह मुझे किस तरह से नकारेगा ?

मैं भी उसके 'ना' कहने के दृश्य को देखने के लिए मानसिक तौर से पूरी तैयार रही होऊगी। आघात लगेगा.. आघात सचमुच लगा भी, लेकिन उसकी हालत...उसका रग तो पूरी तरह बदल चुका था। वह अपनी लाचार काव्य-भाषा मे अपनी बात कहते हुए बीच मे ही भटक गया था।

अभी.. इसी समय.. हम इसी हालत मे कपडे पहने कही निकल जायें। भाग जाने की इच्छा होती है ..तेरे साथ निकल पड़ू कही...!

यह वाक्य ऐसा डावाडोल, अधूरा, अपग-सा था कि अन्तर से एक लम्बा सकट—तेरे स्वर का दर्द बाहर निकल पडा हो। वह चीख-चीख उठा हो.. ऐसा ही प्रश्न था उसका।

—तो फिर क्या ? इसमे क्या अडचन है ?

यह वाक्य उसने ही दूसरे वाक्य की अपेक्षा शुरू किया था कि इसके बाद के वाक्य मे स्पष्ट तौर से नकारना ही पडे। इस बीच मेरा प्रश्न तो बिलकुल नगण्य बन गया था।

अरे...अरे...रे.. पचास वर्ष की उम्र मे सुखी समृद्ध परिवार पति-बच्चो के घर तले आज उसके नोट-पैड का पत्र—'मै आ रहा हू' मिल रहा है, और तब मुझे शकर भगवान के मन्दिर पर अन्तिम मुलाकात का वह कारुणिक दृश्य याद आ रहा है। उसका एक-एक वाक्य...उसके गहरे अर्थ.. कहा लिया गया दृढ निर्णय मानसिक-शारीरिक रूप से निरन्तर याद आ रहे हैं...मुझे भीतर-ही-भीतर झिझोड रहे है। मैं उन वाक्यो की बारीकी और गहराई मे अटकी पडी हू. उसे दड दू...उसकी धज्जिया उडा दू.. उस पर आक्षेप करू ..क्षमा कर ..अपने हाथ से तोडे हुए आइने की तडकी लकीरो मे.. उस बिखरी जिन्दगी को देख रही हू, और मेरे हृदय से एक आवाज निकल आती है.. नही...नही ! मैं तुझे कभी भी माफ नही करूगी.. इसी दृढता के साथ मैं फुफकार उठती हू ..और सावधान हो जाती हू।

आज वैसे तो मुझमे कोई कमी नहीं...कोई मुझमे खराबी नही.. एक नया जन्म लेकर विवाह के लिए एक साथी पसन्द कर लिया है। अपने लायक...मुझे अच्छा लगता हो...वह कैसा होगा ? उस वक्त उस प्रेमी को सब दिखा देना चाहिए था.. उससे कहीं इतना भिन्न हो...या उसके विरोध मे मेरा व्यक्तित्व अधिक निखरा हुआ लगे.. मैं.. 'मैं'... नहीं रही हू।...मैं किसी से भी नही पहचानी जाऊ . ऐसा कायाकल्प हो जाये कि ऐसा पति, ऐसा ससार, जिसे मैं पसन्द कर सकू ? यह प्रेमी से बदला लेना नही है। यह तो अपने हाथो जीने के लिए दर्द मे फिर लौट-कर उस वातावरण की याद दिला देना है। उसकी छाया से अलिप्त रहा जा सकता है...जरा भी पश्चात्ताप न हो, इस निर्णय को तराशने के लिए... सब कुछ भूल जाने के लिए ही मैंने ठीक ऐसा ही पति श्यामसुन्दर को पसन्द किया था।

मेरा गर्वीला, खर्चीला, उडाऊ, मूर्ख, बेवकूफ पति कैसा है—यह यही सब कुछ देखने ही तो आ रहा है ? भले ही आये. .लेकिन मैं तेरे गांव भगवान शकर के मन्दिर पर आयी थी . तेरी पत्नी से मिलने आयी थी, तब तुम गृहस्थ बन गये थे . ससारी बन गये थे और आज जब मैं ससारी—कुटुम्बी बनी हुई हू, तब तुम मुझसे मिलने आ रहे हो ? देख ले मेरा घर कैसा है ? मेरा ठाट कैसा है ? मेरे इस निर्णय के बाद मेरी खुद की कमाई देख ले। आज मेरी पचास वर्ष की उम्र मे तुम भरे-पूरे परिवार की देहरी तले आकर खडे रहोगे, तब तुम्हारे बहुत सारे शब्द, वाक्य . चतुर नर की नाटकीयता...मेरे माता-पिता को दी गई गालिया ...मेरे भविष्य के बारे मे...मेरे पति के बारे मे तेरे उच्चारे हुए अभिप्राय, देखना मैं तेरे सिर पर...तेरे कपाल पर कैसे वापस मारती हू ? अब तो बिना बोले ही सारे शब्द...सारे वाक्य वापस मार सकने की मुझमे सामर्थ्य है...

एक-एक पत्थर तेरे सिर पर मारने के लिए इस परिवेश मे कमा लिये हैं, मिस्टर व्यास।

उन्होंने आज यह पत्र पढा है।

नोट पैड पत्र !

—क्या बेचारे दरिद्रनारायण मास्टर के पास पोस्ट करने के लिए टिकट के पैसे भी नहीं होंगे। या जल्दी में टिकट चिपकाना ही भूल गया? या ध्यान आकर्षित करने के लिए कि सबको खबर पड जाये—मेरा प्रेम-देवता आ रहा है .उसे सलामी करो...उसे नजराना दो। क्या ऐसा ही इरादा था उसका? चदा के पति ने मुझे ऐसे तो ढेरों पत्र बाद में ही लिखे थे... लेकिन एक यह ही पत्र—'मैं रविवार को आ रहा हू'—ऐसा निश्चित रूप अपने नोट पैड परही लिख कर क्यों डाला होगा?

उसने लिखा भी था कि "चदा के साथ पति के रूप में जिन्दगी काटते-काटते अब तो झुझला उठा हू। मैं उदास रहता हू और प्रश्न...मैं मौन रहकर भोजन करता हू और प्रश्न..!" मैं उसके ऐसे ही पत्र पढती थी, जिनमे चदा के पति के रूप में गृहस्थ जीवन बिताते हुए वह जैसे बहुत दुखी है. लाचार है। पश्चाताप करने के लिए भी अब तो उसके पास स्थान नहीं है. वह उस शिकजे में कठिनाई से सास ले रहा है। ऐसा लिखते हुए मुझे वह आश्वासन भी देता। वह मेरे बारे मे भी कुछ-न-कुछ लिखता था। उसके विवाह कर लेने के निर्णय के बारे में उस कहा से खबर होगी? इसीलिए तो मुझे विवाह का आघात पत्र मे दिया और कहीं मैं यह खबर सुनकर आत्महत्या न कर लू...इसलिए उस चतुर पुरुष ने मुझे अपनी विवश दयनीय स्थिति से वाकिफ कराया—'मैं तुझे ही चाहता हू, शाश्वती!' यह ध्रुव-वाक्य वह विविध रगो म लिखा करता था।

ऐसा था उसका रुख...ऐसी थी उसकी कुटिलता...नीचता ..दभी... चालबाज की हरकतों का मुझे रत्ती-भर भी खेद नहीं था। मैं तो उसके पत्र मनोरजन की दृष्टि से पढती थी। उनमे या तो सम्बोधन या दूसरी कोई दो-चार ऐसी पक्तिया लिखी होती कि मुझे उसकी मूर्खता पर हसी फट पडती और मैं फिर कहीं कोने में पत्र फेंक देती।

मेरे पति के घर का पता, जो पत्र पर लिखा होता था, वह मैंने अपने विवाह पर निमत्रण-पत्र भेजा था। उसमे लिखा हुआ था। उसके बाद उसके पत्र नये पते पर 'मिसेज शाह' के नाम से आने लगे थे। उसके बाद पत्रो की शैली बदल गयी थी। वह 'अखड सौभाग्यवती' के धीर-गभीर उत्तरो की

अपेक्षा के बिना ही लिखता रहता ।

उसका दिमाग ठिकाने ही था, ऐसा ग्राभास मुझे उसके सही ग्रक्षरो वाले पते से जान पडता था। मैं इन पत्रो को गहराई से नहीं पढती थी। उसके पत्रो को खोलकर हल्के मनोरजन की दृष्टि से दो-चार पक्तिया, वाक्य पढ लिया करती। फिर उनकी धज्जिया उडाने के लिए मन-ही-मन मे उसके साथ बातचीत करने लगती। ग्रब उसके शब्दो से खेलना ही मेरे प्रेम का सन्दर्भ रह गया था।

उससे दूर...दूर...बहुत दूर...बीच मे कई जगत के जगत, समाज के समाज, मैने ग्राडे खड़े कर दिये थे। उस पार का एक पूर्व महल...स्मृति... दु ख...ग्रनुभूति...सब कुछ भूल चुकी थी ग्रौर मैं वर्तमान मे नये सम्बन्धो को बुनती हुई जी रही थी। पहले पत्नी...फिर माता...ग्रहणी...ग्रप-टू-डेट पति की प्रतिष्ठा को ग्रधिक सम्मान मिले, खुशी मिले ऐसी मैं 'सोशल स्त्री' बन गयी थी। उनके ग्रौर मेरे बीच किसी प्रकार का सेतु नहीं रहे...कोई खिडकी न रह...कोई छेद तक न हो...ऐसी मेरी भरसक कोशिश रहती।

९

चमडी उतर तो नही सकती !

वर्षों से पडी हुई ग्रादत, हड्डियो को कुरेद-कुरेदकर उसके खोखलेपन मे रोग के कीटाणुग्रो ने घर बना लिया हो, तो इस तरह से कहने मात्र मे या निर्णय ले लेने से ही या केवल फूक मार देने से वे बाहर निकल जायें— ऐसे वे कीटाणु नही थे। वर्षों बाद लहू की जाच की जाये ग्रौर सुई घुसेड कर लहू बाहर निकाला जाये, तो शायद वे लहू म भी वही सब कुछ होगा एक बाहर की प्रवृत्ति का...वातावरण का...एकान्त का...निश्चिन्त बेफिक्र सास मैं जैसे भीतर उतारती हू...कि दूसरे ही क्षण मेरा उच्छ्वास बाहर ग्राता हुग्रा मेरे शरीर...मन मे से ग्रासव निकले—ऐसी स्थिति.. ऐसे ग्रनेक दिन...महीने...वर्ष मुझे बिताने थे।

मुझे ऐसा कठिन काम सरल बनाने का रास्ता सूझ गया था। जीवन-साथी पसन्द करके घर-संसार बसाने में पूर्व के प्रवास-साहस में जो कुछ भी शासव को ईर्ष्या पैदा करता, क्रोध मे पागल बना देता। जो व्यवहार, चर्चा, अभिप्राय में मुझे बेवकूफ कहकर करता था, वह सब अब मेरे जीवन में मेरा है . मेरा स्वय का व्यक्तित्व है मैं इनमें स्वीकारती हू...मैं ही उन्हें पहले महत्वपूर्ण बात बनाऊं यह मेरी मर्जी की बात है। इसी तरह क्रमसमाप्तर , खोखरपर मैं जीने के लिए अपने आपको बदलती रही। किसी गन्दी शिक्षा के प्रभाव से बाहर निकलने के लिए , किसी गड्ढे में किसी का पाव फस गया हो, उसमें निकलने के लिए उसमें विपरीत तरीके से सामना करके ही जल्दी निकला जा सकता है। ऐसी ही शासव की दृष्टि की सभी विपरीतताएं मेरे जीवन में समाती गयी थी और मैंने जहर के प्रभाव को खत्म करने के लिए जहर के उपयोग का तरीका ढूढ लिया था।

उसकी एक-एक बात पर मैंने अपनी श्वास मे घृणा भर-भरकर फुफकारें बाहर निकालने का तरीका ढूढ निकाला था, भले ही वह हठपूर्वक मेरे अस्तित्व को दबाये रखे। मेरे मन के, फेफड़ों के, हड्डियों के खोखलेपन में अगर वह याद के रूप में पुन लौटता है, तो उसे मैं अपने जहरीले डकों से बीध डालूगी।

मेरी ऊपर की चमडी, जिस तरह मेरे शरीर की भीतरी रचना को सजाये रखने के लिए चिपटी पडी है, वैसा ही उसका अस्तित्व मेरे भीतर रग-रग मे चिपका पडा था।

चमडी को उतारकर फेंका नहीं जा सकता है, शरीर का कोई एक अग सडा हो, पीडादायक हो तो उसको चाकू से काटकर फेंक देने का साहस किया जा सकता है और ऐसे दर्द की पीडा सह सकने की ताकत मुझमे थी। लेकिन भीतर के इस खोखलेपन में फिर से उथल-पुथल करके हठपूर्वक उसकी जहरीली असरकारक बातें कचोट रही थी और उन पर मैं किस तरह से चाकू चला सकती ? एक स्थान पर पीडा को दबाऊ, तो दूसरी ओर उसकी कोंपल फूट निकलती है और उनसे जैसे स्वर निकलता हो—मैं पीपल हू.. तुम वट वृक्ष हो...

भारी-भरकम...पीपल तो मैं हू ही ! आज जो यह कोपल फूटी है, उसे याद रखना ! उसमे से भी मैं पीपल बन कर तेरे सम्मुख लहलहाती रहूगी !

और इसी से ही एक-एक बात को स्मरण करके दोहराती...लेकिन वह मेरी तरह...उसके एक-एक अर्थ को समझती और वह मेरी तरह घृणा में डुबकी लगाये ! उसके वाक्यो का जवाब मैं ढूढ रही थी। अकेले मे शब्द उच्चारते हुए...जैसे वह सामने हो और बातचीत ..झगडा करते हुए उसका अपमान कर रही होऊं...ऐसे ही उसे भटकाते हुए जीवन मे सब कुछ विचारने लगी।

ऐसे जीवन के रास्ते पर मैंने परेश, नरेश, नीलेश, अमलेंदु. .थोडे प्रेमपत्र...थोड़ी निकटता लाकर परिचय किया था।

आसव ! लेकिन यही मेरा उद्देश्य था। मैंने केवल मित्र ही नहीं, उनके अक्षर-डाक्यूमेंट्स तक इकट्ठे करके, सजोकर, बडल बनाकर रख रखे हैं।

इन पत्रो के बडल मे आसव का एक भी पत्र नही है.. हो भी नही सकता ! उसके पत्र कमरे के किसी कोने मे भले ही सडा करें.. उसके पत्र पुराने बेग मे बिखेर डाले थे...न फाडे हुए...न पढे हुए...आधे फटे हुए भी...आधे फाडकर...मसलकर रखे पडे थे।

श्यामसुदर को अपने पति के रूप मे जब मैंने पसन्द किया था, तब मैंने अपने जीवन के सभी पराक्रम...उसके 'लवलेटर' उसके सामने खुली बाजी के खेल की तरह रख दिये थे। अब मुझे कुछ भी छिपाना नहीं है।

सम्य मा-बाप की अट्ठाईस...तीस...बत्तीस वर्ष की पुत्री कुवारी रही माने क्या...यही जान सकने के लिए मैंने ऐसा किया था। और मैं महसूस करती हू कि ऐसा ही वीर पुरुष मेरा पति बनने योग्य हो सकता है।

—तुम ही मेरे जीवन के पहले पुरुष।

—तुम ही मेरे जीवन का पहला सम्बन्ध।

ऐसा जो पुरुष मानता हो, आसव की तरह 'प्रेम' की कल को चला-

कर मेरे सामने आने वाला हो तो मेरे इन पराक्रमों से...लवलेटर देख-कर तुरन्त वापस चला जाये, मैं ऐसा ही विचार कर रही थी।

इसीलिए श्यामसुदर को मैंने पुरुष-मैत्री को कहने में कैसी दिग्विजय प्राप्त की थी...यह बता देना बहुत जरूरी था, जिससे कि वह भ्रम में नहीं रहे। मैं कैसी थी और भविष्य में क्या पता मैं कैसी रह पाऊं! "मेरे जन्म-जन्म की संगिनी!" मैंने ऐसा कहकर किसी से छल नहीं किया है..

श्यामसुदर के साथ शादी की बात करते समय बातचीत में सबसे पहले मैंने यही बताया था कि मैं पहले किसी मजनू के साथ भाग चुकी हू। प्रेम में असफल हुई स्त्री हू। लेकिन ऐसा एक ही ऐतिहासिक पराक्रम था, जिसे अब याद करना मेरा स्वभाव नहीं है। मैं उसे पूरी तरह भूल चुकी हू। यह सब बताने के लिए मैं अपने बाद के पराक्रम भी उसे बता देना चाहती थी।

इसलिए ऐसा बलिदान करके मैं ब्याह नहीं रचाना चाहती थी। प्रेम *किया, तब इतना सब कुछ सच लगा था...फिर भी यह सब एक तरह* से भूतकाल था— मुग्धावस्था...नादानपन था। यह जीवन का एक रग था।

मैं ऐसे प्रेमी की याद में कुवारी नहीं रही थी। प्रेमी के आघात से कुवारी बैठी नहीं रही थी। वह प्रेमी वापस आकर मुझे ब्याहकर ले जाये, ऐसी आशा नहीं रखी थी। या कि निराशा में आसू ढालकर किसी सहारे बगैर जीवन को गलाया नहीं था। मैं कभी अपने भगोडेपन को शर्म या पश्चाताप की तरह विचारने में नहीं लगी रही। मुझे ऐसा कुछ छिपाने की आवश्यकता नहीं है, जो मुझे पसन्द करने के लिए, मेरे साथ नये सिरे से ब्याह रचाने आये...उसके समक्ष मेरे सभी पराक्रम दिखाकर मेरी शक्ति.. स्वभाव सब कुछ परखने के लिए बता देना चाहती थी।

और यह सच आसव जैसा 'प्रेमी' नहीं हो सकता...कोमल नहीं... ईर्ष्यालु नहीं, पुरुष-मैत्री रखे...ऐसी बहादुर स्त्री के समक्ष हीनग्रंथी से पीडित कायर व्यक्ति नहीं हो सकता है! आसव को हमेशा मेरे पुरुष सम्बन्धो में चिढ पडे...मैं...ईर्ष्या नहीं कर रहा हू...लेकिन सभी पुरुष एक

ही दृष्टि में स्त्री के साथ सामीप्य स्थापित करते है। और वह इस तरह मुझे फसाकर, मुझसे ऐसे ही प्रश्न किया करता।

परेश कैसे आया था ? अरे, कॉपी तो एक बहाना होगा...तू जरा कॉपी के आखिरी पृष्ठों को खोलकर देख...कही उसने कविता तो नहीं लिखी है ना ?

—सुधीर क्या कहता था ? तूने उसकी आखें देखी ? और तेरे नाक से उसका नाक भिड जाये—इतने पास में तो वह बातचीत कर रहा था। और बातचीत हो तो भी क्या ? 'कैसे हो...कैसे हो...पापा क्या कहते है ?' इतना ही उसका अर्थ होता होगा ?

—तेरी मीनाक्षी बडी चालाक है, वह अपने भाई के लिए तुझे फसाना चाहती है। तू उसके साथ अकेली से मत जाया कर। इसके लिए तुझे कोई बहाना नही मिलता ? उसके घर मे आना-जाना कम कर दोगी, तो नही चलेगा ?

—क्या पापा घर पहुचने के लिए कार नही भेजते हैं ? तुझे बस-स्टॉप पर दोस्तो की बेमतलब की गोष्ठी में शामिल होने में क्या अधिक रस पडता है ?

विह्वल मित्रो और सहेलियो के साथ कितना व्यर्थ समय बिगाडना है। सुजाता की सगाई हो गयी है और उसका पति काला है, लेकिन खूब ही स्मार्ट लगता है। एयर इंडिया मे पायलेट है...जैसे तेरे मुह में पानी आ जाये ऐसी तेरी आखें चमकती हैं।

हमेशा इसी तरह चिढाने वाला आसव मुझे अच्छी तरह याद है। विवाह करने के साथ जैसे बूढा बन जाने वाला पति अपनी पत्नी को दबाये रखे...धमकाकर रखे...पशु की तरह व्यवहार करे...उसे घर में बन्द रखे...ऐसे शकालु पति की तरह वह सामने रट लगाता था...पाठ भाजता था।

ऐसे प्राचीन ऋषिपति की भांति आसव से अर्जित किये हुए 'लव लेटर' एक बडल बांधकर मैंने इकट्ठे किये थे। उनके ऐसे पत्रो के उत्तर में मुझे कुछ तेज-तर्रार बात मिलती थी। लेकिन नहीं...ये सम्बन्ध मैंने ह स्थापित किये थे...और इसी कारण मैं स्वय अपने आपको ही अपराध

मानती थी, कुछ लिखना भी चाहती थी...लेकिन मन ने गवाही नहीं दी. अब मुझे उससे क्या है ? उसको मुझसे क्या है ? वह सदा का पति है . बस इतनी ही जानकारी के अलावा मुझे क्या है ? वह मुझे छिछोरी मान सकता है.. या कि मैं ऐसे हलकट सम्बन्धो को रखती हू...क्यों ? वह तो गृहस्थ बन गया है...मैं अभी अकेला हू...कुमारी हू...मेरा अपना साथी.. मेरा अपना पति है...यह मेरी अपनी पसन्द है...इस तरह उसे सारे प्रेम-पत्र खोलकर दिखाये जायें, तो ईर्ष्या होना वाजिब है।

यो तो इनको पत्र लिखते समय मैंने कई बार आसव का पता लिखा है. .फिर चाहे जाने-अनजाने...जल्दी मे...आलस मे...फिर विचार जल्द—'कैसा लगेगा ?' इस दशा मे...तो कभी...अरे रे...बेचारा कभी गुस्से मे पागल हो जायेगा...इस दया से...इस तरह सताना मुझे ही नही रुचा।

और सबसे पहले इन पत्रो को फाडकर खोल डाले.. वह भी श्याम-सुन्दर के सम्मुख !

—देखिए, आप भ्रम मे मत रहिए।

यही समय है, देखो अब पुरुष-मित्रो के साथ अपने सम्बन्धो के बारे मे तुमसे विचार कर लू। मेरी आदत की तुम्हें पूरी-पूरी जानकारी मिल ही जानी चाहिए। विवाह के पूर्व सभी पत्र ओपन ! आपको ऐसा नही लगे कि मैं डरती हू...छिपती हू। मुझे मतलब है या आपको पसन्द करने का मौका कम मिले अथवा आप 'ना' कह दोगे, तो मुझे कोई अफसोस नही होगा !

हमारे बीच इन्टरव्यू के सवाल-जवाब ही ऐसे हुए थे कि मुझे कुछ अच्छा लगने लगा था। पता है श्यामसुदर ने पहली ही मुलाकात मे सबसे पहला प्रश्न क्या पूछा था ? मैंने जब अपनी सहेली को बताया, तो उसे बडा आश्चर्य हुआ था और कहने लगी—ऐसे फूहड जगली पुरुष को तुमने क्योकर पसन्द किया ?

मैंने तब उसे उत्तर दिया—'अरे, मैंने तो उसे पसन्द कर ही लिया था, लेकिन इतना सब कुछ खुलासा बता देने के बाद भी श्याम ने मुझे पसन्द किया।'

मैं कुछ कहू, उनसे पहले ही उन्होने मुझसे प्रश्न कर डाला—'बाई द वे ! आपके ब्वाय फ्रेंड रखने के विषय मे क्या विचार है ?'

मैं चौंक-सी गयी। एकदम मेरा मस्तिष्क घूमने लग गया। यह मेरे बारे मे, लगता है, सब कुछ पता लगाकर आया है...मुझे बताना चाहता है कि 'तेरी सभी कमजोरिया मैं जानता हू !' यह कही ऐसा ही सकेत करना चाहता है ? अथवा आज से ही यह किसी प्रकार की शर्त करना चाहता हो कि—'मेरे साथ रहना हो, तो ऐसे लक्षण-वक्षण नही चलेंगे अब... नहीं...नही...शायद यह कही मुझ पर उदारता दिखाना चाह रहा हो कि भूतकाल की ठोकर...जो तुमने खायी है, उसका मुझे पता है...तुम स्वीकार कर लो और मैं 'पुरुष' तुझे उदारतापूर्वक क्षमा प्रदान कर दूगा—इस तरह तो वह अपना हाथ ऊचा रखकर मुझे पसन्द करेगा... यानी कि सारी जिन्दगी मैं उसके उपकार से दबी रहूगी। वह मुझे हमेशा शका की नजर से . ईर्ष्या से...वहम से...देखा करेगा। यानी कि इस पुरुष को भी मैं दूसरे आसव के रूप मे देखा करू ? इस पुरुष की विचार-धारणा मे...झगडे...कानून...कायदे मे मुझे आसव की तुलना करनी पडेगी ? एक पुरुष क्या दूसरे पुरुष की ही तरह होगा ? क्या सब पुरुष एक समान ही होते है ? पत्नी जो मालकिन बनकर भी एक वस्तु ही रहे ..रहनी होगी ! घर की चहारदीवारी मे 'गृहिणी' बनकर बैठी रहती हो.. और वह गर्वपूर्वक छाती फुलाकर परिचितो के बीच कुछ इस तरह पहचान कराता रहे—'मीट माई वाइफ—मिसेज शाह !' और वह मेरे आस-पास इस तरह कोई लक्ष्मण रेखा बनाने की चेष्टा करेगा। इस शका के भय से, वह कुछ कहे ..कोई शर्त रखे, उससे पहले ही मैं बोल उठी—

'देखो मिस्टर शाह ! बी ए स्मार्ट। मैं आपको एक बात साफ-साफ बता देना चाहती हू। मुझे एक गभीर प्रेम का हादसा हो चुका है। मैं किसी से प्रेम कर चुकी हू, यू मे से...मैं घर से भागी हुई प्रेमिका हू...थी...और ठोकर खाकर निराश घर वापस आयी हू। उसके बाद ही मैंने बहुत से ब्वाय फ्रेन्ड्स के साथ निकट के सम्बन्ध रखे हैं। निकटता कैसी थी...इसके सबूत मे ये हैं मेरे लव-लेटर्स...जस्ट हैव ए लुक ! आपको अब पता चल जायेगा

यो तो ब्वाय या गर्ल की मित्रता में मैंने कभी भेद-भाव नही समझा है। इधर-उधर फिरना, मिलना, पत्र लिखे...और प्रेम की बातें की हैं... बस...!

—हाऊ वडरफुल ? ब्वाय और गर्ल में आप कोई भी फर्क नहीं समझती ! आई ऐप्रीशिएट इट. .और वह मुह ममोसकर सीधी नजर से मेरी आखो मे भाककर कहने लगा—आपको मेरे रिलेशन्स...आई मीन गर्ल फ्रेंड. .जैसे कुछ ऐतराज तो नही है ना ?

'नॉट एट आल . इन ए वे ..'' मैंने हन्के से मुसकराकर कहा था। लेकिन इस बात की डोर कही हाथ मे न खिसक जाये,इसलिए उसी मुद्रा मे मैंने अधिक सचेत होकर कहा—

—लेट अस बी फ्रेंड, सो टु से ..! वेल ..अभी जब मैं अपने विवाह के सम्बन्ध के लिए सीरियस हू.. तब कहूगी कि ऐसे मेरे ब्वाय फ्रेन्ड्स हैं सचमुच में ! लेकिन जिसे अफेयर कहा जाये, ऐसा तो कोई नही है। आपको शायद यह जानकर अच्छा महसूस होगा कि ऐसे किसी पुराने प्रेमी के साथ अब मेरा कोई सम्बन्ध नही है...कोई लव-लिस्ट नही, है और दूसरी बात बहुत से पुरुष 'वन-साइड' प्रेम करते हों...पत्र लिखते हो, तो उन पर केवल हसी आती है...आनन्द मिलता है ! लेकिन मैं कभी किसी से इन्वोल्व नही रही। आपने ऐसा सवाल किया है...उसके मर्म को पहचान कर मैं भी साहस करके इसके बदले मे एक सवाल आपसे पूछती हू—

—आपका कोई अफेयर है क्या, जिसकी चिन्ता मे आप मुझसे लायसेंस लेना-देना चाहते हो ?

—ओह . नो. .नो . नो ! मैंने क्लियर इसलिए किया है कि मैं मानता हू कि अगर स्त्री और पुरुष दोनो ही मेच्योर हों.. फ्रैंक हों...तो। विवाह सम्बन्ध मे हम ईक्वल पार्टनर हो सकते हैं। तब पति-पत्नी को स्वय अपनी फ्रीडम मिल सकती है...उनकी निजी सर्कल हो...फ्रेन्ड्स श्योर होते है...एण्ड वी शुड नॉट इटरफियर इन ईच अदर्स .. पर्सनल...!

—यू मीन पर्सनल अफेयर ?

मै एकदम सही उत्तर चाहती थी और जानना चाहती थी कि पत्नी

तरीके यह मुझे कितनी छूट दे सकता है ? और पति की हैसियत से वह कितना वफादार रह सकता है ? मैं स्वय भी जब स्पष्ट नहीं थी तो उससे कैसे स्पष्ट उत्तर चाहती थी ? क्यो आसव चदा का पति था न ? फिर भी वह मेरे साथ पत्रो से गहरा सम्बन्ध रखता था। मैं भी जिसके साथ मानसिक धरातल पर एकात्मक भाव से सम्बन्ध रखती हू...तो अगर ऐसी ही परिस्थिति श्यामसुन्दर के जीवन मे हो तो ?

मुझे ऐसा कोई खयाल नही है कि अगर ऐसा हो, तो मुझे क्या करना चाहिए ? मैं तो अपनी बात स्पष्ट करवाना चाहती थी कि इस समय मैं किसी 'अफेयर' मे पडी हुई नही हू। कोई 'लव लिस्ट' नही...कोई प्रेम सम्बन्ध नही ..और जो मेरा जीवन-साथी बन रहा हो, तो उसे कितनी सीमा तक मैं स्पष्ट और क्लियर कर सकती हू। मैं किसी टूटे दिल वाले व्यक्ति की सेवा करने के लिए ही पत्नी नही बनना चाहती हू ! या किसी स्वतन्त्र-पुरुष की मैं सिर्फ शोभा के लिए उसका खिलौना नही बनना चाहती हूँ ! जीवन से ऐसा खिलवाड किस काम का ?

—आप तो बहुत जिद्दी हो ! केवल खिलवाड के लिए ही सम्बन्ध नहीं होते हैं ..माई फेयर लेडी...नो.. नो ..नो...मैं 'अफेयर' जैसा कहीं भी सीरियस हो ही नही सका...टेक इट फ्रॉम मी। और मैंने जब विवाह सम्बन्ध के बारे मे विचार कर ही लिया है, तो...मैं घर को सलामत छोडकर खेल-खिलवाड करता फिरू। मैं तो लिहाज वाला व्यक्ति हू अगर आप ही का शब्द काम मे लू, तो कहूगा—कि मैं 'इन्वॉल्व' होना किसी के साथ, इतना मैं भोला बन ही नही सकता हू। लेट मी रिपीट... मैं बहुत स्पष्टवादी हू। मेरे साथ किसी से कोई अफेयर अभी तक तो हुआ नहीं है, मेरी ऐसी आदत ही नही है और अपना घर सलामत रखने के लिए मैं सीधा-सादा व्यक्ति हू। मेरा भविष्य, बच्चे, प्रतिष्ठा, सम्पत्ति के बारे मे पत्नी भी उतनी ही सीधी-सादी और होशियार होनी चाहिए जितनी कि मैं चाहता हू...या मैं हू ..दोनो...'ईक्वल' हो...बस...एम आई क्लियर ?

—हां ! आप कुछ कह रहे थे न लव-लेटर **के बारे में** ? लेट अस है ए लुक एण्ड ए फन...एट दी सेम टाइम...!

—और अपने लव लेटर्स का बंडल मैंने पहली बार श्याममुन्दर के सामने रख दिया था। उस समय श्याममुन्दर को भी बड़ा अजूबा लगा था। वह आश्चर्य से कहने लगा—क्या तुमने पहले से ही निर्णय किया था कि यह तुम्हारे लव लेटर बताने का अवसर आयेगा ही ? आप इन्हें अपने साथ लिये हुए ही फिरती हो ? मुझे जो यह सब पत्र दिखाये हैं उन्हें हर किसी को दिखाकर क्या प्रेम करने वाले पुरुषों का मजाक उड़ाती हो ? आपने कहीं पुरुषों के साथ वैर निकालने का तो नहीं विचार किया है ?' मैं चौंक उठी। मेरे सामने ही है एक पुरुष श्याम सुन्दर। रफ...जगली...पहुंचा हुआ शक्तिशाली .भविष्य में यह खुले तौर से सच्ची बात कह सकता है .मेरे आर-पार देख सकता है .मुझे बाहर-भीतर से अच्छी तरह परख सकता है...यह ऐसा पुरुष है, जो मुझे समझ सकता है मेरी बात समझ सकता है। आमव कहता था कि कोई मूख, बेवकूफ, उडाऊ पति तुझे मिलने वाला नहीं है।

मैंने श्यामसुन्दर को उत्तर दिया—देखो ! मैंने किसी दूसरे ही कारण से ये पत्र इकट्ठे कर रखे थे। आप पहले पुरुष हो मेरे जीवन में और मैंने आपको पति के रूप में पसन्द किया है, तो मेरे सम्बन्ध पहले किसी के साथ क्या रहे हैं—यह तो आपको बताना लाजिमी ही था। आपको भ्रम में रखने से क्या लाभ ? इसलिए ये पत्र साथ में लेकर आयी थी। आपने कहा था—'यस ! तुम्हारे बारे में थोड़ा परिचय पहले से मिल चुका है !' इसलिए मुझे लगा कि अपनी बात पक्की होने में किसी तरह की अड़चन न हो और ये पत्र एक ही व्यक्ति के थे इसलिए आप उन्हें एक बार अपनी नजर से देख लें, तो बस फिर मेरा ऐसा कोई सपना ताजमहल बनवाने का तो था नहीं। बाद में तो इन्हें कभी भी फाड़ा जा सकता है। और इस तरह पुरुषों से कोई वैर निकालने के लिए मैं अपना समय बरबाद करूं—इतनी नादानी मुझमें नहीं है। और जो ऐसी बेवकूफी पत्र लिखने की करता हो, ऐट लीस्ट वह मेरा पति हो नहीं सकता है . ! मेरी पसन्दगी कैसी है यही बताने-समझाने के लिए मैं चाह रही हूं।

'देन लेट अस स्टार्ट...'

उसने हंसकर—जैसे हम वर्षों पुराने मित्र रह चुके हों—उस तरह

मेरी बात पर खिलखिलाहट करते हुए...बिना किसी पश्चात्ताप के... निसंकोच मेरे पत्र देखने शुरू किये। प्रश्न...व्यंग्य ..द्विअर्थी वाक्यों से मैं लज्जित होने लगी। और वह मेरी निष्कपटता देखने-परखने लगा। पत्रों में क्या कुछ अर्थ है—वह स्पष्ट करवाता जा रहा था और यह पुरुष कितनी सीमा तक सहनशील है...मैं देख रही थी। वह समझ रहा था मेरी सहायता में।

—यह पत्र है...एक। कोई जगदीश...बिना माता-पिता का। इसे केवल सोफ्ट-कॉर्नर जितनी ही जरूरत थी। कोई भावानुभूति वाला लगता है...इसमें उसकी निकटता का पता उन्हें चला.. वह कहने लगे—नथिंग मोर...। श्यामसुन्दर ने उस पत्र की कुछ और पंक्तियां भी पढ़ी थीं।

—आप...आप अगर मेरी कुछ हों, तो...मुझे कोई संबोधन के लिए नाम भी नहीं आ रहा है। बहन कहन जैसी गुस्ताखी तो मैं नहीं कर सकता। लेकिन आप मेरे बहुत निकट हो...मेरा ब्याह होने वाला है। माता-पिता ने...बड़ों ने पसन्दगी की लड़की के साथ...।"

मैंने दूसरा पत्र रख दिया—यह देखो...यह जरा चक्रम जैसा है। शान्त स्वभाव का, कविताई प्रेम करता था...खुद को महान शायर मानता है।

'गुले जहां'...बिलकुल शेखी बघारने वाले भाव-सम्बोधन लिखना था। बेचारा चुरायी हुई शायरी डायरी में उतारने के बदले मुझे पत्र लिख-कर आत्म-सन्तोष कर लेता था। दूसरा था एक हिन्दी लेखक, कुछ नज़दीक आया था। उसने लिखा है, 'मेरे दिव्य चक्षु!' वह अक्सर इसी सम्बोधन से पत्र लिखता था, बाद में लिख-लिखकर शायद थक गया था, इसलिए पत्र लिखने बन्द कर दिये।

—हां...चलो...पूरे पत्र पढ़ने में क्यों समय बिगाड़ें और इसमें हमें पढ़ने में जो मजा आये...बस उतना ही ठीक है...बाकी तो यह सब 'श्रोल्ली आउट ऑफ डेट' है। संक्षेप में आपको मैं यह बता दूं कि इन सब मजनुओं से मेरा कोई 'अफेयर' नहीं है, यह तो 'वन-साइडेड लव-गेम' था! उन्हें जिस-जिस पत्र को पढ़ने में आनन्द आया, उसकी नकल उतार-कर मुझे पूछने लगे—'तुमने क्या उत्तर दिया? अगर यह व्यक्ति स्वप्न

मे तुम्हारे साथ कुछ हरकत करे, तो तुम छूट दे सकती हो ?'

इस तरह बीच-बीच मे श्यामसुन्दर हसते-हसाते हुए शिक्षा देता गया। वह कह रहा था—बाइ गॉड ! इतना समय तुमने इन पत्रो को पढने मे ही बरबाद कर दिया ? अरे, मैं तो लिखने मे तो क्या, पढने मे भी बरबाद नहीं कर सकता। इस समय ही इतना बोर हो गया हू कि मेरी बात अगर मानो तो एक बात कहता हू—अगर तुम्हे सन्तोष हो गया हो, तो अब यह अपना पराक्रम बताना बन्द कर दो...लेट अस स्टॉप...!

मेरा धैर्य...शान्ति.. स्पोटिंग नेचर, उसके बोल्ड जोक्स...तीखे व्यग्य...सहने की क्षमता...मुकाबले का साहस...सब कुछ उसे अच्छा लगने लगा था।

'अगर ये लव लेटर रिजेक्ट नही होते तो शायद हमे इतनी जल्दी एक दूसरे को निकटता से पहचानने का अवसर नही मिलता...।' वह कह उठा। बस, वह मुझ पर निछावर हो गया।

पवित्रता, अनुराग, प्रेम नाम की चीजो के साथ अब मैं चचल... तटस्थ होकर पुरुषो को निरखने की मुझमे ताकत नही रही थी। इन सभी गुणो के कारण वह मुझ पर निछावर हो गया।

—यू नो. .इतने सारे पुरुष जिस पर आशिक होकर मरने को तैयार हो, वह 'हेलन ऑफ ट्राय' हो सकती है या फिर मेरी पत्नी ही—आखिर उसने मुझे अपनी पसन्दगी की स्वीकृति दे ही दी।

—वेल, मैं कैसी पत्नी का पति होऊगा, इसका अनुमान तो मुझे पहले से ही होना जरूरी था। .थैक्यू वेरी...वेरी मच !

उस समय मुझे आसव 'बेचारा' लगन लगा। श्यामसुन्दर प्रस्थान करने से पूर्व एक ही झटके के साथ मुझे अपनी ओर निकट खीचकर मेरा हाथ अपने हाथ मे लेकर कहने लगा—

—नाऊ एव्रीथिंग इज ओ० के० ! अब मुझे कोई शिकायत नही होगी, मेरी आदतो से तुम्हे बुरा तो नही लगा न ? सुनो ! सैटरडे ईवनिंग को तुम मुझे बार मे मिल सकती हो ? ड्रिंक का शौक है क्या ? नही, तो तुम फिर मेरे घर पर ही मिल सकती हो ?

—शौक ? मै अब आपके व्यवहार को ऐप्रीशिएट कर सकती हू।

आपको तो अब ऐसी कम्पनी देने वाली की जरूरत होगी। पहले टेस्ट और फिर शौक भी परखना है, तो सब कुछ आपके लिए चलेगा। वैसे मैंने कभी ड्रिंक किया नहीं है और न ही मेरी ऐसी आदत है। लेकिन अब जीवन मे आपसे बढकर क्या है? यो...जस्ट लाईकिंग...डी-लाईकिंग...ड्रिंक के लिए...मुझे...कुछ...अगर...यू प्लीज...हम घर ही मिलें, तो अधिक अच्छा रहेगा।

१०

मैंने आसव की दृष्टि से श्यामसुन्दर को और उसके घर को कई बार देखा था। नन्ही बालिका, मुग्धा युवती की दृष्टि से...मैं उस पर निछावर हो गयी। इसके सिवा मेरे पास और कोई चारा नहीं था। मैं अपना पीहर छोडकर...अपना घर छोडकर भाग निकली थी...जिसके पीछे भागी थी ...उस पुरुष के नाम पर...सात वर्ष तक उसका नाम ले-लेकर मैं शब्दो ...आसुओं का अमृत पी-पीकर उन्मादी बनकर सहसा उसके गाव पहुची थी...तब चदा का पति ..उसके बाद ..श्यामसुन्दर के घर...मेरी जिन्दगी को एक मोड...नही, एक निश्चित मोड मिला। मैं श्यामसुन्दर के घर पत्नी बनकर रही और तब वह गृहस्थी पुरुष आसव मुझे पत्र लिखा करता, अपनी मर्यादा...अपनी सीमा को तोडकर।

वह मुझे 'मिसेज शाह' के पते पर पत्र लिखता...कुछ यो सम्बोधित करके—

सौ. स्नेही शारदा...

अखंड सौभाग्यवती...[1]

जैसे मेरे घर-ससार की हिफाजत से रखना उसी के सिर पर हो... तब मैं कई बार मुश्किल मे पड जाती थी...मुझे मन मे एक भय-सा लगने लगता था कि कही मेरा पति मुझे घर से न निकाल दे...इस तरह वह मेरा एक जमाने का 'नियरेस्ट एंड डियरेस्ट' प्रेमी...मुझे औपचारिक सम्बन्धो का स्वस्थ पत्र लिखकर मुझ पर बहुत बडा उपकार कर [illegible]

ग्रोर साथ मे खुद ही सज्जनता...गृहस्थ जीवन की भलकी भी लिख देता था।

वह स्वय जैसे कोई महान पादरी हो या मेरा कोई धर्मोपदेशक हो... और इस तरह मेरे परिणय-मुक्त परिवार मे पीहर का कोई परिचित हो, उस तरह से मुझे पत्र लिखता था .प्रवचन लिखा करता था।

सीख, आशीर्वाद, शुभेच्छा सन्तोष व्यक्त करते हुए उस पुराने प्रेमी के पास से पत्र बराबर आया करते थे। इस बात को मैंने श्यामसुन्दर के कानो म डाल दिया था। 'वन-साइडेड प्रेम'. और उसके पत्रो के भमेले म श्यामसुन्दर को जरा भी रस नही था। इसलिए बाद मे तो उसका उल्लेख करने के लिए भी कोई स्थान नही था। ऐसे पत्र लिखने वाले आसव को मैं एक ही तेज-तर्रार पत्र लिखकर उसका पत्र लिखना रोक सकती थी.

ग्रोह ! समय की कितनी परता के नीचे हम दब गए इस तवारिख के कोई फिर से पृष्ठ पलट सकता है. .उसके पत्रो को आरम्भ मे तो मैं कौतूहलवश आधे तो पढती थी, कि अब उसका धमड—अह—कैसा है ? वह अभी तक कितना निराश हुआ है या चदा के पति का जीवन कैसे चल रहा है या उसके शब्दो म अभी कितनी गर्मी और बाकी है ?. यह सब जानने को उत्सुक रहती थी...लेकिन हमेशा उसके पत्रो म एक ही शैली मे उसके-दु खी बधक वाले जीवन के बारे में पढने को मिलता।

श्यामसुन्दर की तरह ही मैं भी पत्र पढते समय 'बोर' शब्द बोलती ही रहती थी। मुझे लगने लगा था कि अब ये पत्र आसव के नही, बल्कि किसी दया के पात्र पुरुष के हैं। जो मात्र बेवकूफी भरे, मेरे मनोरजन के या उसके आत्म-सन्ताप के है।

—मेरे ऐसा कोई सम्बन्ध था या अब भी है.. !

इस मिथ्या ढोग का दिखाने के लिए ही शायद य पत्र थे।

...शारदा ! तुम तो सुखी होगी. मैंने कुछ ऐसी ही तेरे जीवन की कल्पना की थी. धनवान घर की गृहस्थी मे तुम हो जब कि यहा पर एक-एक पल की श्वास गिनने योग्य है। दो छोर जोडने के लिए ऐसे मास्टर के घर मे फटे कपडा म फिरती हुई यह चदा...मैं जा रहा हू. !

श्रौर मैं उसके पत्रो को पढकर बोर हो जाती हू—ऐसा मुझे अधिक-अधिक महसूस होने लगा था। मुझे 'अखड सौभाग्यवती' सम्बोधन पढते ही जैसे बदबू—घृणा चढने लगती। भगवान शकर के मन्दिर से जीवन के उस मोड के बाद उसका नाम...उसका पता मैं किस साहस से...लिख सकती थी! मैं तो शब्द और वाक्य तक लिखना भूल चुकी थी!

मैंने उसके पश्चात उसे कभी भी किसी सबोधन से पत्र नही लिखा था। हा, अगर लिखा भी तो मैंने उसे कभी यह नही बताया कि मैं उसके गाव से घर तक कैसे पहुची? कब पहुची?. .उसके बाद मैंने क्या किया? क्या करने का विचार किया...? कई बार तो उत्तर देती ही नही थी। उसको तो यही आशा रही थी कि मैं आसुओ से लथपथ होकर वही मर-वर चुकी होऊगी। अथवा काल-कराल शब्दो मे मैं उसके पते पर पत्र लिखकर उसमे आग लगा दूगी . उसे मार-मारकर मरण योग्य बना दूगी...और शायद इसीलिए उसने तब मुझे पत्र लिखा—बोल.. कुछ तो बोल? मेरे भीतर कुछ मास का लोथ कपन करता है ..मैंने जैसे कोई कत्ल किया हो—ऐसा 'गिल्टी कॉन्शस बनकर, फिरता रहता हू। एक बार पत्र मे कुछ शब्द तो...!

और मैंने उसे इसका कोई भी उत्तर नही दिया। वह धीमे धीमे मानसिक तौर से फिर सतुलित हुआ। मैं जिन्दा हू...इस बात का पता उसने लगाया होगा और उसे तब विश्वास हो गया होगा कि पैसो वालो को तो अभी भी डायवरसन मिल सकता है। मैं तो अपने आप ही रिपेयर हो सकती हू...

वह प्रतीक्षा करता रहा कि मैं वापस सतुलित होकर ठीक हो जाऊगी और फिर पहले की तरह ही उससे पुन प्रेम करने लग जाऊगी। उसी तरह मैं फिर उससे मिलने-चली जाऊगी। लेकिन मैंने जब कुछ भी जवाब नही लिखा, तो मुझे उसने फिर से पत्र लिखा!

—ऐसा लग रहा है कि हृदय का कोई कोना सूना-सूना हो गया है... कही कोई नाडी टूट गयी है...तुम्हारी यह घोर चुप्पी मुझे दाग रही है ..रात्रि के अधेरे मे किसी की जैसे सिसकने बाहर दरवाजे पर सुनने को,

मिलती हो...ऊची इमारत पर चढकर कोई जैसे चीखें मार रहा हो...मैं पागल हो गया होऊ...इसी तरह मैं भटकता फिर रहा हू...चदा बावरी बन जाती है...

फिर चदा कहा से टपक पडी ? यह !...नही पढना आगे कुछ भी मुझे !

उसके अनुराग-भरे ..पश्चाताप-भरे प्रेम-पत्र मे गहरे निवेदन थे। पत्र मेरे पीहर के पते से ही दिया करता.. वे सभी पत्र पीहर के पते पर भेजे गये थे.. और य सभी पत्र और उसके बाद के पत्र...चदा के पति के पत्र... वे सभी मेरे हृदय के खजाने मे समाये पडे हुए थे।

इस दृष्टि से भी मैं धनवान थी ही।

श्यामसुन्दर के सम्पन्न घर की गृहिणी बनने वाली स्त्री मैं ही थी। हर दृष्टि से सम्पन्न मैं दो स्वस्थ होनहार बालको की माता...मेरे जैसी सौभाग्यवती, समृद्धिवान,चदा स्वप्न मे भी नही हो सकती...! मैं धनवान हू ! मेरी तिजोरी मे केवल पैसे ही भरे नही हैं...खड-खड का खजाना भरा पडा है।

अलमारिया, तिजोरिया, लाकर्स आदि सम्पत्ति रखने वाली मैं गर्वीली धनवान स्त्री हू। मेरे सम्बन्ध शब्दो के खजाने मे भरे पडे है...मुझे हर बात की जानकारी है। उसने कब क्या कहा? वह कैसे पेश आया ?...मैं अगर सभी तरह सुखी रह रही हू, तो उसको क्या होता है ? मेरे खजाने मे सब कुछ है। सिर्फ हाथ को लम्बा करके जादुई चिराग की तरह खजाने से कुछ भी निकाल सकती हू...'ये हीरे-जवाहरात हैं...ये नोटो के बडल हैं...ये रखे हुए देग मेरे अपने खजाने के हैं...कुछ नये सिरे से गिनना, देखना...या ठक-ठक करना ..कुछ भी जरूरी नही है। यथास्थान सारी वस्तुए रखी हुई हैं...तब आसव के वे शब्द...वे वाक्य मेरे अस्तित्व मे.. मेरे मस्तिष्क मे भरे हुए थे ..मैं जीवन के खजाने की तरह धनवान स्त्री थी...सात वर्ष पहले ऐसा था या वैसा था...मेरा पहला परिचय हुआ तब आसव ऐसा था...ऐसे बोलता था...यहा मिलता था...ऐसे चिढाया करता था...ऐसा चम्मच को हिलाकर कॉफी पीता था। मैं कौन से कपडे पहनती थी...कौन-सा रग पसन्द था...या कैसा फैशन करती थी...उसके लिए आसव क्या

'विचार व्यक्त किया करता था।

इसके बावजूद आसव ने मेरा हाथ पहली बार अपने हाथ मे कब लिया...कितने समय के बाद सम्बन्ध गाढे हुए . कब वह इन सम्बन्धो मे मुझे स्पर्श करने लगा था...वह कितना आगे बढा ..कब उससे प्यार हुआ ...और कब वह प्यार जताकर स्पर्श की अभिव्यक्ति दर्शाने के लिए कान की बुट्टी के पास एक चुबन दे दिया करता था...फिर कहता—'यह मेरी रिजर्व जगह है—सिर्फ मेरी ! रिजर्व फॉर एवर ! मैं तुम्हारे जीवन मे रहू या न रहू—यह जगह मेरी रिजर्व रहेगी . बस, इतनी-सी जगह मे आसव को छिपाकर—बचाकर रखना !'

और इसी वजह से मेरे हाथ पीछे कान की बुट्टी के पास कभी न जाए इस सावधानी के साथ मैं काप उठती थी।

सत्ताईस वर्ष की उम्र मे भगवान शकर के मन्दिर मे—'नही...इस एकान्त मे मैं तेरा गैर-लाभ नही उठा सकता—अब मैं सचमुच तुझे चाहता हूँ'—यह दृश्य मेरे जीवन को हमेशा कडवा कर देता।

उसके पत्र...उसकी कविताए...भाग जाने की उग्रता...पहली बार स्टेशन पर और ट्रेन के प्रवास मे यात्रियो के साथ की हुई बातचीत.. ट्रेन के भीतर जगह के लिए एक सरदारजी के साथ ठान ली हो...ऐसी छाती ...खटपट करते हुए फौजी वर्दी पर जैसे 'परमवीर चक्र'...सम्मान पदक ...गलहार आदि लटकाये हो और उसका मुह चिडचिडा होकर कहता—अगर इस तरह सूजा हुआ लाल मुह रखती हो, तो अभी भी तुम वापस चली जाओ ! और उस समय—'तेरे पिताजी की उपस्थिति मे उनके सामने से भगाकर तुझे लाऊगा...इसी मे तो मर्दानगी है'...वापस चली जा ..एक ही बार और सात वर्ष बाद भगवान शकर के मन्दिर के एकान्त से लौटते वक्त...चली जा...यह स्टेशन पर सडक जाती है...वह मार परिवेश...एक पूर्व अनुभव का स्मरण है...जिसे मैंने अपने दिल के सुरक्षित कोठे मे खजाने का भण्डार बनाकर रख दिया है।

पीहर से ससुराल आयी, तब उसके पूर्व अनुभव की स्मृति न रहे.. उसके लिए चदा के पति के पत्रो को चर्र-चर्र करके निर्मम तरीके से फाडने बैठी थी। तब मैंने विचारा था—'अब क्या है ? अब मैंने नया जन्

लिया है...नया जीवन...नयी स्त्री बनी हू अब मैं.. यानी श्यामसुन्दर की पत्नी हू . श्यामसुन्दर मुझे 'डौली' कहता है...मैं अब शारदा नहीं हू .. शाश्वती नहीं हू...मात्र श्यामसुन्दर की 'डौली' हू। इसी तरह मैंने नया जन्म लिया है। मैं जीवन से अधिक हिफाजत से रखे गये पत्रों को निर्मम तरीके से फाड़ने बैठी थी।

—नादान . बेकरार के पत्र...पहले प्यार-इकरार से अब तार-तार भङ्कृत हो उठना है। ऐसे गर्म जलते हुए अनुराग से शब्द या बडल पर सेंट का छिड़काव था...उस खुशबू को अनुभूत किये बगैर...मैं 'चदा के पति' को देखने पर छली गयी थी। इसके बाद सर्वनाश करने के लिए हिम्मत इकट्ठी किया करती थी, लेकिन कभी तो शरीर ने साथ नहीं दिया . कभी मन ही मुकर जाता ..कभी बेहोश हो जाऊ.. ऐम पाव ढीले पड जाते . उसके पश्चात यों तो हिम्मत आ गयी थी, लेकिन जैसे श्यामसुन्दर के समर्थ कन्धों पर हाथ रखकर. मैं...! अब आभव ! तेरे सम्बन्धों के साथ मुझे क्या लेना ? वहा से लौटकर आने वाली शारदा शारदा ही नहीं रही थी। शाश्वती तो कब की मर चुकी थी। भगवान शकर के मन्दिर के एकान्त मे मिलने के पश्चात लौटकर आने वाली स्त्री शास्वती नहीं रही थी...तेरे साथ सम्बन्ध तो वही उसी वक्त ही समाप्त हो चुके थे।

इसलिए उसके ऐसे पत्र मैंने फाड डाले थे ..उन पर मैंने अपने हाथ से मिट्टी का तेल छिड़का था और दियासलाई जलाकर उन्हे जलाने ही वाली थी कि तभी मम्मी बीच मे ही बोल उठी थी—क्या कर रही है तू ? कहीं जल जायेगी . कितना बडा विस्फोट होगा, तुझे कुछ खबर है ?

ऐसा सुनकर मैं सारे पत्रों को लेकर अपने बगीचे के माली के भोंपडे के समीप गयी और सोचने लगी—इन्हे शान्ति से अग्नि मे होम दू।

मैंने मम्मी से कहा था—"यह तो मम्मी ! पुरानी किताबें, गाइड-बुक्स, नोट्स, कागजात आदि हैं—सहेज कर रखने योग्य नहीं है। मैं बगीचे मे माली को कह देती हू कि वह..."

और माली ने उस वक्त अपने हाथ गर्म करने के लिए उन्हे जलाया था। वहा जाकर मैंने 'नियरेस्ट' और 'डियरेस्ट' के पत्र 'कैरोसिन स्पी

मन्ट' डालकर आग मे डाल दिये थे। उनके गिरते ही आग मे एकदम नीली लौ के साथ विस्फोट-सा हुआ था। वे चट-चट करते हुए जल रहे थे। आज भी मुझे अच्छी तरह याद है, आग में सारे काले अक्षरों का 'जय सियाराम' हो गया था...वे भस्म हो चुके थे। लेकिन आकृति मे अक्षरों का अस्तित्व तब भी बाकी था, जिन्हे स्पष्ट रूप से पढा जा सकता था।

वे कागज जीवित जल गये व्यक्ति की काली पड गयी चमडी के फफोलो जैसे उभरे हुए थे और उनकी काली राख हवा के संग-संग उड रही थी। इस आग मे मैंने क्या-क्या जला डाला...चट-चट...जीवन की शाश्वत मूर्ति! उस परछाई मे वही सब दृश्य उभर रहे थे। वह हमेशा उपकार भाव दर्शाया करता था। उस समय कितना काबिल लगता था वह! मुझे उसका प्रेम मिला था, इसके लिए मुझे उसका अहसानमन्द होना चाहिए।

शायद इसीलिए इस उपकार से वह जब चाहे पारिवारिक भोज मे आ जाये। मुझे चाहे जो दान कर दे...खुश कर दे...धन्य-धन्य कर दे... कैसी समझ है? वह जब भी विचार करे, मुझ पर उपकार कर सकता है। जैसे किसी उपकारी राजा के पास कोई खुशी-खुशी जाये, तो रैयत-की-रैयत, गाव-के-गाव दान कर दें। हर भोज मे सारे-के-सारे लोग नजरें उठाये उम्मीद करें कि राजा ऐसे भोज मे चला आये! शायद वह भी प्रेम का दान करके मुझ पर ऐसा उपकार करने का हक समझता था।

नोट पैड पर पत्र लिखकर—'मैं आ रहा हू रविवार को...' उन पत्रो के सिलसिले के बाद मुझे चौंका देने—खुश कर देने के लिए वह आ रहा है। मुझे अपनी दिव्य-दृष्टि का दान प्रदान करने के लिए वह आ रहा हो, जैसे मैं उसकी बेसब्री से प्रतीक्षा कर रही होऊ...उसके लिए कौवे उडा-उडाकर थक गयी होऊ और वह एकदम 'मैं आ रहा हू' कहकर मुझे प्रसन्न कर देता हो।

उसने मेरे हृदय पर कब कैसे-कैसे जख्म किये हैं, जाने कितनी पीडा मैंने सही है, अपनी बीती हुई जिन्दगी मे ऐसे कडवे समय के क्षणो का कभी मैंने हिसाब नही किया है। ऐसे प्रश्न-रहित समर्पण के भाव को सहलाकर

मैंने रखा नही था कि वह आ रहा है और उसकी आने की खबर पढकर मैं उछल पड़ू।

उसका बडप्पन, अह, घमण्ड, लुच्चई-चतुराई इतना समय व्यतीत होने के बाद भी उसके अन्तर्मन से निकल पडा—'मेरी सभी बातें भले ही तुझे जगली लगें, लेकिन मैं तुझे गुहा-मानव की तरह अति उत्कठा से जगली तरीके स ही चाहता हू ।' यही नोट-पैड पर लिखी हुई करतूत मुझे मिली थी।

यह कैसा जगली व्यवहार ?

अब इस उम्र मे सामने से चलकर मेरे घर आने की उसे जरूरत क्या पड गयी ? भले आदमी ! किसी की इच्छा-अनिच्छा तो पहले देख लेनी चाहिए थी ! उसकी सुविधा-असुविधा का तो कुछ खयाल किया होता ? यह फिर उसका नये प्रकार का जगलीपन है या वह जो समझता है—क्या वह कोई नयी तरह की मर्दानगी है ? लेकिन अब मैं उस मूर्ख-घमण्डी के ऐसे नाज़ नखरो पर फिदा हाने के लिए नही बैठी हू कि अचानक उसका ऐसा नोट-पैड पत्र पढकर मुझे रोमास होने लग जाये और मैं प्रसन्न होकर गद्गद् हो जाऊ !

११

यानी कि यह नोट-पैड पत्र आया है, यह कोई छिपाने की बात नही है और पहले के 'अखड सौभाग्यवती' वाले पत्रों जैसी यह कोई स्टीन बात नही है। वह घर मे आयेगा तो सभी उस देखेंगे-जानेंगे। श्यामसुन्दर उपस्थित रह या शायद बच्चे भी जानें तो भी उसका आना मेरे लिए कितना नगण्य—कितना हास्यस्पद है। अब मुझे जो करना है, इस पर विचार करके मैंने मन को धैर्य बधाते हुए आखिर टेलीफोन का रिसीवर उठा ही लिया।

—मिस्टर शाह...हा हा, श्यामसुन्दर !

—हल्लो श्याम !

मैं टेलीफोन कर रही थी, लेकिन मुझे बराबर ध्यान था कि आसव जब घर मे आयेगा तब मैं खूब नाटकीय ढग से अपने रोब का परिचय कराऊँगी, उसे जलाने के लिए फख्र के साथ कहूगी—

'मीट माई हसबैंड श्यामसुदर शाह...डोंट वरी, इतना लबा सबोधन करने मे कुछ तक्लीफ तो होगी ही। मैं उसे 'श्याम' कहू या कभी प्यार से 'छाम' तो कभी तुतलाकर सिर्फ 'छुदर' कहू यानी कि सामान्य तरीके से मेरे मित्रो की उपस्थिति मे 'डियर श्याम', 'डियर सुदर' या ऐसा ही कुछ भी कहने को मन होता है। नौकरो के साथ तो— 'साहब के लिए आज पुलाव बनाया है' इतना भर कहकर काम चला लेती हू अथवा टेलीफोन पर मैं पूरा नाम श्यामसुदर बोलती ही हू।

—श्यामसुदर...हलो...मैं मिसेज शाह !

—पार्डन ? यस...यस...देखिए, जल्दी बुलवा दीजिए।

—हा...हलो ! श्याम ?

—स्पीकिंग !

—हलो डीयर श्याम...जस्ट आई वाट टू टेल यू समथिंग, विच इज...

और एकदम 'हाऊ फनी' से शुरू करके कहने लगती हू—'आसव ! मेरा पुराना प्रेमी आ रहा है। उसे स्टेशन पर लेने कौन जायेगा ? डोंट बी सिली ! मैं कोई निठल्ली नही बैठी हू। और...और फिर मुझे गाडी ड्राइव करने की मनाही है ना ? तुम चपरासी को भेज देना !' और फिर पेट पकडकर खूब हसने लगी, जैसे कोई हसने वाली या हल्की बात हो और श्यामसुदर को मैंने बता दिया हो।

हल्के दिल से उन्होंने उसे रिसीव करने न जाने की माफी मागी और कहा—"तू तो बहुत क्रूर है...पुअर ओल्ड ब्वाय !' आसव के लिए श्याम ने सहानुभूति भरा लटका दिया और हमने बातचीत यही समाप्त कर दी।

यहा, ऐसे समय मे इस कमबख्त ने यहा आने का निर्णय कर लिया ? घर मे कितनी धमाल थी ? श्याम किसी तरह से दौड-धूप से अब कुछ फुरसत मे हुआ था। इसीलिए तो उसने कहा था—'[illegible]

लगता था जैसे प्राण अभी-के-अभी निकल जायेंगे। मैं बिना कारण ही पसीना-पसीना हो जाती थी, तो कभी सिर घूमने लगता...चक्कर आने लगते।

मेरी ऐसी शारीरिक कमजोरी और इस रोग की गभीरता को जानने वाला सिर्फ शातु ही था। वह घर मे अधिक समय बिताता और इस रोग की वजह से ही वह मेरी देख-रेख, मेवा-चाकरी करता था। इस रोग की वजह से पिछले कुछ वर्षों मे वह मेरे काफी समीप आ गया था। मेरी बीमारी की वजह से अक्सर वह घर मे ही रहता था। अच्छा हुआ, श्याम ने उसे कोई काम सौंपा है, इसीलिए वह आज घर में नही है। इस रोग की वजह से आज कुछ तबीयत बिगड़ी रही है। इस नोट-पैड पत्र के कारण कुछ मुझमे उत्तेजना बढ रही है। काश! शातु इस समय होता, तो वह मनोवैज्ञानिक परामर्श देने बैठ जाता। शातु घर मे नहीं है, इसलिए घर सूना-सूना लग रहा है।

वीरू और श्याम घर मे हर रविवार को नॉनवेज खाना पकवाया करते, इसलिए मुझे रसोई के विचार ही आने लगते हैं। वीरू चटोरा नही है, फिर भी हर रविवार को वह चिक्न करी बनवाता और बाप-बेटे दोनो ऐसे जगलीपन से खाना खाते या हड्डियां चूसते, तब उनका चेहरा भी वैसा ही लगता था। मैं और शातु उनकी हाजिरी मे तैयार खड़े रहते, वीरू हसता-हसता कहता—'आज तो हम फलाहार कर रहे हैं। हर रविवार को हमारे यहा ग्यारस होती है ना, मम्मी!"

'रविवार को आ रहा हू।' आसव ने ऐसा लिखा है।

इतने वर्षों बाद आसव का पत्र देखकर मुझे लगने लगा कि चूल्हे पर मास भुन रहा है। उसकी गध खराब लगने लगी है। वीरू अमरीका जाने जैसा और शातु ग्रेजुएट हो गया है। ऐसे बड़े-बड़े लड़को के होते हुए मैं आज पच्चीस वर्ष पहले के प्रेमी से इस घर मे मिलन वाली हू।

अब वह यहाँ किसलिए आ रहा है? मास पक रहा है। मुझे उसकी गन्ध से तकलीफ हो रही है। विचार कहा-कहा से, कितने दूर—समुद्र पार करके भी चले आते हैं...बीच मे कितना समय व्यतीत हो गया...कितने ससार बन गये...कितने नये-नये व्यक्ति पैदा हो गये हैं...वे जवान हो गये

हैं। एक पूरा वंश-वृक्ष बन गया है, तब आसव अभी तक अपने घिसे हुए रिकार्ड का गीत सुनाने के लिए यहां आने की इच्छा रखता है ? कहीं यह सब उसका घमंड तो नहीं है न ?

अरे ! अब आसव है भी कहां ? कौन-आसव ? कौन सा गांव ?... कहां से आने वाला है ? उसके और मेरे प्रेम सम्बन्धों के सन्दर्भों को भी अब तो आने जाने के लिए मार्ग नहीं है। उस मार्ग पर तो अब कांटों की बाड़ रखी है। अब तो वहां मार्ग क्या पगडंडी भी नहीं है।

अब उससे मिलने का अर्थ है ! इतनी धमाल में, इतनी व्यस्तता में सब-कुछ सजोकर याद रखने या उस जीवन में ही रुके रहने की फुरसत कहां है ? वह आयेगा तब दो बात कर लेने की इच्छा भी अब बाकी नहीं रही है। कितना हास्यास्पद लगेगा उससे यह पूछना कि कहो, कैसे हो ? पत्नी को साथ क्यों नहीं लाये ? तबीयत अच्छी नहीं रहती ? क्या हो गया था ? बच्चे कितने हैं ? अच्छा, क्या करती है बड़ी लड़की ? तुम अभी तक वहीं हो ? कहां बदली हुई है ? अच्छा लगता है वहां ? क्या लोगे ? चाय या केवल...? ऐसी बातें करने की हैं ?

वह केवल पुरानी बातों को कहकर कुछ याद दिलवा सकता है—सुन ना ! तुझे याद है—मुझे भूल कैसे रही हो ? लेकिन अब तो वह सिलसिला फिर कैसे स्थापित हो सकता है ? अब तो भले आदमी ! इज्जत से रहना सीखना चाहिए। अब तो बचा है—वह सिर्फ बाकी की उम्र है, उसमें भी आघात सह लेना या जीवन के साथ जुआ खेल लेना बहुत बड़ी बात है—उसे चुपचाप सह लेना ही अच्छा है।

नोट-पैड पत्र में आसव का बेफिक्र ..स्वार्थी चेहरा उभर आया है, इसीलिए तो पत्र लौटा देने के बदले पोस्टमैन को हजार के पैसे देकर पत्र ले लिया था। ओह, तभी तो वह आज बिना मतलब मुसीबत गले में पड़ी है। बिना किसी कारण के ही न्योता देना स्वीकार करना पड़ा है !

अरे, मैं क्या बोल रही हूं ? भले ही वह आये ! क्या मैं उससे डर गयी ? मैं जरा-सी बात पर ही ऐसे कैसे ढीली पड़ने लग गयी हूं ? उस पर आरोप डालने की शक्ति कैसे कम हो गयी है ? उसे नहीं तो शांतु को ही लें—वह लगातार मुझे आसव की याद ताजा करा जाता है। उसकी बातों

म मुझे दोप निकालने का जुनून चढ जाये, तो अच्छा है ! अरे, यह क्या ? मैं आज यह रोनी सूरत लेकर कौन से बीते समय का रोना रो रही हू ? मुझे वह फिर वैसे ही आज भी भोली भाली मुग्ध, सुदर, रोती-बिलखती हुई लडकी मानकर कहेगा—'अपना मुह आइने मे तो देख जरा !' इतने सामीप्य के अधिकार से वह मेरे पास बैठेगा, जिसे मैं हरगिज सहन नही कर सकती !

घर म वीरू अब नही है !

शातु मेरे पास है।

शातु को देखकर सोच लेती हू—आसव अब कैसा दिखता होगा ? आखिरी बार जब वह मेरे पास आया था तब कैसा लग रहा था ? और अब जब आसव मेरे सामने आयेगा, तब उसका स्वरूप कैसा होगा ?

ऐसे भूतपूर्व प्रेमी के बारे मे फिर मैं सोचने लग जाती हू कि वह दिखने म ऐसा होगा या वैसा ! अपने आगन मे उसे अपनी कल्पना के अनुकूल या प्रतिकूल देख सकूगी !

उसका हुलिया तो वैसा ही होगा न, जैसे एक सफद धुली हुई दीवार पर एक पुराने रगीन फ्रेम म मढी हुई उसकी छवि, ठीक श्रीनाथजी भगवान के जैसी ! अब की छवि तो धूप खा रही होगी, जिसकी तरफ दृष्टि डालनी चाहिए या नही, लेकिन एक ऐसी दृष्टि को आदत पड गयी हो कि वर्षों बाद भी अगर वह छवि वहा नही हो, तो भी वह वैसी ही लगती है। मुझे तो आसव अभी भी वैसा ही लग रहा है। हमारी दादी मा की पूजा की काठरी मे इसी तरह श्रीनाथजी भगवान की काली मूर्ति थी—बडी विचित्र ..कुरूप सी टगी रहती थी। वह मूर्ति आज भी मन म वैसी ही दिखती है। दादी मा ने विष्णु, कृष्ण, शकर या माताजी किसी भी देवी देवता की तसवीर वहा नही टागी थी, सिर्फ श्रीनाथजी देव की छवि क्यों टागी थी ? ऐसी कोई पूजा हमारे घर म होती ही नही थी। एक बार दीवार पर टगी हुई उस छवि की सुतली का हिस्सा टूट गया, तो वह टेढी ही लटकी रही। बाद म उस दो तीन गाठें मारकर सीधी लटकाने की कोशिश की गयी, पर वह वैसे ही टेढी ही लटकी रही, उस टेढी छवि को मैं वर्षो तक देखती रही। ठीक ऐसा ही टेढा-मेढा स्वरूप आसव का भी था। बार-बार गाठ मार-मार

पर टागी गयी छवि जैसा—जिसमे चित्र का सही स्वरूप ज्ञात ही नही हो सके...आसव मुझे ऐसा ही दिखायी पडता था। अब वर्षो बाद आसव आ रहा है, तब शातु को बडा होते देखकर उसके बारे मे सोचती हू—इस 'श्रीनाथजी' की मूर्ति को किस कोण से देखने की मैं आदी हू ? उसे याद करने के लिए शातु पर आरोप ढाने लगती हू।

—पोगा पडित ! मास्टर बनना ही तूने सोच लिया है क्या ? अपने कपडो का ढग तो देख ! अरे, कुछ देख तो सही ! किस विचार मे डूब गया है ? यह काफी ठडी हो रही है। परीक्षा के लिए इतना पढना पडता है क्या ? ...तू तो जैसे एम०ए० की तैयारी कर रहा हो ? मनोविज्ञान बहुत कठिन विषय है।

वह कहने लगेगा—

—मम्मी ! तुझे कुछ समझ नही पडती है।

—मम्मी ! तुझे यह पता है ? कहा से पता होगा ! तेरे मास्टर ने इतना भी नही सिखाया ?

—मम्मी, अगर मेरे सायकोलॉजी के नोट्स तुम लिख डाले न, तो लडकी को पढा सकती हो, उतना तुम मेरे इन नोट्स से सीख सकती हो ! फाबिया और काम्पलेक्स मे अन्तर होता है। कितनी बार तुम्हे कहा है कि मुझे मेहमानो के बीच अच्छा नही लगता है.. लेकिन इसे 'फोबिया' नही कहा जा सकता है !

शातु के ऐसे चिडचिडे लक्षणो से मैं कहा से कहा पहुच जाती, मैं कहती—

—इसका मतलब हम मूर्ख हैं—यही तुझे कहना है न ?

—हा, भई, हा ! हमे तो कुछ भी नही आता है !

—हा, मेरे बाप ! हमे कहा से समझ पडेगी ?

'कहा है एक स्थल पर...फ्रायड का ही यह वाक्य है।'

'कौस ने उसे पूरा किया है...' मैं तेरी शिष्या हू क्या ? ऐसे मुझे पढाया मत कर...किसी गाव के मास्टर जैसा तू लगता है...!

और इस तरह मे शातु को कहते-कहते मैं आसव के गाव पहुच जाती।

आसव गाव की पाठशाला मे भूगोल ग्लोब पर या नक्शे की ... ... उगली मे सकेत कर-करके जैसे बता रहा हो—यह इडोनेशिया

मलेशिया है . यह सीरिया है ..और यह...'

चाहे आसव के साथ मेरे विचार कैसे भी रहे हो और वह चाहे मुझे कहता रहा हो—'मूर्ख हो ! तुझे कुछ समझ नही पडती है ?' इसी तरह के कथन से शातु और आसव दोनो की बातो को मैंने सुना है और दोनों मे मुझे साम्य लगता रहा है। मैं इसीलिए प्राय कहती—अब शेखी बघारने की जरूरत नही है "सारा रटा-रटाया बोल रहे हो।

—टाइप करना आता है ?

—क्यो ? किसलिए ? अगर मुझे टाइप करना नही आता है तो क्या हुआ ?

—पेंटिंग्स के बारे म जानती हो ? पिकासो किस मेस का नाम है... मैं जानता हू !

विसोवन की—जानते हो ?

पर तुझे तो भीम पहाडी राग, घोल या भजन भी कहा आते हैं ?

ऐसा-ऐसा आसव ने जो नही कहना चाहिए था,—वह भी कहा और मैंने भी अपनी मर्जी से जो जी मे आया, उत्तर दिया। शातु की सामान्य बात मे भी ऐसा आसव का ही स्वर मुखर होता था—'बेवकफ हो !' और मुझे शातु पर क्रोध चढ आता। शातु एकदम हसकर कहने लगता—मम्मी ! तुम्हारी तबीयत ठीक नही है .दिन-दिन तुम्ह ज्यादा अविश्वास होने लगा है। तुम ऐस कैसे अपसेट हो जाती हो ? मैंने ऐसा आखिर क्या कर दिया है ?...

मेरे परम परमेश्वर सर्वज्ञाता, ब्रह्मस्वरूप प्रेमी ! तुम्हे तो सारी खबर होगी कि मैं उस वक्त बेवकूफ थी...लेकिन अब नही हू। अब मुझे सब पता है। अब वह भले ही भूखी रहकर जिये, तुम्हारी निर्बलता, असामर्थ्य और विवशता आदि पर सब कुछ मैंन विचार किया था, लेकिन वह सिर्फ बेवकूफ दिखने की बात थी। आज तो तुम यह सब जानने को भले ऐसा निश्चय करके आओ, तो यह तुम्हारी भूल है ! तुम्हारे इस नोट-पैड पत्र मे अब भी मुझे घमड की गन्ध आती है।

परिचित-अपरिचित भाषा बोलते हुए, भांति-भांति की वेशभूषा पहने हुए ये लोग कैसे दिख रहे थे ? एक अजीब-सी रोमांचक सुगन्ध, तो कहीं स्त्रियों की खिल-खिल करती हुई हंसी, कहीं पुस्तक या अखबार की आवाज तो मित्र के कन्धे पर उत्साह-भरी थाप या धक्का...'पुश्पुश,' 'गुड-विश' . 'हाऊ नाइस', 'इफ यू डोंट माईंड प्लीज', 'जस्ट-ए-मिनट' आदि के स्वर गूंज उठते थे और मैं भी इस कोलाहल, शोर, आवाजाही, आवाजों के झुंड में अकेली न पड़ जाऊं—इसलिए उनमें मिल जाती हूं, मैं उनमें घुल-मिलने का विचार करती हूं और उस वक्त मैं भी खुशी के मारे एक लंबी श्वास भरती हूं। श्यामसुंदर के पास जाकर खड़ी हो जाती हूं ..अपने मित्रों के बीच वे खड़े हैं और कुछ जोर-जोर से बोल रहे हैं—ऐसा हुआ एक दिन

—श्याम ख़ूब जॉली मूड में लगता है। मेरी सहेली सुजाता मुझे कहती है।

बीरू को डबल रंग ही जमा है, वाकी मेरा तो फेवरेट ब्रान्ड स्क्रू है। पहले हमारे यहां क्रिकेट वार थी उसका रंग भी...ऐसा ही...श्यामसुंदर कहता है।

देखना बीरू ! वहां जाकर टूर्नामेंट देखने, क्लब-लाइफ बिताने, वेस्टर्न म्यूजिक सुनने जाते रहना—एण्ड व्हाट नॉट ! अरे, किसी के साथ जम जाये, तो पार्टनर बन जाना या ब्याह करके सेटल हो जाना. . श्यामसुंदर बीरू को शिक्षा देता जा रहा था, जैसे एक दोस्त की तरह बात हो रही हो।

बीरू ! अगर वहीं सेटल होना हो, तो मुझे खबर कर देना...वादा कर ! —मैंने कहा था।

बीरू ने हाथ ऊपर किये...'पहले तो मेरे भाग्य में वाइफ है या नहीं... देख ! बाद में वादा करूंगा, मम्मी !

—ला, हाथ दिखा तो ! अ-अ...तेरे भाग्य में तो दो वाइफ लिखी हैं।

सारे-के-सारे लोग खिलखिलाकर हंस पड़ते हैं। एक वाइफ मर जायेगी या उसमें तलाक ले लोगे...

स्टॉप दीज नॉनसेंस ! ऐसी-वैसी बातें कर रहे हो ? सुजाता ने अपने

पति वदन से कहा।

सुजाता मेरी बहन जैसी है, वह मेरे पास आकर खड़ी हो गयी थी। एरोड्रोम के इस शोर-गुल में मुझे जरा चक्कर-से आ गये थे। शातु पास ही खड़ा था। बोला—मम्मी! कोकाकोला लाऊं? वह दूर गया, तब सुजाता ने कहा—'टेक इट इजी! तुम कुछ अपसेट-सी हो गयी हो। श्याम के नेचर के बारे में तुम क्या सोचती हो?'

अरे, श्याम का नेचर तो मुझे बहुत पसन्द है। इस डीयर डीयरेस्ट श्यामसुन्दर को मैंने कैसे पसन्द किया, मुझे यह बताने में खूब मजा आता है। इससे पूर्व का भूतकाल भी याद आता है तो कितना अच्छा लगता है!

अच्छा लगता है? आई मीन श्याम कितना रफ है। ऐसे तो खूब सोशल लगता है, लेकिन यह तो कर्टसी दिखाने की बात है, कुछ भी ग्रेसफुल नहीं—हर किसी के साथ चाहे जैसी बात कर बैठना है। किसी अनजान के साथ में भी अपमान लगे, ऐसी बातें बोल देना है। खुद अपने ही मजाक या जोक्स पर मुंह फाड़कर हंस देता है, बिलकुल जंगली व्यवहार!

सुजाता, मेरी सहेली मुझसे पूछ बैठती है—'यू सी मुझे तेरे लिए विचार आया है कि हाऊ यू आर गेटिंग ऑन? और तूने इस जंगली आदमी को कहां से कैसे पकड़ लिया?'

मेरा बीद अमेरिका जा रहा है, हम सभी एरोड्रोम पर उसे छोड़ने के लिए आये हैं। सगे-सम्बन्धी, मित्र आदि सभी खुशी-खुशी आनन्द-मस्ती में उसे विदा देने के लिए एकत्रित हुए हैं और इस वक्त सुजाता ने जो प्रश्न किया है—उससे मुझे मेरा अतीत याद आ गया। जैसे मैं आसव के समक्ष खड़ी होऊं और मेरी पसन्दगी की बात, विवाह, घर-संसार, बालक या मेरे घर के बारे में उसे बता रही होऊं—ऐसा सारा दृश्य मेरी आंखों के समक्ष उभर आया था।

श्याम को मैंने इसीलिए पसन्द किया था कि वह रफ है...जंगली है...यही मेरी पसन्दगी का कारण है। यू सी! मुझे जंगली प्रेम, जंगली व्यवहार ही अच्छा लगता है। कोई नाजुकपन दर्शाये, तो वह मुझे कायर पुरुष लगता है। आई फील नोसियटिक...यू सी।

दभभरी बातें करता है, तो वह पुरुष झूठा होता है। ऐसे मैक, स्पष्टवादी, बोल्ड सोसल पुरुषों के भीतर का हृदय पूरा खुले पृष्ठ की तरह होता है।

देखिए—दिस इज हिम ! श्यामसुन्दर को मैंने इसीलिए अपने पति के रूप में पसन्द किया है। हमारा विवाह वैसे तो अरेंज ही कहा जा सकता है, लेकिन 'इन ए वे' यह 'लव-मेरिज' पसन्दगी का विवाह है। यह प्यार है—उपजाया हुआ लव ! लव एट फर्स्ट साइटिंग !

ऐसा हुआ उन दिनों घर के बड़े-बड़ों और सगे सम्बन्धियों की यह भारी ख्वाहिश थी कि अब मैं विवाह कर ही लूं। इसलिए मैंने मित्रमण्डली, पार्टियां, सगे-सम्बन्धियों के यहां आना-जाना शुरू किया था। कुंवारे, विधुर, युवा, प्रौढ़ और दूसरा ब्याह करने वालों के साथ 'इण्टरव्यू' होने लगे। सब कुछ अरेंज किया गया होता था। इसलिए इन सबमें कोई जचे तो, ठीक लगे तो बात आगे बढ़े ! इसलिए अरेंज करने की खास विधि में कोई कठिनाई आयी ही नहीं थी। इसी तरह की एक मुलाकात में, श्यामसुन्दर और मैं किसी सम्बन्ध कराने वाले सम्बन्धी के दीवानखाने में पहली बार एकान्त में वैवाहिक-इण्टरव्यू के लिए मिले थे। अलबत्ता उस समय मैंने उसे अपने सारे ब्वाय-फ्रेन्ड्स या लव-अफेयर के बारे में सब खुला बता दिया था...यू नो ! फिर तो 'सटरडे ईवनिंग तुम मेरे घर आओ' और जिस घर में तुम्हें रहना है, तो घर का परिचय भी तुम्हें करा देता हूं।' श्यामसुन्दर के आग्रह पर फिर हम 'ड्रिंक-बार' में नहीं बल्कि उसके घर ही मिले थे।

उस वक्त श्यामसुन्दर ने अपने घर में घूम-घूमकर सारा परिवेश, वैभव, खड-खड सब कुछ बताया था और जैसे इस आने वाले अतिथि को मैं अपना वैभव बता रही हूं...आसव आखें फाड़कर मेरे सम्मुख खड़ा हो...

चलो, तुम बोर तो नहीं हो गये हो न ? श्याम ने सुव्यवस्थित...वैल फर्निश्ड मकान तो पहले ही सजा रखा था, मैं तो बाद में आयी थी। मुझे यह घर जरा भी अपरिचित नहीं लगा था।

इधर आओ—यह हमारा बगीचा है, मुझे पहले से ही गार्डनिंग करने का बहुत शौक था। (उसे अपने मायके की वैभवता से श्रीमान ने कभी

गाली दी थी—उसे याद दिलाकर जला रही होऊ जैसे !) उस तरफ केले की बाडी, इस तरफ चीकू, यहा पर गन्ना और यहा अमरूद...यह सब तो ठीक है, लेकिन मुझे देश-देश के फ्लावर्स लगाने का बहुत शौक है...मैं उनके लिए खास फूल बुक रखती हू...आज यह तो कल और...फूल हिफाजत मे रखती हू।

'माफ करना, तुम कुछ देर यहा शान्ति से बैठो। हमे एरोड्रोम पर जाना होगा—यह रजनी मेरी सहेली है। और यह सुजाता है—याद है तुम्हे वह लडकी, जो इण्टर मे भाग गयी थी, उसका पति पायलट अफसर है'—ऐसा कहते ही उसका मुह फक-सा हो गया था।

भाग जाने की बात मे आसव को धक्का-सा लगना चाहिए। वह अब चश्मा लगाता होगा। तो उन्हे हाथ मे लेकर साफ करने का नखरा करेगा। वह कुछ स्वस्थ होगा, फिर मेरी तरफ गम्भीर होकर देखेगा। तब मैं कहूगी—'सॉरी...! तुम्हे कुछ बुरा लगा ? यू नो, इन दिनो मैं बहुत अपसेट रहती हू। टेंशन में हू। ऐसा है कि...हमारा बडा लडका वीरू—उसे अमरीका की स्कॉलरशिप मिली है। इसलिए अभी कुछ समय पहले ही...'

वीरू को वह देख नही पायेगा। वह घर आयेगा, तब वीरू घर म नहीं होगा। केवल शानु घर में या बाहर कहीं होगा। इसलिए जैसे कोई मैं पारिवारिक—बडो तसवीरो मे उसे उसकी तसवीर बता रही होऊ—

जस्ट ए मिनिट ! उस सेटरडे ईवनिग वाले श्याम सुन्दर के घर को मुझे एकान्त कर लेने दो। मैंने कहा न कि 'जगली' मेरा फेवरेट शब्द है, उस दिन श्याम ने मुझे पहले घर के बाहर फिर-फिर कर बताया था। जो मरवर विविध प्रकार के फलो की सुगन्ध-स्वाद लिया था और घर के भीतर गर्म गर्म कॉफी का प्याला, जैसे ड्रिंक के प्यासे हो, वैसे चीऽऽयर्स करके टकराये थे—और बिलीव मी.. माई मीन विश्वास करिये, तब एकदम जगली की तरह कॉफी के बजाय मुझे...मेरे होंठो को चबड-चबड करता पी गया। समझे कुछ ?

दृश्य फिर विलुप्त हो जाता है। मैं उस पहले वाली पारिवारिक तसवीरों के पास खडी होकर आसव को घर के भीतर घुमा रही हू'

तुमप्यश हो, ऐसे फोटो घर के बडे-बूढे मजोकर रखते हैं और उनकी सन्तान ऐसी फोटुओं को उतार फेंकती है—पिछले स्टोर-रूम में रख दो। किसी दिन कोई खास पूर्व-परिचित व्यक्ति को दिखाने के लिए फोटो टागकर भूतपूर्व स्मृतियों में खो जाते हैं—

यह मेरे ससुर, यह सास !

यह सासु के देवर हैं। ये उनके चार बच्चे। अब तो ये बडे हो गये हैं। दो लडकियो को तो हाल ही मे ससुराल भेजा है। सब सुखी है। इनके यहा भी तीन बच्चे है, और तरफ जो हैं—वे कुटुब के खास मित्र हैं। नही, कोई सगा-सम्बन्धी नही, लेकिन इनका घर जैसा ही निकट-सा सम्बन्ध था, बिलकुल जैसे घर के व्यक्ति गिने जाते थे ! दो बच्चे तो उनके घर रहकर ही बडे हुए हैं। नहीं, अपना-तुम्हारा कुछ नही—उन्हे मरे हुए ही कोई पचास वर्ष हो गये हैं। मैंने देखा नही, लेकिन कल्पना कर सकती हू कि यह परिवार मे ऐसे व्यक्ति थे कि इन्हे कोई 'पराया' नही कह सकता था। आत्मीय सम्बन्ध। नि स्वार्थ सेवा-भाव। एक-दूसरे के प्रति मर-मिटे, ऐसे सम्बन्ध थ, जो आने वाली पीढिया भी निभाती रहें।

अरे ! ...मैं तो फिर विगत मे चली गयी। मैंने कहा न कि यह पुरानी पीढी के ससार की हरी-भरी बाडी के फोटो हैं, आजकल ड्राइग-रूम मे छोकरे रखने ही न दें ! यह तो तुम आये हो, इसलिए इस स्टोर रूम को बतात-बताते ये दिख गये, तो धूल फटक दी और यादो पर हाथ फिर गया ! अभी तो खण्ड-खण्ड दिखाना बाकी है न ?

नही, सभी मेहमानो को इस तरह घर नहीं दिखाया जाता है। तुम तो 'खास' हो न ! यहा तो सब लच-डिनर के लिए, हिलेरियस मेहमान यानी यह कहा जा सकता है कि यहा तो श्यामसुन्दर के कन्सर्न वाले मेहमान आते रहते हैं।

नही ! ऊपर मेहमानो को ठहराने के लिए 'गेस्ट रूम' भी है। बीरू के फ्रेन्ड्स के लिए परली तरफ की गेलरी न० दो की सीढिया हैं जहा वे सब आने-जाने के लिए स्वतन्त्र हैं—इनके बीच हमारा कोई खास कन्सर्न या इटरफीयरेंस नही है। वैसे भोजन करने के लिए हम सब 'डाइनिंग हॉल' मे ही एक साथ बैठते हैं। आफीशियल या पर्सनल मेहमान आते हैं

तो उनके साथ घर का मालिक भी गेस्ट को ऑफिशियल 'हलो' कहने आता है। इसलिए नियम के अनुसार शायद श्याममुन्दर भी आयेगा। उनसे तुम्हारी मुलाकात भी तभी हो पायेगी। उन्ह तभी ही तुम देख पाओगे। यह तो कर्टसी-कॉल कहलाता है। तुम नर्वस तो नहीं हो गये हो न ? ही इज ए जॉलीमेन ! ही इज सो हैप्पी एण्ड लकी मेन...देखना !...देखना आये तब !

हां, लेकिन शातु का कमरा अलग है। अभी भी वह अपने कमरे में नहीं है। वह मेरा बहुत खयाल रखता है। मुझे हार्ट-अटेक और ब्लड-प्रेशर की बीमारी है—वह इसी डर से घर में रहता है—मेरी चिन्ता करता है। मैं अपसेट होऊं या मुझे कमजोरी महसूस हो, तो वह फेमिली-डॉक्टर की तरह तुरन्त हाजिर हो जाता है। एक बार तो कहने लगा—'मम्मी ! तुमको सांस लेने में तकलीफ होती है, तो अपन घर में एक आक्सीजन-सिलेंडर ले आए क्या ?' इसके बाप ने तब इसकी ऐसी खिल्ली उड़ायी कि बेचारा चुप हो गया।

वह मेरी बातों में खूब रस ले, इसके लिए मुझे उससे और भी सावधान होकर रहना पड़ रहा है – आप आये हो और वह घर नहीं है, इसलिए काफी राहत है। शायद मेहमान को शक्ल दिखाने के लिए 'हल्लो' करने और 'मम्मी, आल राइट हो न ?' 'अपसेट तो नहीं हो न ?' ऐसा कहकर किसी डॉक्टर की विजिट की तरह उसे एक बार तो आना ही चाहिए।

शुरू में ऐसी बेकार की चीजों को—फोटो—कागज, शातु का कमरा जैसे स्टोर-रूम हो, ऐसे फेंक रखी थीं। अब उसके कमरे की साफ-सफाई को मैंने ही हाथ में लिया है। स्टोर-रूम में कितनी बार लापरवाह नौकरों ने उथल-पुथल कर डाली। तुम्हारे जैसे मेहमान आये, तभी स्टोर रूम में जा सकती हूं। बाकी नौकर-चाकर वाले समृद्ध घर में घर की मालकिन होकर मुझे स्टोर-रूम में जाने की जरूरत क्या है—लोगों को मैं मूर्ख लगूंगी न।

१३

मुझे उस भूतकाल के तहखाने से बाहर निकल आना है। नही, अब कहने या उगलने जैसी कोई बात नही है। नहीं, मुझे यह टालना नही है। नही.. नही ..नही ! मुझे अब कोई फरियाद करनी नही है। मुझे उसे शर्मिन्दा नही करना है।

नोट-पैड पत्र मिलने के बाद मैं जैसे पागल हो गयी होऊँ। मैं खीझकर भूतकाल की दीवार पर सिर पटक रही हू और दरवाज़ा फटाक से खुल जाता है। और उसके भीतर की बन्द अव्यवहृत हवा मे मेरा दम घुटने लगता है। सास लेने मे भारी तक्लीफ पड रही है...शातु...शातु...तू कहा है...लेकिन शातु तो है ही नही...ओह यह आसव घर मे आने वाला है। मुझे मेहमान के साथ साहस के साथ बात करनी है। कुछ ही क्षणो मे मुझे अपने श्वास को असामान्य से सामान्य बना देना है।

अरे, प्राण !

कितनी ही बातो का उत्तर तो होता ही नही है। ऐसे मन को कैसे भी न्योछावर कर देना है। नटखट बालक की तरह, हठीला बनकर वह तोड-फोड कर दे, तो उसे सहना ही पडता है न ? अबोध शिशु की तरह मन का यह कष्ट मैंने कितनी ही बार सहा ही तो है ?

आज आसव आ रहा है, तब मन के भीतर का सारा नटखटपन अब याद आ रहा है।

कितनी ही बार हठीला बालक किताबें या कपडे आदि फाड डालता है, रो-रोकर सारे घर को सिर पर ले लेता है और अपन उसे पुचकारकर या धमकाकर, समझाकर चुप कराते है, वैसे ही मन को भी फुसलाना ही पडता है।

क्या चाहिए अब तुझे ?

देख, यह सुनहरी मछली देखी ?

देख, कैसी मौज से डुबकियां लगा रही है ?

इसके आख-मुह मे पानी भर न जाये...कहीं डूब न जाये, इसके लिए कैसी सावधान होकर तैर रही है ? कैसे सुनहरी रग मे चमक रही है ?

ले, तुझे दू ?

मन शिशु की तरह बनकर थोडे वक्त तो साथ खेलता है, आख-मिचौनी करता है, पर फिर पहले की जिद अगर उसे याद आ जाये, तो वह काच के मछलीघर मे चमकती हुई सुनहरी मछली को देखकर भी लात मार देता है —नही चाहिए सुनहरी मछली !

देख यह अलार्म घडी !

कैसे टिक-टिक कर रही है ? जरा कान से लगाकर तो देख न ! अलार्म बोलती है—टणणण-ण-ण-ण-ण-ण ! इसके काटे कैसे अधेरे मे भी चमकते है ? जैसे बिल्ली रानी की मूछ की तरह ये चमक रहे हैं। इसे रेडियम कहा जाता है। चाहिए तुझे ? बेचारा मन बालक की तरह दूसरी ओर डायवर्ट होकर धडकने लगता है। शिशु की तरह हाथ लम्बे करके खेलने लगता है। 'ला, मुझे दो, यह तो मेरा है। किसी को नही दूगा ! दोस्तो को दिखाऊ ? खुदा की बहादुरी दिखाने के लिए फिर विचार करके घडी को पकडकर अपनी छाती से चिपकाकर थोडी देर रखता है, घडी के काच पर अपना गाल रखता है, उसके मूछ जैसे काटे का होठो से छूने की कोशिश करता है।

बालक को यह सारा नया कुछ देर मे ही फिर पुराना लगने लगता है। उसी तरह मन को भी नये परिवेश, नयी जिन्दगी, नया कदम लेकर भी साहस के साथ प्रसन्न नही रहा जा सकता है। किसी चीज म सन्तुष्टि होती ही नही है। शिशु की तरह ही वह तोड-फोड कर बैठता है—'जा, यह नही चाहिए ! यह मुझे नही अच्छा लगता।' गला फाडकर इस तरह कहने की इच्छा हो जाती है।

जा...जा. .जा...! यह मुझे नही चाहिए !

शिशु को अगर हम जो वह मागता है, जिद करने के बाद दे भी दे तो वह यही कहने लगता है—जा, अब मुझ नही चाहिए ! उसी तरह मन भी कहता है—उठ, ले यह तेरी गाडी, मोटर, बगला, बगीचा, वैभव, सुख, यालर, जिन्दगी...नही, कुछ भी नही चाहिए...ऐसी अकुलाहट का अनुभव नहीं होता है ?

आज मुझे यह क्या हो गया है ? यह मनवही **किताबी** [illegible]

मेरा दम घुटने लगता है।

क्या ग्रासब के आने के इस वर्तमान क्षण मे ठीक से पाव टिकाकर मुझे खडे रहने का भाग्य भी नही है ? इतना समय भी मुझे कोई उमग, स्वस्थता, लम्बी उम्र नहीं दे सकता ? ग्रब किसलिए उस भूतकाल को रौंदने वाली श्वास ले रही हू ? अरे प्राण. .! वह तो भूतकाल था ! फिर भी उस 'भूतकाल' का मृत्यु-दिवस भी मना डाला है। ग्रब क्या है ? मर गये व्यक्ति के मरण-सूतक उतार लेने चाहिए, ताकि उसकी देह फिर से प्रेत बनकर सामने खडी न हो सके !

लाश को जलाते वक्त उसकी छाती पर बराबर लक्कड खडक देने... जमा देने चाहिए। मुर्दे को जलाने वाले लोग इस तकनीक को भली भाति जानते हैं कि लाश जलती हो, तब शव का हाथ कभी लम्बा होकर लकडियों से बाहर झाकने लगता है, जैसे—ग्रा—ब' कहता हो...'ग्रा रहा हू' कभी नही कहता है ! उस वक्त चौंक जाते हैं। लगता है उस वक्त या तो लाश बैठी हो जाये या ऐसा ही होना चाहिए।

मेरा श्वास फिर क्यों रुध रहा है ?

नही ..नही .ऐसा कुछ नही। कितनी सीधी-सादी बात है ? ग्रासव ने पत्र लिखा है, कोई भी परिचित पत्र लिखता हो, वैसा ही उसने भी लिखा है। वह रविवार को मेरे घर ग्रा रहा है। इसलिए वर्षों से चली ग्रा रही हमारे घर की परम्परा के ग्रनुसार उसे लेने के लिए स्टेशन पर गाडी भेजी जाये, मेहमान को घर लाया जाये। गेस्ट-रूम मे रहे। उसस घर-ससार की बातें की जाए ..उसकी कुशल-क्षेम पूछी जाये। फिर वह ग्रपने घर लौट जाए .इसमे नयापन क्या है ? ऐसे यह रविवार भी तो साधारण ही होगा। ग्रनेक रविवारों की तरह ही यह रविवार भी होगा —इसमे नयी बात क्या है ? टेंशन किसलिए ?

इसलिए ऐसा कुछ नही है।

नहीं क्यों नही है ! है, है, है, ना ? है ही ! नया ही है ! बिलकुल ग्रलग-सा है ! यह रविवार सीधा-सादा हो ही नही सकता !

शकर भगवान के मन्दिर का वह पिछले ग्राखिरी प्रसग का दिन रविवार ही तो था।

उस रविवार को ही मैंने अपने निर्णय से इस सम्बन्ध का गला घोट-कर दफना दिया उसे। और उसी वजह से काफी समय तक सेंस ऑफ गिल्टी रह-रहकर याद आता। मैंने हठवादिता से उसे दबाया था। गंवार की तरह निश्चिन्त होकर परेश, नरेश की लेसो मे अटकती रहती। मन ही मन मे उन दिनो सैकडो उथल-पुथल होती थी, जैसे एक गैर-कानूनी लाश को मेरी विशेष कोशिश से जला डालना था। उन सम्बन्धो को जल्दी-जल्दी समाप्त कर भाग-दौड करने लगी थी। चमडी उतरने जैसे ये प्रयास थे।

उन दिनों मित्रो, उसके प्रेम-पत्रो को तिलाजलि देकर मा-बाप का कहना स्वीकार कर लिया और पार्टी, पिकनिक, लम्बे समय के प्रवास या इण्टरव्यू के दौर चलते। अतीत की लाश सड जाये, उससे पहले ही मैं उसे दफना देने के लिए विस्मृतियो की मिट्टी से ढक कर एक तरह से पक्का काम कर लिया था कि मुर्दा कही वापस जी न उठे।

मैंने मित्रो, सगे-सम्बन्धियो या प्रेमपत्रों से बचने के लिए अपने चारों ओर एक सुरक्षित काटो की बाड लगा ली। उसके बाद प्रेम की शीशे की दीवार खडी करके भीतर मैं किसी सुनहरी मछली की तरह विहार करती —डुबकियां लगाती थी। मुझे कुछ भी छिपाने के लिए कोई विचार था ही नहीं, इसलिए श्याममुदर को जब मैंने पति बनाया था, तब उसे मैंने 'प्रेम' नाम के तत्त्व के साथ कैसा खेल खेल सकती थी। मैंने पराक्रम और साहस से सब कुछ स्पप्ट कर दिया था। भूल की गिल्टी को खखेर दिया था।

उन दिनो हृदय मे मैंने उस सम्बन्ध की मौत मान ली थी और नये सिरे से एक नया जीवन शुरु किया था। हर वर्ष जैसे किसी श्रद्धेय व्यक्ति का श्राद्ध करते हैं, उसी तरह उस खास दिन मैं उसकी याद कर लेती थी।

निश्चिन्त श्राद्ध के दिनो मे जैसे श्राद्ध मनाना हो, वैसे मन मे उस दृश्य के बारे मे नाटकीय अभिनय करती। नाटक करते समय लिखी हुई तैयार स्क्रिप्ट के पात्र के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती। मैं एक अबोध प्रेमिका की भूमिका अभिनीत कर लेती थी।

मेरे ऐसे सवादो मे हर वर्ष श्राद्ध के अवसर पर दाणा कर देना था। इन सवादो को दोहराने से मौखिक याद हो गये थे। किसी वक्त पुन-ही-पुन मे

मुख से ऐसे सवाद निकल आते थे। शायद मेरी ऐसी बडबडाहट को सुनकर कभी चिन्ता से मुझे पूछ बैठता था। शायद मुझे घूरता, तो मैं चौंक उठती थी और अतीत से लौट पडती थी।

श्यामसुन्दर को तो ऐसी कुछ पडी ही नही थी कि घर की स्त्री को क्या चिन्ता खाये जा रही है? क्या बदलाव हो रहा है? मैं क्या कर रही हू? क्या बडबडा रही हू? उसकी ओर से कोई प्रतिक्रिया नही थी। वह तो खूब उदार बनकर जगली प्रेमी की तरह हमेशा मुझ पर मोहित रहता, उसका बस यही व्यवहार मेरे प्रति रहता था। वह तो मेरा मनपसद पति था। उसका आभार मानती हू कि उसने मुझे इस ससार मे खुशी से घूम-फिर सकू, इतना बडा खड दान मे दे दिया और वह उसकी धुन से जीवन शान्ति से जीये जा रहा था। पति-पत्नी के बीच किस तरह से सुख से खुशी से रहा जाये, यह उसे विश्वास आ गया था। इसी वजह से उसको मेरी तरफ की कोई बडी चिन्ता नही थी...वह निश्चिन्त था कि आज की मेरी यह उथल-पुथल का तो पता लग ही नही सकता है। वह तो बस यही कहता था—

खूब उडा
मौज कर
डोट वरी
कैरी ऑन

मुझे जो रुचता, उसे पूरा कर लेने की हमेशा ताकीद करता, ऐसा सुख जिसकी मैंने कभी कल्पना नही की थी, मुझे मिल रहा था। मुझे उसके समक्ष किसी तरह की भी फरियाद नही थी।

आज आसव आ रहा है,' उस समय मेरा जगली पति पता नही कैसे पेश आयेगा—बस मन मे सिर्फ इतनी ही शका थी।

मेरे स्वय के लडको की बहुओ को भी शायद इतना सुख नही मिल सके—ऐसा मुझे महसूस हुआ है। इसीलिए तो पुराने सम्बन्धो को मैं हर वर्ष गहरा और गहरा दफनाती जाती हू। मैं एक निश्चित नाटक खेलकर अपने सत्य पर दृढ थी।

मृत्यु दिन!

रगमच पर अधेरा !

एक सन्नाटे के साथ कब्र का दृश्य ।

सफेद कपडो मे नायिका । किसी गहरे दु ख मे डूबी हुई धीमे धीमे चर्च के यार्ड मे प्रवेश करती है। अधकार और शात वातावरण मे पवित्रता की मूर्ति के आगमन से अगरबत्तिया और मोमबत्तिया जल उठती है। पार्श्व मे भयभीन करने वाला सगीत उभर रहा है ।

इसी म्यूजिक के बीच बैक ग्राउड से नायिका का प्रवेश होता है ।

रगमच के एक कोने मे कब्र के पास जाकर नायिका उसके सगमरमर पत्थर पर श्रद्धा से हाथ रखकर सिर झुकाती है। हाथ रखते ही वह झटके के साथ काप उठती है, जैसे वह जल उठती है। हाथ खीचकर वह पीछे हटती है और फिर चेहरे पर एक तेज उभरता है और वह सवाद बोलने लगती है—

—अभी भी ? अभी भी ? अभी तक भी तुम्हारी सद्गति नही हुई ? अभी भी तुम कब्र मे जाग रहे हो ?

—ओह, गॉड ! इस अभागे जीवन की गति करो ।

—इस वर्ष मैं इसी के लिए ऐसी ही प्रार्थना करती हू। मुझे अब कोई शिकायत नही, फरियाद नही । मैंने इसे माफ कर दिया । यह बेवफा तो अपनी ही अपराध भावना स—मेरी ही चिन्ता मे डूबकर अभी तक इस स्थिति मे भटक रहा है। अब तो मैं इसके साथ साथ सारे झगडे—प्यार-नफरत सहित मानसिक स्तर पर सब कुछ भूल चुकी हू। विस्मृतियो के उस किनारे पर पहुचकर मैं सब कुछ अपना विगत भूल चुकी हू।

—पर अभी भी ये पत्थर गर्म कैसे हैं ?

—अभी भी इसके जीवन को चिरनिद्रा क्यो नही ?

—ओह, गॉड ! मेरे ईश्वर ! क्या तुमने अभी तक इसे माफ नही किया है...क्यों ?

—ओह नो ! माइ गॉड ! तेरे न्यायालय मे फरियादी तरीके से मैंने तो कब की विदा ले ली थी। मैंने सारे आरोप वापस ले लिये हैं।

—अब तो मैं इसकी तरफ की साक्षी देन वाली एक गवाह हू—फरियादी नहीं !

—मैं तुम्हारे न्यायालय में इकरार करती हू कि यह तो उजली-पवित्र धूप जैसा, निर्मल जल जैसा शुद्ध, पवित्र, सुदर था—यह मेरा कमेण्शन है। मेरा कोई आरोप नही है। मैं इसे इसी स्वरूप मे स्वीकारती थी ..चाहती थी और उसी वजह से मेरे कधो पर वहन न कर सकने वाला भार मुझे लगने लगा था। उसमे यह क्या कर सकता था ? इसका क्या दोष है ? यह मुझे चाहता था या नही चाहता था, मगर इसमे इसका क्या दोष ? इसने तो वफा का कोई वचन नही दिया था—इसने तो कोई ऐसी जिद् नही की थी कि मैं उसे चाहता हू !

इसीलिए तो, हे ईश्वर ! इसे क्षमा कर ! ऐसे तो मैंने इसे कई श्राप दिये हैं। इसकी याद मे तडप तडपकर बेहोश होकर पागलो की तरह मैं धूल मे लोटी हू. .इसके प्यार के रग मे ऐसी रगी थी कि दुनिया को ही भूल गयी थी।

—क्या ? इसके अपराध तुम्हारे वही खाने मे दर्ज हैं ? और क्या इसी वजह से वह अभी तक सदगति प्राप्त नही कर सका है ? इसकी कब्र के पत्थर इसीलिए गर्म हैं ?

—लेकिन श्राप-वरदान देने वाली मैं कौन हू !

—अब तो मेरी इच्छा-शुभेच्छा या आशीर्वाद सब इसके साथ हैं। मगल कामना कर सकती हू। तेरे समक्ष ही मैं इस निर्दोष के लिए क्षमा, उदारता, दया माग सकती हू। ओह, माइ गॉड ! ये पत्थर कब ठडे होगे ? इसका उद्धार किस तरह से होगा ?

मैं वचन देती हू कि अतीत मे चोट खाये हुए घावो से अब कभी लहू नही टपकेगा !

हा, मैं इसे मूर्ख, दभी, पोगा पडित, स्वार्थी मेरी ही मूर्खता मे, नासमझी से गुस्से म कह दिया करती थी, लेकिन ईश्वर, तुम यह कैसे भूलते हो कि 'आई मीन—अवव आल' मैं इसे चाहती ही रही हू...

क्षमा करना !

क्षमा शब्द मेरे मन मे रेशमी वस्त्र जैसा है, जिसने मेरे मन-प्राण को ढक लिया है। चन्दन मजूषा की पवित्र विशिष्ट सुगध इसमे से झर रही

है। इस वन्न की गर्म-गर्म शिलाओं पर 'क्षमा' शब्द के रूप में चाहे जितने आंसू बहाओ, किन्तु वे पर्याप्त नहीं हैं। इस पत्थर को पिघला नहीं सकते?

वन्न के सूखे-पीले पत्ते चरमरा उठते हैं। 'क्षमा' शब्द के अनुरूप पार्श्व संगीत के सुर विलीन होते जा रहे हैं—धीरे-धीरे गिरता हुआ पर्दा तभी जैसे नाटिका की एक झलक दिख जाती है।

पर्दा।

यह वर्तमान काल और आसव का साक्षात् दर्शन हुआ।

वह आखिर यहीं आया।

वह आया है। यह स्वप्न नहीं है। मात्र कल्पना नहीं है। मैं जाग रही हूं। होश में हूं। वह आया है।

आओ!

ओह!

श्यामसुन्दर एकदम आगे आकर आसव का हाथ थामकर बोले—

'ओ, हाऊ डू यू डू!'

और फिर श्यामसुन्दर जंगलियों की तरह घें घें करके बोलने लगे।

'तो यही तुम्हारी फियांस है! तुम लोग भाग गये थे क्या? फाइन... फाइन...! वण्डरफुल! क्या नाम.. याद नहीं है ..आई एम सॉरी! यह तुम्हारी...अब तो यह मेरी नो डाऊट—पर तुम क्या इन्हीं का नाम लेती थीं...कैरी ओन! इन्होंने मुझे बोर होने की सीमा तक डिटेल्स कही हैं। यू नो, अपने अनुभव स्वयं के लिए चाहे जितने स्वीट हों, पर दूसरे बार हो जाते हैं न! इसलिए मैं भी अब तुम दोनों के बीच से बाहर चला जाना हूं...उपर गेस्ट रूम है। बस चार ही दिन रहेंगे आप? हाऊ सिली! अरे डार्लिंग, अपने इस ओल्ड ब्वॉय फ्रेन्ड से अच्छी तरह ट्रीट करना! क्या 'ड्रिंक' नहीं लेते? नाइस। स्मोकिंग? ...आई अन्डरस्टैंड। परफेक्ट जेन्टिल-मैन! हमारा धानु भी ऐसा ही है आपके कपड़े बनाते हैं, आप नमवार तो सूंघते ही होंगे। कुछ नहीं, तंबाकू तो खाते ही होंगे। यह हमारा धातु भी ऐसा ही है। ऐसा यह उनकी माता जी कहती हैं। आपके कपड़े बनाते हैं, उस पर से आईसवर, आप नसवार तो सूंघते ही होंगे।

कुछ नही, तम्बाकू तो खाते ही होगे। यह हमारा शान्तु अन-वान्टेड चाइल्ड ! वह मुझे साइक्लॉजिकल आस्पेक्ट्स मास्टर की तरह समझाता है—बीडी-तबाकू की आदत, गरीबो का मनोरजन यह हमारी स्वीट गर्ल—डॉली कहती है, क्या है आपका पुराना गाजयस् शब्द—स्वय पर्याप्त नाम ! 'इसलिए भाई डोन्ट माइन्ड ! यहा आप निश्चिन्त होकर रहो। घूमो-फिरो। माइन्ड वेल अब भाग जाने जैसी बात तो नही होगी...!'

श्यामसुन्दर आँखें मिचकाते हुए बरामद से बाहर चले गये।

ओह !

आगन से जैसे एक झझावात् गुजर गया।

श्यामसुन्दर के नये जूतो की चमचमाहट—आगन, ड्राइग रूम, स्लीपिंग रूम, बरामदा, जीने की सीढिया, निचला खड, गैलरी, फिर कम्पाउण्ड की ककरीट को अपनी चरमराहट से रौंदते हुए विलीन हो गयी।

मेरा सिर चकरा गया।

मानो श्यामसुन्दर ने 'इन्डोर गेम' म पासा ठीक निशाने पर फेंका था और जीतकर चले गये थे, श्यामसु दर पक्के उस्ताद थे।

मन अपमान म तिलमला उठा। किन्तु अपमान का घूट मैं चुपचाप घुटककर आसव को देखती रही—जैसे स्पष्ट करने की चेष्टा कर रही थी .

'कहा लगा ? गहरी मोच आयी है न ! आन के समय देहरी से पैर ठोकर खा गया था ? क्या-क्या कहू ! देहरी तो मेरी है और पैर तुम्हारे हैं। देहरी को तोड डालू क्या ? अपने पैर लाओ। हमफस्ट एड के साधन रखत है। नही-नही, इसे तुम औपचारिकता न समझना।

'हमारे घर म तुम महमान हो। मेरे इस घर म, वह भी मेरी वजह स—देहरी का पत्थर बहुत ठोस है, तुम्हे चोट लगना सभव था .'

जैस उसका पैर मैं अपनी गोद म रख लेती हू। मुझे पट्टी बाधनी है। मरक्यूरी क्रोम लगाऊ या आयोडीन ? ताकि इस बहते हुए लहू मे अनुराग का रग भी घुल जाय लाओ, मरक्यूरी क्रोम ही लगा देती हू।

मैंने हम कर प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा की।

फिर धीरे स पूछा।

'कैस हो ?'

इतने वर्षों बाद बस् मेरा यही प्रश्न ! मैं सोफे पर सामने बैठी हू । सोफे के खुरदुरे क्वर को इस तरह उगलियों से स्पर्श कर रही थी, मानो किसी गीत की मधुर पक्ति का सरगम स्मरण कर खोज रही हू ।...आखें उसके पैरो की दसो उगलियो को छू रही थी—सहला रही थी ।

'कैसे हो ? बहुत बदल गये हो । अगर मैं स्टेशन लेने आती, तो कदाचित तुम्हे न पहचान पाती !'...

'यह क्या तुमने 'तुम तुम' लगा रखी है ? तुम भी कितनी बदल गयी हो ! मेरा नाम ..नवानुराग मुग्धा की तरह तुम्हारी आखें अर्धखिले कमल सी लग रही हैं ! इन आखो मे यह आसू शोभा देते हैं क्या ?'

वह आया, तब मैंने हाथो से नही आखों से उसकी वदना की थी । 'प्रणाम.. प्रणाम, मेरे अभिन्न मित्र ! देहरी की लक्ष्मण रेखा के भीतर से ही मेरा प्रणाम स्वीकार करना ।'

श्यामसुन्दर ने कटाक्ष सहित जब वाक्-प्रहार किया, तब चोट कही मेरे देवता को न लग जाये, इसलिए मैंने अपना सिर थोडा आगे झुका दिया था, ताकि प्रहार मैं अपने माथे पर झेल सकू और उनसे कह दू—

'खबरदार ! जब तक मैं जिन्दा हू, तब तक आप किसी अभिन्न, सगे-सम्बन्धी, मित्र या प्रेमी—किसी का भी इस तरह अपमान नही कर सकते ! हमारे वैवाहिक जीवन की यह पहली शर्त है । और इतने वर्षों स हम इसका निर्वाह करते चले आ रहे हैं ।'

किन्तु बौरानियो मे गुथ गये ओस कणो से ही मैंने आसव से क्षमा मागी थी । फिर स मरी आखें भर आयी थी ।

'पगली है एकदम ! बिलकुल भी नही बदली है । ऐसे कोई रोता है । कैसे चलता होगा तेरा !'

मुझे ब्लड प्रेशर तो था ही । लडने की हिम्मत भी नही थी । उत्तेजना म पसीने-पसीने हो उठी । मेरे पैर ठडे पडने लगे । एक बेहोशी सी छाने लगी ।

जैसे एक स्वप्न तरगित हो उठा ।

सोफे की पीठ पर मैंने सिर टिका दिया है, मानो वह आसव की चौडी छाती हो । फिर मैं बचे खुचे शब्द उच्चारने लगी ।

'हा...अब शायद भटकन खत्म हुई। मैं एकदम सुखी हू। मैंने कहा था न ? अब मुझे नही, तुम्हे आना होगा। मेरे पास। तुम आ गये हो। तुम आ गये हो !'

कोई मुझे झकझोर कर उठा रहा था। आसव था मेरे सामने। उसके शब्द कानो मे पड रहे थे।

क्या कर रही हो तुम ? मैं सामने बैठा हू और तुम सो गयी ? मैंने अपनी पत्नी से कुछ भी नही बताया था, तुमने क्यो सब कुछ अपने पति से बता दिया ? अब तो वह व्यग्य कसेगा ही, मजाक उडायेगा ही...

टेक इट इजी, बेबी। हम दोनो का जीवन एक ही धारा मे हिचकोले खाता रहा...

'नही···नही···नही ··!'

मैं चिल्ला उठी। मुझे हारना नही था। मुझे लडना था। मैं आसव से हार मान लेती ? अपना स्वाभिमान ऐसे ही बिखर जाने दू ? सहसा उत्तेजना मे मेरी शिरायें खिचने लगी। सिर मे हथौडे-सी धम्-धम् होने लगी। उफ, लगता है नसें फट जायेंगी।

'मेरी तबीयत थोडी गडबड रहती है। आई एम सॉरी। हा, मैं यह पूछ रही थी कि यात्रा मे कोई परेशानी तो नही हुई न ? हम लोग काफी भडभड मे थे। मेरा बडा बेटा वीरू अमरीका गया है। शातु मेरा छोटा बेटा...'

मेरी आवाज टूट-टूटकर निकल रही थी।

'इसीलिए जब तुम्हारा पत्र आया, तब ड्राइवर को निशानी बताकर मैंने तुम्हे लेने के लिए भेजा। वह तुम्हे तुरन्त तो नही पहचान सका होगा, है न ?'

मैं एकदम स्वस्थ होने का अभिनय करने लगी थी।

आसव ने मेरी बात को अधूरे मे ही टोककर कहा—

'इस घर की डॉली अनर्गल बक रही थी।

मेरी चेतना लुप्त हो रही थी। जिजीविषा की अन्तिम सुलगन। हसते-हसते आसव के समीप मरने की इच्छा प्रबल हो रही थी। मेरी प्रिय स्मृति—प्रिय का नाम मेरे गले से निकले...मुझे उसी का नाम लेना था...

किन्तु प्रिय का नाम...नाम होठो पर नही ला सकती थी।

मन-ही-मन अपने मुह मे प्रिय का सुन्दर नाम अपनी जिह्वा से उच्चारती रही थी—पोछ डालती थी। मुझे आदत थी न! ताल पर मैं जीभ की नोक से वह खूबसूरत नाम लिखती रहती थी। तभी आसव ही बोला—

'शाश्वती! मेरी शाश्वती—तू थक जायेगी। छोड दो यह सब।'

ओह...ओह...मेरी जिह्वा लटकने लगी। पक्षाघात या ब्लड-प्रेशर का हमला...यह सामने बैठा हुआ जीव, मेरे जीवन के लिए आखिरी प्रार्थना कर रहा था।

'तू न जा...न जा, मैं महामूर्ख अज्ञानी था। मैं बेवक्फ हू पर दुष्ट नही हू शाश्वती! दभी नही हू, कह दो एक बार...'

मेरी वाक्शक्ति तो शून्य थी। किन्तु श्रवण-शक्ति और भी तीव्र बना बैठी थी...थोडा सिर आगे करके सब सुन सकती थी...

'क्या अर्थ है इस सबका? एक नौकरी, एक घर, दिन-भर, रातभर... और जिन्दगी-भर सिर्फ एक थोथा दभ! तू मेरी है, यह गला फाड-फाड-कर दुनिया के समक्ष न कह सका, तुम्हें जबरदस्ती हरण करके न ला सका...मैं...मैं कायर था।

'लेकिन अब आया हू। चलो...चलो...तुम्हे भगाकर ले जाने आया हू। क्या जिन्दगी के कुछ बाकी बचे दिन हम थोडी बदनामी, थोडी जलालत मोल लेकर जीने की हिम्मत नही कर सकते? तू चुप न रह! बोल न, शाश्वती! बोल...

'मैं तुम्हारे समक्ष नादान प्रेम निवेदन करने वाला मजनू बनकर नही आया हू, शाश्वती! मुझे बस अब एक ही कार्य करना है। समाज चाहे भले उसे दुराचरण कहे, मुझे तुम्हे यह एहसास देना है—यह विश्वास कि मैं तुम्हें बिना किसी दभ के चाहता था और चाहता हू...'

'मेरी बाहो मे आ जाओ। मैं तुम्हे फूल-सा उठा लूगा अपने कन्धो पर! अपने लिए सिर्फ—अपने लिए। यह कपोल-कल्पना नही है। तुम्हे अपने हृदय की सपूर्ण श्रद्धा के साथ अपने कन्धो पर बिठा दौडता रहूगा... दौडता रहूगा...दौडता रहूगा, जहा तुम कहोगी, जिधर तुम कहोगी, वही

उतारूगा...

सुन रही हो, शाश्वती ?

मै तुम्हे भगा ले जाने आया हू...तुम्हारा हरण करने आया हू। एक हाथ मे जिन्दगी तथा एक हाथ मे मौत लेकर आया हू।

...मेरी आखें खुशी से मिच गयी। मैंने सब सुन लिया था—एक हाथ मे जिन्दगी और एक हाथ मे मौत। दोनो ही हम मिल गये थे। हम दोनो थक गये थे। हम दोनों मर गये थे।

अब मेरी यात्रा पूरी हो गयी थी।

अब कही भागकर जाने की जरूरत नहीं थी...

कब्र की एकान्त जगह मे, जहा किसी की जलन न होगी. .सी! चुप! शब्दो के अर्थ समाप्त हो चुके हैं...